Bachelor of Arts (DDE)

Semester – I

Paper Code – BA1008-I

SANSKRIT – I
संस्कृत – I

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. XXV of 1975)
NAAC 'A+' Grade Accredited University

Material Production

Content Writer: *Dr. Shri Bhagwan*

Copyright © 2020, Maharshi Dayanand University, ROHTAK

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

ISBN :

Price : Rs. 325/-

Publisher: Maharshi Dayanand University Press

Publication Year : 2021

पाठ्यक्रम

संस्कृत – I बी.ए. (प्रथम सेमेस्टर)

Paper Code : BA1008-I

Maximum Marks : 80

समय : 3 घण्टे

घटक – I संस्कृत वाग्व्यवहारः अंक 16

संस्कृत व्यवहार साहस्री (प्रकाशक संस्कृत भारती, माता मन्दिर गली, झण्डेवालान, नई दिल्ली) पुस्तक में से 1 से 8 विषयों तक संस्कृत में सरल प्रश्नोत्तर रूप में लिखित परीक्षा (शिष्टाचार, मेलनम्, सरलवाक्यानि, सामान्यवाक्यानि, मित्रमिलनम्, यात्रा, प्रवासतः प्रतिनिवर्तनम्, छात्राः)

घटक – II संस्कृत ग्रन्थानुशीनम् अंक 48

(क) हितोपदेशः (मित्रलाभः)

(ख) दूतवाक्यम् (भासविरचितम्)

(ग) शुकनासोपदेशः (कादम्बरीतः)

घटक – III अनुवाद अंक 16

हिन्दी से संस्कृत में सरल अनुवाद

दिशा–निर्देश

घटक – I		चौदह में से किन्हीं आठ प्रश्नों के संस्कृत में उत्तर	8 × 2 = 16
घटक – II	(क)	आठ में से चार संदर्भों की व्याख्या	4 × 4 = 16
	(ख)	आठ में से चार संदर्भों की व्याख्या	4 × 4 = 16
	(ग)	आठ में से चार गद्यांशों की व्याख्या	4 × 4 = 16
घटक – III		चौदह में आठ वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद	8 × 2 = 16

विषय सूची

क्रम संख्या		पृष्ठ संख्या
इकाई – 1 :	**संस्कृत वाग्व्यवहारः**	1–31
1.1	परिचय	
1.2	इकाई के उद्देश्य	
1.3	संस्कृत वाग्व्यवहारः	
1.4	अपनी प्रगति जांचिए	
1.5	सारांश	
1.6	मुख्य शब्दावली	
1.7	अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर	
1.8	अभ्यास हेतु प्रश्न	
1.9	आप ये भी पढ़ सकते हैं	
इकाई – 2 :	**संस्कृत ग्रन्थानुशीलनम्**	32–123
2.1	परिचय	
	2.1.1 हितोपदेशः (मित्रलाभः)	
	2.1.2 दूतवाक्यम् (भासविरचितम्)	
	2.1.3 शुकनासोपदेशः (कादम्बरीतः)	
2.2	इकाई के उद्देश्य	
2.3	संस्कृत ग्रन्थानुशीलनम्	
	2.3.1 हितोपदेशः (मित्रलाभः)	
	2.3.2 दूतव्याक्यम् (भासविरचितम्)	
	2.3.3 शुकनासोपदेशः (कादम्बरीतः)	
2.4	अपनी प्रगति जांचिए	
2.5	सारांश	
2.6	मुख्य शब्दावली	
2.7	अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर	
2.8	अभ्यास हेतु प्रश्न	
2.9	आप ये भी पढ़ सकते हैं	
इकाई – 3 :	**अनुवाद**	124–144
3.1	परिचय	
3.2	इकाई के उद्देश्य	
3.3	अनुवाद प्रकरणम्	
3.4	अपनी प्रगति जांचिए	
3.5	सारांश	
3.6	मुख्य शब्दावली	
3.7	अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर	
3.8	अभ्यास हेतु प्रश्न	
3.9	आप ये भी पढ़ सकते हैं	

इकाई – 1

संस्कृत वाग्व्यवहारः

इकाई की रूपरेखा

1.1 परिचय

1.2 इकाई के उद्देश्य

1.3 संस्कृत वाग्व्यवहारः

1.4 अपनी प्रगति जांचिए

1.5 सारांश

1.6 मुख्य शब्दावली

1.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1.1 परिचय

इस पाठ्यक्रम में छात्रों में दैनन्दिक जीवन में काम आने वाले कुछ संस्कृत वाक्यों का सग्रह है। उसे बोलकर छात्र आपस में या कहीं समाज में संस्कृत भाषा का व्यवहार कर सकें यह लक्ष्य रखा गया है। इसे ठीक से अभ्यास करके संस्कृत भाषा भी नित्य व्यवहार में आ सकती है, यह प्रदर्शन कर सकते हैं। ज्यादा शब्दावली, व्याकरण के नियम, धातु, शब्दादि के स्मरण पर ध्यान देकर वाक्–व्यवहार सामर्थ्य बढ़ाया जाना सम्भव है।

1.2 इकाई के उद्देश्य

- छात्र आपस में संस्कृत भाषा का व्यवहार कर सकेंगे;
- छात्र समाज में संस्कृत सम्भाषण कर सकेंगे,
- दैनन्दिक जीवन में काम आने वाले संस्कृत वाक्यों का प्रयोग कर सकेंगे;
- शिष्टाचारः, मेलनम् तथा मित्र मिलनम् आदि विषयों पर संस्कृत सम्भाषण कर सकेंगे;
- यात्रा, प्रवासतः एवं प्रतिनिर्वतनम् आदि विषयों पर संस्कृत में सरल प्रश्नोत्तर कर सकेंगे।

1.3 संस्कृत वाग्व्यवहारः

1 शिष्टाचारः (अच्छा व्यवहार)

हरिः ओम्।	हाँ जी ! (हलो)
चिन्ता मास्तु।	जाने दीजिए/ कोई बात नहीं।
सुप्रभातम्।	सुप्रभात।
कृपाया।	कृपा करके

नमस्ते / नमस्कारः।	नमस्कार !
पुनः मिलाव।	फिर मिलते हैं।
शुभरात्रिः।	आपकी रात्रि शुभ (सुखकर) हो।
अस्तु।	ऐसा ही हो / मान लिया / उचित है।
धन्यवादः।	धन्यवाद।
स्वागतम्।	(आपके आगमन से बहुत प्रसन्नता हुई है) स्वागत।
श्रीमान्।	श्रीमान्/ साहब।
मान्ये / आर्ये।	श्रीमती जी/ आदरणीया।
क्षम्यताम्।	माफ कीजिए / क्षमा कीजिए।
बहु समीचीनम्।	बहुत ठीक / अच्छा है।

पाठ आधारित प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1 **हरिः ऊँ इति दूरभाषेन कः वदति ?**

उत्तर विनीतः गुरुग्राम (गुडगाँव) तः।

प्रश्न 2 **सुप्रभातम्–इति कथं सः वदति ?**

उत्तर प्रातः कालिकं अभिवादनं इदम्।

प्रश्न 3 **शिष्यः / छात्रः / बालो वा किं वदति गुरुम् ?**

उत्तर अभिवादनम्।

प्रश्न 4 **रमेश ! त्वं निजं गृहं कदा गमिष्यामि ?**

उत्तर रात्रिः जाता, अधुना गच्छामि, शुभरात्रिः स्यात्।

प्रश्न 5 **धन्यवादः कदा दीयते / कर्तव्यः ?**

उत्तर उपकारिणे धन्यवादः कर्तव्यः।

प्रश्न 6 **स्वागतं कदा/कस्य भवति/ कस्य कृते / वक्तव्यम् ?**

उत्तर यदा परिचितः / गुरुजनः / प्रियजनः समीपं गृहं वा प्राप्नोति।

प्रश्न 7 **क्षम्यताम् ! इति कः / कदा वदति ?**

उत्तर यदा त्रुटिः अनुभूता तदा, जनः वदति।

प्रश्न 8 **जननी शिशुं / बालं त्रुटिः जाते किं कथयति ?**

उत्तर बाल ! चिन्ता मास्तु–इति भणति।

प्रश्न 9 **कृपया शृणोतु–इति कदा वक्तव्याम् ?**

उत्तर यदा कोऽपि समुचितं ध्यानं न ददाति।

प्रश्न 10 **पुनः मिलामः इति कदा जनः वदति ?**

उत्तर यदा मिलित्वा अग्रे गन्तव्यं भवति।

प्रश्न 11 **अस्तु–इति प्रयोगः कदा शोभनः स्यात् ?**

उत्तर यदा अन्यस्य मतं / विचारः स्वीकरणीयः / पालनीयः स्यात्।

प्रश्न 12 **श्रीमन् ! इति पदस्य (शब्दस्य) प्रयोगः कदा कर्तव्यः ?**

उत्तर यदा कोऽपि मिलति तदा आदरार्थं सम्बोधने वक्तव्यम्।

प्रश्न 13 **महिलानां सम्बोधनार्थं किं कथितव्यम् ?**

उत्तर आर्ये / मान्ये ! इति वक्तव्यम्।

प्रश्न 14 **बहु समीचीनं इति पदं कदा प्रयोक्तव्यम् ?**

उत्तर यदा अन्यस्य मतं शोभनं उचितं वा स्यात्।

2 मेलनम् (मिलना, भेंट करना)

1	**भवतः नाम किम् ?**	आपका नाम क्या (है) ?	पु०
2	**भवत्याः नाम किम् ?**	आपका नाम क्या (है) ?	स्त्री०
3	**मम नाम '............'।**	मेरा नाम '..................'।	
4	**एषः मम मित्रं '.................'।**	यह मेरा दोस्त '..................' है।	
5	**एतस्य नाम श्रुतवान्।**	इनका नाम (पहले) सुना है।	
6	**एषा मम सखी।**	यह मेरी सहेली है।	
7	**भवान् किं (उद्योगं) करोति ?**	आप क्या (काम) करते हैं ?	पु०
8	**भवती किं (उद्योगं) करोति ?**	आप क्या (काम) करती हैं ?	स्त्री०
9	**अहं अध्यापकः अस्मि।**	मैं शिक्षक हूँ।	पु०
10	**अहं अध्यापिका अस्मि।**	मैं शिक्षिका हूँ।	स्त्री०

लेखाकारः	अकाउण्टेण्ट	**चिकित्सिकः**	डॉक्टर
निरीक्षकः	इन्सपेक्टर	**भवन–निर्माता**	बिल्डर
आरक्षिसेवायाम्	पुलिस सर्विस में	**सैनिकः**	सेना–सेवा में
गृहिणी एव	घर में ही काम करने वाली	**नर्तकः**	नृत्य करने वाला
		व्यवस्थापकः	मैनेजर / प्रबन्धक
आपणिकः	दुकानदार		

11 **अहं यन्त्रागारे कार्यं करोमि।** मैं कारखाना में कार्यरत हूँ।

वित्तकोषे	बैंक में	**शोध–संस्थाने**	अनुसन्धान केन्द्र में
मन्त्रालये	मन्त्रालय में	**दूरभाष केन्द्रे**	टेलिफोन एक्सचेंज
सचिवालये	सचिवालय में	**न्यायालये**	अदालत में
महाविद्यालये	कालेज में	**कोषागारे**	ट्रेजरी में

12	**भवान् / भवती कस्यां कक्षायां पठति ?**	आप किस कक्षा में पढ़ते/पढ़ती हैं?
13	**अहं नवमकक्षायां पठामि।**	मैं नवीं कक्षा में पढ़ता/ पढ़ती हूँ।
14	**अहं बी.एससी. कक्षायां पठामि।**	मैं बी.एससी. में पढ़ रहा/रही हूँ।
15	**भवतः ग्रामः कः ?**	आप किसी गाँव/स्थान के हैं ?
16	**मम ग्रामः ....।**	मेरा गाँव/शहर .... है।
17	**अपि कुशली भवान्।**	आप कुशल तो हैं ?
18	**गृहे सर्वं कुशलं किम् ?**	घर में सब कुशल से तो हैं ? / घर पर सब ठीक–ठीक तो है।
19	**अन्यः कः विशेषः ?**	और कोई खास बात ?
20	**कुतः गुच्छति ?**	आप कहाँ से पधार रहे हैं ?
21	**विद्यालयतः/गृहतः/....... तः आगच्छामि**	स्कूल से/घर से .... से आ रहा/रही हूँ।
22	**कुत्र गच्छति**	कहाँ जा रहे/रही हैं ?
23	**देवालयं/कार्यालयं गच्छामि/विपणिं गच्छामि**	मन्दिर/ऑफिस जा रहा हूँ / बाजार जा रहा हूँ।
24	**कयं मेलनं विरलं जातम्।**	कैसे बहुत दिनों में मिले ?
25	**भवन्तं कुत्रापि दृष्टवान्।**	आपको कहीं देखा लगता है।
26	**कुशली/कुशलिनी अस्मि।**	सब ठीक है।
27	**भवान् सम्भाषणशिविरं आगतवान् किम् ?**	आप सम्भाषण–शिविर में कभी आए थे क्या ?
28	**तर्हि कुत्र दृष्टवान् स्यात् ?**	तो कहाँ देखा हो सकता है ?
29	**तर्हि तत्रैव दृष्टवान् स्यात् ?**	तो वहीं देखा जा सकता हैं।

संस्कृते प्रश्नोत्तराणि

प्रश्न 1 **भवतः नाम किम्। ?**

उत्तर मम नाम गौरवः अस्ति।

प्रश्न 2 **भवत्याः नाम किम् ?**

उत्तर अहं सुरभिः अस्मि।

प्रश्न 3 **मम नाम ....।**

उत्तर मम नाम रमेशः .... अस्ति।

प्रश्न 4 **एषः तव (तुम्हारा) वयस्यः / मित्रं अस्ति ?**

उत्तर आम्ः एषः मम मित्रं नरेशः अस्ति।

प्रश्न 5 **किं भवान् एतद्विषये श्रुतवान् ?**

उत्तर आम् (हाँ)/एतस्य एत विषये जानामि।

प्रश्न 6 **एषा (मम) सखी .... अस्ति ?**

उत्तर एषा मम मित्रं/सखी .... सरला अस्ति/वर्तते।

प्रश्न 7 **भवान् किं उद्यमं करोति ?**

उत्तर अहं संगणक–कार्ये (कम्प्यूटर) रतः।

प्रश्न 8 **भवती किं (उद्योगं) करोति ?**

उत्तर अहं कार्यालये टंकण–कार्य करोमि।

प्रश्न 9 **भवान् कस्मिन् व्यवसाये अस्ति ?**

उत्तर अहं शिक्षकः अस्मि।

प्रश्न 10 **भवती किं व्यवसायं करोति ?**

उत्तर अहं शिक्षिका अस्मि।

प्रश्न 11 **भवान् कुत्र कार्यार्थं गच्छति ?**

उत्तर अहं सचिवालयं कार्यार्थं गच्छामि।

प्रश्न 12 **भवती कस्यां कक्षायां पठति ?**

उत्तर अहं दशम्यां कक्षायां पठामि।

प्रश्न 13 **त्वम् कस्यां पाठशालायां पठसि ?**

उत्तर अहं राजधानी–विद्यालये पठामि।

प्रश्न 14 **भवान् कस्मिन् महाविद्यालये पठति।**

उत्तर हिन्दु महाविद्यालये पठामि।

प्रश्न 15 **भवतः ग्रामः कः अस्ति।**

उत्तर टनकपुरम् मम ग्रामः अस्ति।

प्रश्न 16 **कुतः आगच्छति ?**

उत्तर मेरठतः आगच्छामि।

प्रश्न 17 **किं भवान्/भवती गृहतः आगच्छति ?**

उत्तर अहम् विद्यालयतः / ग्रामात् आगच्छामि।

प्रश्न 18 **कुत्र गच्छति (भवान् / भवती) ?**

उत्तर विद्यालयं / गृहं गच्छामि।

प्रश्न 19 **किं (भवान् / भवती) देवालयं विद्यालयं ग्रामं वा गच्छति ?**

उत्तर अहन्तु कार्यालयं गच्छामि।

प्रश्न 20 **कथं मेलनं विरलं जातम्।**

उत्तर व्यवसाय कार्ये व्यस्तता कारणात् मेलनं विलम्बेन जातः।

प्रश्न 21 **भवन्तं / भवतीं कुत्रापि दृष्टं स्यात् ?**

उत्तर विश्व पुस्तक मेलायां दिल्ल्यां दृष्टवान् भवेत्।

प्रश्न 22 **किं भवान् कुशली / भवती कुशलिनी वर्तते ?**

उत्तर अहं कुशली / कुशलिनी अस्मि।

प्रश्न 23 **किं भवान् संस्कृत–संभाषण–शिविरं आगतवान् ?**

उत्तर अहं संस्कृत सम्भाष शिविरं न आगतवान्–आसम्।

प्रश्न 24 **तर्हि कुत्र दृष्टवान् स्यात् ?**

उत्तर मन्ये प्रयागे दृष्टवान् भवेत्।

प्रश्न 25 **किं तिरुपतौ दृष्टवान् ?**

उत्तर नहि तत्र त अहं न गतः।

3 सरल–वाक्यानि (सरल वाक्य)

1	**तथैव अस्तु**	ऐसा ही हो / ठीक है।
2	**जानामि**	मैं जानता / जानती हूँ।
3	**आम्, तत् सत्यम्।**	हाँ वह सच है।
4	**समीचीना सूचना।**	आपने ठीक सुना है। (सूचना सही है)
5	**स्वल्पम् एव।**	बहुत थोड़ा ही।
6	**किमर्थं तद् न भवति ?**	वह (वैसा) क्यों नहीं हो रहा है।
7	**भवतु नाम।**	चले, जाने दो।
8	**अहो! तथा किम् ?**	ओहो ऐसा है क्या ?
9	**एवमपि अस्ति किम् ?**	क्या ऐसा भी है ?
10	**अथ किम् ?**	और क्या ?
11	**नैव किल ?**	नहीं तो।
12	**भवतु।**	होने दो / ठीक ही है।

13	**आगच्छतु।**	आइए।
14	**उपविशतु।**	आप बैठिए।
15	**सर्वथा मास्तु।**	ऐसा बिल्कुल नहीं होना चाहिए।
16	**किम् अन्यत् ?**	और क्या ?
17	**अस्तु किम्।**	ऐसा करना चाहिए क्या ?
18	**किमर्थं भोः ?**	क्यों जी ?
19	**प्राप्तं खलु ?**	मिल गया क्या ?
20	**किं भवति–इति पश्यामः।**	क्या होगा देखते हैं।
21	**ज्ञातम्**	एक समझ गया।
22	**कथम् आसीत् ?**	कैसा रहा ?
23	**अङ्गीकृतं खलु ?**	मान लिया / स्वीकार लिया क्या ?
24	**कति अपेक्षितानि ?**	कितने चाहिए ?
25	**इदानीं एव किम् ?**	अभी–अभी ही (चाहिए) क्या ?
26	**आगन्तव्यं भोः।**	आना चाहिए।
27	**तदर्थं किम् ?**	उसके लिए ?
28	**तत्किमपि मास्तु।**	कुछ नहीं चाहिए।
29	**न दृश्यते ?**	नहीं दिखाई पड़ता ?
30	**समाप्तम् ?**	समाप्त हो गया ?
31	**कस्मिन् समये ?**	कितने बजे ?
32	**तथापि ....।**	तो भी।
33	**आवश्यकं न आसीत्।**	नहीं जरूरी था।
34	**तिष्ठतु भोः।**	जरा रुकिये तो।
35	**स्मरति खलु ?**	याद है न ?
36	**तथा किमपि नास्ति।**	वैसी कोई बात नहीं है।
37	**कथमस्ति भवान् ?**	आप कैसे हैं ?
38	**मा विस्मरतु।**	भूलिए मत।
39	**अन्यच्च।**	और भी।
40	**तदनन्तरम्**	उसके पश्चात्
41	**तावदेव खलु।**	बस उतनी ही बात ?

42	**महान् आनन्दः।**	बहुत प्रसन्नता हुई।
43	**तथा न।**	वैसा नहीं।
44	**तस्य कः अर्थः ?**	इसका तात्पर्य क्या है ?
45	**आम्।**	हाँ
46	**एवमेव।**	ऐसे ही।

संस्कृते–प्रश्नोत्तराणि

प्रश्न 1 **भगवन् ! मह्यं विद्याबलं यच्छतु !**

उत्तर तथैवास्तु।

प्रश्न 2 **किं त्वं तरणं जानासि ?**

उत्तर आम्, अहं जानासि।

प्रश्न 3 **अद्य सर्वत्र भ्रष्टाचार एव दृश्यते।**

उत्तर आम् ! तत् सत्यम्।

प्रश्न 4 **रे मित्र ! मम पुत्रः विदेशादगतोऽस्ति।**

उत्तर एषा समीचीना सूचना अस्ति।

प्रश्न 5 **किं जीवन–कालं स्वल्पमस्ति ?**

उत्तर आम् ! पयः फेन बुद्बुद् इव स्वल्पं जीवितम्।

प्रश्न 6 **त्वं कथं विद्यालयं ह्यःनागतवान् ?**

उत्तर मम गृहे कश्चन रुग्णः आसीत् इति नागतवान।

प्रश्न 7 **तव भगिनी कस्यां कक्षायां पठति ?**

उत्तर सा तु अष्टम्यां कक्षायां पठति।

प्रश्न 8 **अद्य एव परीक्षा दातव्या किल ?**

उत्तर नहि परीक्षा तु मार्च–मासे भविता ?

4 सामान्य–वाक्यानि (सामान्य वाक्य)

प्रयत्नं करोमि।	प्रयास करता / करती हूँ।
न शक्यते भोः।	नहीं हो सकेगा जी।
तथा न वदतु।	वैसा मत बोलिए।
तत्र कोऽपि सन्देहः नास्ति।	इसमें कोई शक नहीं है।
तदहं न जानामि।	मैं वह नहीं जानता।
कदा ददाति ?	कब देते हैं ?

अहं कथं वदामि ?	कैसे कह सकता हूँ ?
तथा भवति किम् ?	ऐसा होता है क्या ?
भवतः समयः अस्ति किम् ?	आपको अवकाश है क्या ?
अद्य भवतः कार्यक्रमः कः ?	आज आपका क्या कार्यक्रम है ?
अरे ! पादे / हस्ते किम् अभवत् ?	अरे / हाथ–पैर को क्या हो गया है ?
बहुदिनेभ्यः ते परिचिताः।	बहुत समय से वे परिचित हैं।
तस्य कियद् धाष्ट्र्यं पश्यतु।	उसकी ढिठाई तो देखो।
भवान् न उक्तवान् एव।	अपने तो कुछ कहा नहीं।
अहम् किं करोमि ?	मैं क्या करूँ ?
अहम् न जानामि।	मैं नहीं जानता / जानती हूँ।
यथा भवान् इच्छति तथा।	जैसा आप चाहते हैं – वैसा (करें)।
भवतु, चिन्तां न करोतु।	चलो, चिन्ता मत करो।
तेन किमपि न सिद्ध्यति।	उससे कुछ नहीं होने वाला है।
सः सर्वथा अप्रयोजकः।	वह तो बिल्कुल निरर्थक है।
प्रयोजनम् एव नास्ति।	बिल्कुल लापरवाह / बेकार है।
पुनरपि एकवारं प्रयत्नं कुर्मः।	फिर एक बार प्रयत्न करते है।
मौनमेव उचितम्।	इस बारे में चुप रहना ही ठीक है।
तद्विषये अहं किमपि न वदामि।	उसके बारे में मैं कुछ नहीं बोलूँगा।
विचिन्त्य एवं वक्तव्यम्।	सोचकर ही कुछ कहना चाहिए।
तर्हि समीचीनम्।	तब तो सही है।
एवं चेत् कथम् ?	इस तरह हो तो कैसा रहेगा ?
मां किञ्चत् स्मारयतु।	जरा मुझे स्मरण कराना।
तम् अहं सम्यक् जानामि।	उन्हें मैं खूब जानता / जानती हूँ।
तदानीमेव उक्तवान् खलु ?	उसी समय मैंने कह दिया था न ?
कदा उक्तवान् भोः ?	कब कहा था आपने ?
यत्किमपि भवतु।	जो कुछ भी हो।
सः बहु समीचिनः।	वह बहुत सही कहता है।
सः बहु रुक्षः।	वह बहुत सरल नहीं है (रूखे स्वभाव का है)
तद्विषये चिन्ता मास्तु।	उसके बारे में मत सोचिए।

तथैव इति न नियमः।	ऐसा ही होगा – यह तो कोई नियम नहीं है।
कर्तुं शक्यम् परं किंचित् समयः अपेक्ष्यते।	किया तो जा सकता है पर उसमें समय लगेगा।
एतावत् अपि कृतवान् !	इतना तक तो किया गया।
द्रष्टुम् एव न शक्यते।	देख ही नहीं सकते।
तत्रैव कुत्रापि स्यात्।	उधर ही कहीं हो सकता है।
यथार्थं वदामि।	सच बोलता हूँ।
एवं भवितुम् अर्हति।	ऐसा भी हो सकता है।
कदाचित् एवमपि स्यात्।	कभी–कभी इस तरह भी होता है।
किम् अहं तावदपि न जानामि ?	क्या में इतना भी नहीं समझता / जानता।
कः न इच्छति ?	कौन नहीं जानता ?
तत्र गत्वा किं करोति ?	वहाँ जाकर क्या करते हैं ?
पुनः आगच्छन्तु।	फिर आइये।
मम कोऽपि क्लेशः नास्ति।	मुझे तो कोई तकलीफ नहीं है।
एतत् कष्टकरं न।	यह बहुत मुश्किल तो नहीं है।
भोः, किम् आनीतवान् ?	अरे ! क्या लाए हैं ?
भवन्तं कः उक्तवान् ?	आपको किसने बताया ?
किंचिदनन्तरं आगच्छेत्।	कुछ देर से आने वाला है।
प्रायः तथा न स्यात्।	अक्सर ऐसा नहीं होता लगता है।
चिन्ता मास्तु, श्वः ददातु।	कोई बात नहीं, कल दे देना।
अहं पुनः सूचयामि।	मैं फिर सूचित करूँगा।
अद्य आसीत् किम् ?	आज था क्या ?
अवश्यम् आगच्छामि।	निश्चित ही आऊँगा।
किम् नागराजः अस्ति ?	नागराज जी हैं क्या ?
किमर्थम् एवं जातम् ?	किसलिए ऐसा हुआ ?
किम् तत्र आसीत् ?	क्या था वहाँ ?
किम् किमपि उक्तवान् ?	कुछ कहा था क्या ?
कुतः आनीतवान् ?	कहाँ से लाए हो ?
अन्यत् किमपि कार्यं नास्ति।	और कोई काम नहीं है।
मम वचनं शृणोतु।	मेरा कहा सुनो।

एतत् सत्यं खलु।	यह सच है ?
तद् अहम् अपि जानामि।	वह तो मैं भी जानता हूँ।
तावद् आवश्यकं न।	वैसा आवश्यक नहीं है।
भवतः का हानिः ?	आपका कुछ नुकसान हुआ क्या ?
किमर्थम् एतावान् विलम्बः ?	किसलिए इतनी देर हुई है ?
यथेष्टम् अस्ति।	पर्याप्त/काफी है।
भवतः अभिप्रायः कः ?	आपका आशय क्या है ?
तस्य किं कारणम् ?	उसकी क्या वजह है।
स्वयमेव करोति किम् ?	आपने आप करोगे क्या ?
तत् मह्यं न रोचते।	मुझे वह अच्छा नहीं लगा।
उक्तम् एव वदति सः।	उसी बात को दुहराता है वह।
अन्यथा बहु कष्टम्।	वरना बहुत तकलीफ होगी।
किमर्थं पूर्वं न उक्तवान् ?	किसलिए पहले नहीं कहा ?
स्पष्टं न जानामि।	अच्छी तरह/ पूरी तरह नहीं जानता हूँ।
निश्चयः नास्ति।	अभी तय नहीं है।
भवान् कुत्र आसीत् ?	आप कहाँ रहे (थे) ?
भीतिः मास्तु।	डरना मत।
भयस्य कारणं नास्ति।	डरने की कोई वजह नहीं है।
तदहं बहु इच्छामि।	मैं वह बहुत चाहता हूँ।
कियत् लज्जास्पदम् ?	कितने शर्म की बात है ?
एषः मम दोषः न।	इसमें मेरी कोई कमी/दोष/गलती नहीं है।
मम तु आक्षेपः नास्ति।	यह मेरा आरोप नहीं है।
सः शीघ्रकोपी।	वह जल्दी ही नाराज हो जाता है।
गम्भीरः मा भवतु।	इतने गम्भीर मत बनिए।
आगतः एषः वराकः।	आ गया यह बेचारा।
युक्ते समये आगतवान्।	सही वक्त पर तुम आ गए।
बहु जल्पति भोः।	वह तो व्यर्थ की बातें करता है।
एषा केवलं किंवदन्ती	यह तो सुनी सुनाई बात ही है।
किमपि न भवति	कुछ भी नहीं होने वाला है।

एवमेव आगतवान्।	ऐसे ही आ गया।
विना कारणं किमर्थं गन्तव्यम् ?	बिना किसी खास उद्देश्य के क्यों जाएँ ?
भवतः वचनं सत्यम्।	आप सच कहते हैं।
मम वचनं कः श्रृणोति ?	मेरा कहा कौन मानता है ?
तदा किमपि न स्फुरितम्।	उस समय तो कुछ सूझा ही नहीं।
किमर्थं तावती चिन्ता ?	इतनी फिक्र करते हैं ?
भवतः किम् अस्ति कष्टम् ?	आपको बस तकलीफ है ?
राम राम ! एवं न भविव्यम् आसीत्।	राम राम ! ऐसा नहीं होना चाहिए था।
अन्यथा मा चिन्तयतु।	आप इसे गलत नहीं मानना।

संस्कृते प्रश्नोत्तराणि

प्रश्न 1 **किम् मम कार्यं करिष्यति।**

उत्तर प्रयत्नम् करोमि।

प्रश्न 2 **किम् ईश्वरम् द्रष्टुं शक्यते ?**

उत्तर न शक्यते।

प्रश्न 3 **भवान् पुरस्कारं न अर्हति।**

उत्तर तथा न वदतु।

प्रश्न 4 **किम् सः महान् आसीत् ?**

उत्तर तत्र कोपि सन्देहः नास्ति।

प्रश्न 5 **तस्य चरित्रं जानाति किम् ?**

उत्तर तद् अहं न जानामि।

प्रश्न 6 **कदा ददाति मम पुस्तकम् ?**

उत्तर अध्ययनानन्तरम्।

प्रश्न 7 **तस्य मरणविषये वदतु।**

उत्तर अहं अथं वदामि।

प्रश्न 8 **स पादेन विनापि चलति किम् ?**

उत्तर तथा भवति किम् ?

प्रश्न 9 **अद्य समयः अस्ति किम् ?**

उत्तर अद्य नास्ति समयः।

प्रश्न 10 **अद्य मम कोपि कार्यक्रमः कः ?**

उत्तर अद्य मम कोपि कार्यक्रमः नास्ति।

प्रश्न 11 **अरे ! पादस्य–हस्तस्य किम् अभवत् ?**

उत्तर किमपि न अभवत्।

प्रश्न 12 **किम् ते परिचिताः ?**

उत्तर बहुदिनेभ्यः ते परिचिताः।

प्रश्न 13 **आचार्य भवान् किम् कथयति माम् ?**

उत्तर न किमपि।

प्रश्न 14 **भवान् मया सह कथं न अगच्छत् ?**

उत्तर भवान नहि उक्तवान एव।

प्रश्न 15 **अहं किम् करोमि।**

उत्तर गुरोः पादवन्दनम् कुरु।

प्रश्न 16 **गुरुः रुग्णः किं न जानाति ?**

उत्तर अहं न जानामि।

प्रश्न 17 **किम् मम इच्छानुसारं भविष्यति ?**

उत्तर अहं न जानामि।

प्रश्न 18 **अहं तव कार्यं कर्तुमसमर्थः।**

उत्तर भवतु, चिन्तां न करोतु।

प्रश्न 19 **किम् मनोरथेन सिध्यति।**

उत्तर तेन किमपि न सिध्यति।

प्रश्न 20 **सुरेन्द्रः चरित्रे कीदृशः।**

उत्तर सः सर्वथा अप्रयोजकः।

प्रश्न 21 **तव टी०वी० कीदृशः अस्ति।**

उत्तर प्रयोजनमेव नास्ति।

प्रश्न 22 **तव कार्यं सफलं न जातम्।**

उत्तर पुनरपि एकवारं प्रयत्नं कुर्मः।

प्रश्न 23 **मूर्खस्य सम्मुखे किम् कर्तव्यम्।**

उत्तर मौनमेव उचितम्।

प्रश्न 24 **किम् भवान् परीक्षायाः विषये जानाति ?**

उत्तर तद् विषये अहं किमपि न जानामि।

प्रश्न 25 **कथं वक्तव्यम्।**

उत्तर विचिन्त्य एव वक्तव्यम्।

प्रश्न 26 **अद्य अवकाशः अभवत्।**

उत्तर विचिन्त्य एव वक्तव्यम्।

प्रश्न 27 **एवं चेत् कथम् ?**

उत्तर अति समीचीनम्।

प्रश्न 28 **मम कार्यं न विस्मरतु।**

उत्तर मां किंचित् स्मारयतु।

प्रश्न 29 **किम् भवान् शिवं जानाति।**

उत्तर तम् अहं सम्यक् जानामि।

प्रश्न 30 **इंद कार्यं तु न सिद्धम् ?**

उत्तर तदानीमेव उक्तवान् खलु।

प्रश्न 31 **कदा उक्तवान् ?**

उत्तर तदा एव उक्तवान् ?

प्रश्न 32 **यत् किमपि भवतु।**

उत्तर अहं परीक्षायाम् सर्वप्रथमः भविष्यामि।

प्रश्न 33 **सः पठने कीदृशः।**

उत्तर सः बहु समीचीनः।

प्रश्न 34 **तव स्वामी कीदृशः।**

उत्तर सः बहु रुक्षः।

प्रश्न 35 **भवान् अधिकं श्रमं न करोतु।**

उत्तर तद्विषये चिन्ता मास्तु।

प्रश्न 36 **किम् अवकाशे न पठनीयः।**

उत्तर तथैव इति न नियमः।

प्रश्न 37 **किं भवान् एतत् कर्तुं शक्नोति ?**

उत्तर कर्तु शक्यम्, किंचित् समयः अपेक्ष्यते।

प्रश्न 38 **रामः स्वल्पमेव अध्ययनं कृतवान्।**

उत्तर एतावत् तु कृतवान्।

प्रश्न 39 **किं भवान् चलचित्रं दृष्टवान् ?**

उत्तर द्रष्टुम् एव न शक्यते।

प्रश्न 40 **मम भ्राता कुत्रास्ति ?**

उत्तर तत्रैव कुत्रापि स्यात।

प्रश्न 41 **किम् सत्यम् वदसि ?**

उत्तर यथार्थं वदामि।

प्रश्न 42 **किम् एवं भवितुम् अर्हति ?**

उत्तर एवं भवितुम् अर्हति।

प्रश्न 43 **कदाचित् मूकः अपि वदति ?**

उत्तर कदाचित् एवमपि स्यात्।

प्रश्न 44 **तव पिता अध्यापकः न तु चिकित्सकः।**

उत्तर किम् अहं तावदपि न जानामि।

प्रश्न 45 **कः न इच्छति सुखम् ?**

उत्तर मूढः न इच्छति सुखम्।

प्रश्न 46 **तत्र गत्वा किम् करोति ?**

उत्तर तत्र गत्वा भाषणं श्रृणोमि।

प्रश्न 47 **अधुना वयं गच्छामः।**

उत्तर पुनः आगच्छन्तु भवन्तः।

प्रश्न 48 **किम् तव कोऽपि क्लेशः ?**

उत्तर मम कोऽपि क्लेशः नास्ति।

प्रश्न 49 **किम् एतत् कार्यं कष्टकरम् ?**

उत्तर एतत् कष्टकरं न।

प्रश्न 50 **किमर्थं आनीतवान्।**

उत्तर माम् पिता उक्तवान्।

प्रश्न 51 **भवन्तं कः उक्तवान् ?**

उत्तर माम् पिता उक्तवान्।

प्रश्न 52 **भवद्गुरुः कदा आगमिष्यति ?**

उत्तर किंदचिद्अनन्तरम् आगच्छेत्।

प्रश्न 53 **किं पूर्ववत् त्रुटिः स्यात् ?**

उत्तर प्रायः तथा न स्यात्।

प्रश्न 54 **किम् अद्यैव शुल्कः दातव्यः ?**

उत्तर चिन्ता मास्तु, श्वः ददातु।

प्रश्न 55 **किम् अन्यः समाचारः सूचनीयः ?**

उत्तर अहं पुनः सूचयिष्यामि।

प्रश्न 56 **अद्य आसीत् किस् ?**

उत्तर अद्य विवाहोत्सवः आसीत्।

प्रश्न 57 **किम् भवान् अस्माकं उत्सवे आगमिष्यति ?**

उत्तर अवश्यम् आगमिष्यामि।

प्रश्न 58 **किम् नागराजः अस्ति ?**

उत्तर आम् श्रीमन्।

प्रश्न 59 **किमर्थम् एवं जातम् ?**

उत्तर अधिकभक्षणात् व जातम्।

प्रश्न 60 **किम्, तत्र एव आसीत् ?**

उत्तर रमेशः तत्र एव आसीत्।

प्रश्न 61 **किम् किमपि उक्तवान् ?**

उत्तर हे राजन् इयं सुधा त्वया सह गमिष्यामि इति उक्तवान्! ।

प्रश्न 62 **कुतः आनीतवान् ?**

उत्तर दिल्लीतः आनीतवान्।

प्रश्न 63 **कथं उपविशति ?**

उत्तर अन्यत् किमपि कार्यं नास्ति।

प्रश्न 64 **कस्य वचनं श्रृणुयाम् ?**

उत्तर मम वचंनं श्रृणोतु।

प्रश्न 65 **एतत् सत्यं खलु ?**

उत्तर आम्, एतत् सत्यम्।

प्रश्न 66 **किम् भवान् संगीतं जानाति।**

उत्तर तद् अहमपि जानामि।

प्रश्न 67 **किं विवाहोत्सवे गमनं आवश्यकम्।**

उत्तर तावद् आवश्यकं न।

प्रश्न 68 **भवतः का हानि।**

उत्तर मम धनस्य हानिः।

प्रश्न 69 **किमर्थम् एतावान् विलम्बः ?**

उत्तर परिवारे जन्मोत्सवः आसीत्।

प्रश्न 70 **किमिदम् यथेष्टम् / पर्याप्तम्।**

उत्तर यथेष्टम् अस्ति।

प्रश्न 71 **भवतः अभिप्रायः कः।**

उत्तर मम अभिप्रायः भवान् ईश्वरभक्तः भवतु।

प्रश्न 72 **तस्य किम् कारणम्।**

उत्तर तस्य कारणं कर्मफलम् अस्ति।

प्रश्न 73 **स्वयमेव कार्यं करिष्यामि।**

उत्तर स्वयमेव कार्यं करिष्यामि।

प्रश्न 74 **किं भवते दुग्धं रोचते ?**

उत्तर तत् मह्यं न रोचते।

प्रश्न 75 **किम् छात्रः पाठं रटति ?**

उत्तर उक्तम् एव रटति सः।

प्रश्न 76 **गुरोः आदेशं कथं न पालयति ?**

उत्तर अन्यथा बहुकष्टम्।

प्रश्न 77 **किमर्थम् पूर्वम् न उक्तवान् ?**

उत्तर पूर्वम् ज्ञानम् न आसीत्।

प्रश्न 78 **किम् अध्यात्मविषये जानाति ?**

उत्तर स्पष्टं न जानामि।

प्रश्न 79 **किम् विनीतः दिल्लीं आगमिष्यति।**

उत्तर निश्चयः नास्ति।

प्रश्न 80 **भवान् कुत्र आसीत्।**

उत्तर अहं विद्यालय आसम्।

प्रश्न 81 **मम परीक्षायाः भीतिः अस्ति।**

उत्तर भीतिः मास्तु।

प्रश्न 82 **अहं मरणात् बिभेमि।**

उत्तर भयस्य कारणं नास्ति।

प्रश्न 83 **किम् भवान् मिष्टान्नम् इच्छति ?**

उत्तर भयस्य कारणं नास्ति।

प्रश्न 84 **पिता–पुत्रयोः कलहः जातः।**

उत्तर कियत् लज्जास्पदम्।

प्रश्न 85 **किम् एष तव दोषः ?**

उत्तर एष मम दोषः न।

प्रश्न 86 **मयि निर्दोषे किमर्थम् आक्षेपः ?**

उत्तर मम तु आक्षेपः नास्ति।

प्रश्न 87 **दुर्वासा–मुनेः कीदृशः स्वभावः ?**

उत्तर सः शीघ्रकोपी आसीत्।

प्रश्न 88 **किम् विदाई–समारोहे गंभीरः भवान् ?**

उत्तर गम्भीरः मा भवतु।

प्रश्न 89 **किम् अहं विलम्बेन आगतः ?**

उत्तर युक्ते समये आगतवान्।

प्रश्न 90 **सः दुर्मुखः कीदृशः ?**

उत्तर बहु–जल्पति भोः।

प्रश्न 91 **किम् एषा घटना सत्या ?**

उत्तर एषा केवलं किम्वदन्ती।

प्रश्न 92 **किम् भारत–पाक–युद्धः भविष्यति ?**

उत्तर किमपि न भवति।

प्रश्न 93 **भवान् अत्र केन उद्देश्येन आगतवान् ?**

उत्तर एवमेव आगतवान्।

प्रश्न 94 **किम् भवान् न्यायालये गमिष्यति ?**

उत्तर एवमेव आगतवान्।

प्रश्न 95 **मम वचनम् कीदृशं अस्ति ?**

उत्तर भवतः वचनं सत्यम्।

प्रश्न 96 **मम वचनं कः शृणोति ?**

उत्तर भवतः वचनं अहम् शृणोति।

प्रश्न 97 **तस्य प्रश्नस्य उत्तरं कथं न दत्तवान् ?**

उत्तर तदा किमपि न स्फुरितम्।

प्रश्न 98 **किमर्थम् तावती चिन्ता ?**

उत्तर यतः कन्या विवाहयोग्या जाता।

प्रश्न 99 **भवतः किम् अस्ति कष्टम् ?**

उत्तर मम पितृ–वियोग–कटम् अस्ति।

प्रश्न 100 **तस्य नवजातशिशुः मृत्युं गतः ?**

उत्तर राम, राम एवं न भवितव्यम्।

प्रश्न 101 किम् मम दोषात् भवान् न आगतवान् ?

उत्तर अन्यथा मा चिन्तयतु।

5. मित्र–मिलनम् (दोस्त से अचानक भेंट)

नमो नमः।	नमस्कार।
किं भोः दर्शनमेव नास्ति।	आजकल तो आप दीखते ही नहीं।
नैव, अत्रैव संचरामि किल !	नहीं जी ! मैं इधर ही आता–जाता रहता हूँ।
किं भोः, वार्ता एव नास्ति ?	अरे ! कुछ भी पता–समाचार नहीं मिलता?
किं भोः, एकं पत्रम् अपि लिखितम्!	ओह! कोई पत्रादि भी तो नहीं मिला ?
वयं सर्वे विस्मृताः किम् ?	हम सभी को भुला दिया क्या ?
कथं विस्मरणं भवति भोः ?	वाह ! (आप सब को) कैसे भूल सकते हैं।
भवतः सङ्केतम् एव न जानामि स्म।	आपका पता ध्यान से उतर गया था / नहीं मालूम था।
महाजनः संवृत्तः भवान्।	अब आप बड़े आदमी हो गए लगते हैं।
भवान् एव वा ! दूरतः न ज्ञातम्।	अरे आप ! दूर से तो पहचान नही सका।
ह्यः भवन्तं स्मृतवान्।	कल ही आपको याद कर रहा था।
किम् अत्र आगमनम् ?	कैसे इधर आए ?
अत्रैव किचिंत् कार्यम् अस्ति।	यहीं कुछ कार्य है।
आवश्यकं कार्यम् आसीत्, अतः आगतवान्।	कुछ जरूरी काम था, इसलिए आ गया।
बहुकालतः प्रतीक्षां करोमि।	बहुत देर से इन्तजार में बैठा हूँ।
यानं न प्राप्तम्, अत एव विलम्बः।	कोई वाहन नहीं मिला इसलिए देर हुई।
आगच्छतु भोः गृहं गच्छाम।	आइये घर चलते हैं।
इदानीं वा, समयः नास्ति भोः।	अभी तो समय नहीं है।
श्वः सायं मिलाम किम् ?	कल शाम को मिल सकते हैं।
अवश्यं तत्रैव आगच्छामि।	जरूर वहाँ आ जाऊँगा।
इदानीं कुत्र उद्योगः ?	आजकल कहाँ काम–धाम है ?
यन्त्रागारे उद्योगः।	एक कारखाने में काम कर रहा हूँ।
एकत्र अध्यापकः अस्मि।	एक विद्यालय में शिक्षक हूँ।
इदानीं कुत्र वासः ?	इस समय कहाँ रहते हैं ?
एषः मम गृहसंकेतः।	यह है मेरा पता।
यानम् आगतम्, आगच्छामि।	बस आ गई, आ जाऊँगा।

अस्तु, पुनः पश्यामः।	ठीक है, फिर मिलते हैं।
पुनः अस्माकं मेलनं कदा ?	पुनः कब मिलेंगें ?
पुनः कदा मिलति भवान् ?	फिर कब भेंट हो सकती है।
तद्दिने किमर्थं भवान् न आगतवान् ?	उस दिन आप कैसे नहीं आए ?
वयं तदा एव आगतवन्तः।	हम सब तो तभी आ गए थे।
भवतः समीपे सम्भाषणीयम् अस्ति।	आपसे कुछ बातचीत करनी है।
भवान् अन्यथा गृहीतवान्।	आप मुझे ठीक नहीं समझ सके।
भवन्तं बहु प्रतीक्षितवान्।	बहुत समय तक आपके इन्तजार में था।
बहुकालतः तस्य वार्ता एव नास्ति।	बहुत दिनों से उसकी कोई खबर नहीं हैं।
भवतः पत्रम् इदानीम् एव लब्धम्।	आपकी चिट्ठी अभी–अभी मिली है।
गच्छामः, किचिंद्दूरम् अहमपि आगच्छामि।	हम चलते हैं, कुछ दूर मैं भी साथ चलता हूँ।
तिष्ठतु भोः, अर्धार्धं काफीं पिबाम।	थोड़ा रुकिए – आधा–आधा कप कॉफी पीते हैं।
अस्तु, पिबामः।	ठीक है – पीते हैं।
स्थातुं समयः नास्ति।	रुकने का अवकाश नहीं है।
गमनात् अनुक्षणमेव पत्रं लिखतु।	घर पहुँचते ही चिट्ठी लिखना।
पुनः कदाचित् मेलिष्यामि।	फिर कभी मिलेंगे।
यदा कदा वा भवतु, अहं सिद्धः।	जब कभी हो सके, मैं भी तैयार हूँ।
तान् मम शुभाशयान् निवेदयतु।	उन्हें हमारी शुभकामना कहना।
किं भोः, एवं वदति ?	क्यों ऐसा क्यों बोलते हैं।
किचिंत्कालं तिष्ठतु।	कुछ देर तो ठहरिए।
अत्र पत्रालयः कुत्र अस्ति ?	यहाँ डाकखाना किधर है ?
कियद्दूरे अस्ति ?	कितनी दूर है ?
वित्तकोषः कियद्दरे अस्ति ?	बैंक कितनी दूर है ?
किमर्थम् एवं त्वरा ?	किसलिए इतनी जल्दी है ?
इतोऽपि समयः अस्ति किम् ?	इसके बाद समय मिलेगा क्या ?
सर्वस्य अपि मितिः भवेत्।	यहाँ सभी की कुछ सिमाएँ हैं।
कियद् इति दातुं शक्यम् ?	कितना दे सकते हैं ?
कस्मिन् समये प्रतीक्षाणीयम् ?	कब (कितना) इन्तजार करेंगे ?
गृहे उपविश्य किं करोति ?	घर बैठे–बैठे क्या करेंगे ?

भवतः परिचयः एव न लब्धः।	आपका परिचय ही नहीं पा सका।
किं भोः, बहु कृशः जातः ?	क्यों इतने दुबले हो गए।
अवश्यं मम गृहम् आगन्तव्यम्।	मेरे घर अवश्य आना।
सः सर्वत्र दर्वीं चालयति।	हर किसी (काम) में दखल देता है।
यथा भवान् इच्छति।	जैसा आप कहते हैं।
परिहासाय उक्तवान् भोः।	मैंने मजाक में ऐसा कहा।
एषः भवतः, अपराधः न।	आपकी भूल इसमें नहीं है।
नैव, चिन्ता नास्ति।	नहीं कोई चिन्ता की बात नहीं है।
वयम् इदानीम् अन्यगृहे स्मः।	अब हम दूसरे घर (मकान) में रहते हैं ?
भवान् मम अपेक्षया ज्येष्ठः किम् ?	आप मुझसे बड़े है।
ओहो, मम अपेक्षया कनिष्ठः किम् ?	तब तो आप मुझसे (थोड़े) छोटे हैं ?
भवान् विवाहितः किम् ?	आप विवाहित हैं ?
नैव, इदानीमपि एकाकी।	नहीं मैं अकेला ही हूँ।
भवतः पिता कुत्र कार्यं करोति ?	आपके पिता कहाँ काम करते हैं ?
सः वर्षद्वयात् पूर्वमेव निवृत्तः।	वे तो दो साल हुए सेवा निवृत्त हो गए।
सः वृद्धः इव भाति।	वे बहुत बूढ़े प्रतीत होते हैं।
भवन्तः सर्वे सहैव वसन्ति किम् ?	क्या आप सब एक ही घर में रहते हैं ?
नैव, सर्वे विभक्ताः ?	जी नहीं, बँटवारा हो गया है ?
भवतः वयः कियत्।	आपकी उम्र क्या है।
भवन्तः कति सहोदराः ?	कितने भाई हो ?
भवान् एव ज्येष्ठः किम् ?	क्या आप ही बड़े हैं ?
मम एकः अग्रजः अस्ति।	मेरा एक बड़ा भाई है।
सः इदानीमपि बालः।	वह तो अभी भी बच्चा है।
भवतः अनुजायाः कति वर्षाणि ?	तुम्हारी बहन की क्या उम्र होगी ?
भवान् मा ददातु, मा स्वीकरोतु।	आप न दे और न लें।
अन्यं कमपि न पृच्छतु।	और किसी से मत पूछिए।
सः बहु वदति।	वह तो बहुत बातें बनाता है।
तर्हि सर्वं दायित्वं भवतः एव।	तब तो सारी जिम्मेदारी आप ही उठाते हैं।
सः सर्वत्र अग्रे सरति।	वह सब के बीच अगुवा रहना चाहता है।

भवन्तं अग्रे सरति।	आपसे घर पर ही मिलूँगा।
सः निष्ठावान्।	वह बहुत निष्ठावान् (कट्टर) है।
यावदहं प्रत्यागच्छामि, तावद् प्रतीक्षां करोतु।	जब तक मैं लौटूँ, इन्तजार करना।
द्वयोः एकः आगच्छतु।	दोनों में से एक आना।
तस्मै विषयः निवेदितः किम् ?	उन्हें सारी बातें बताई क्या ?
तस्य सः अत्यन्तं प्रीतिपात्रम्।	वह उन्हें बहुत पसन्द है।
भवता इदं न कर्तव्यम्।	आपको तो ऐसा नहीं करना चाहिए।
यदि सः स्यात् ....।	अगर वह होता ....।
अवश्यम् आगन्तव्यं, न विस्मर्तव्यम्।	जरूर आना भूलना नहीं।
कियत्कालं तिष्ठति ?	कब तक रुकेंगे ?
अहम् अपि एतां वार्तां श्रुतवान्।	मैंने भी ऐसी बात सुनी है।
सः स्तोकात् मुक्तः।	वह तो करीब–करीब (बाल–बाल) बच गया।
भवन्तं द्रष्टुं सः पुनः आगच्छति किम् ?	आपसे वह फिर मिलेगा ?
अहं किमर्थम् असत्यं वदामि ?	मैं किसलिए झूठ बोलूँ ?
भवान् अपि एवं वदति किम् ?	आप भी ऐसा कहते हैं ?
भवान् एवं कर्तुम् अर्हति किम् ?	क्या आप ऐसा करते हैं ? सकते हैं ?
भवान् गच्छतु, मम किंचित् कार्यम् अस्ति।	आप जाइए मुझे थोड़ा काम है।
वृथा भवान् चिन्तां करोति।	आप तो बेकार में चिन्ता करते हैं।
दैवेच्छा तथा आसीत् किं कुर्मः ?	वह तो विधाता की इच्छा थी, हम लोग क्या कर सकते हैं।
अहम् अन्यद् उक्तवान्, भवान् अन्यद् गृहीतवान्।	आपने कुछ और अर्थ लगा लिया।
एतावद् अनृतं वदति इति अहं न ज्ञातवान्।	वह इतना झूठ बोलता है यह मैं नहीं जानता था।
प्रमादतः संवृत्तम्, न तु बुद्धया।	गलती से हुआ, जान करके तो ऐसा नहीं किया मैंने।
अयम् एकः शनिः।	यह भी शैतान है।
भवदुक्तं सर्वम् अपि अंगीकर्तुं न शक्यम्।	आपकी सारी बातें नहीं मान सकते।
अहं गन्तुं न शक्नोमि।	मैं नहीं जा सकता हूँ।
विषयस्य वर्धनं मास्तु।	(बेकार में) बातें मत बढ़ाओ।
सर्वेऽपि पलायनशीलाः।	सभी (तो) पलायनवादी हैं।
असम्बद्धं मा प्रलपतु।	अडं, बडं मत बोलो।
सर्वस्य अपि भवान् एव मूलम्।	सभी झगड़ों की जड़ आप ही हैं।

सुलभेन तस्य जाले पतितवान्।	बड़ी आसानी से उसके चक्कर में फँस गए।
अस्माकं मिलनानन्तरं बहु कालः अतीतः।	हमें मिले काफी दिन हो गए।
इदानीम् आगन्तुं न शक्यते।	अभी हम नहीं आ सकते हैं।
भवान् अपि अंगीकरोति किम् ?	आप भी (ऐसा) मानते हैं क्या ?
किं, भवान् अपि विश्वासितवान् ?	आपने भी विश्वास कर लिया ?
सः विश्वासयोग्यो वा ?	क्या वह विश्वसनीय है ?
किम् किचिंत् साहाय्यं करोति ?	क्या मेरी थोड़ी सहायता करेंगे ?
समयः कथम् अतिशीघ्रम् अतीतः ?	समय कैसे जल्दी व्यतीत हो गया ?
युक्ते समये आगतवान्।	ठीक मौके पर आप पधारे।
एकनिमेषं अपि विलम्बः चेत् अहं गतः स्याम्।	एक मिनट की भी देरी होती तो मैं निकल जाता।
अहमपि भवता सह आगच्छामि किम् ?	मैं आपके साथ चलूँ क्या ?
किचिंत्कालं द्विचक्रिकां ददाति किम् ?	क्या थोड़ी देर के लिए आप (अपनी) साइकिल देंगे ?
इदानीं मया अपि अन्यत्र गन्तव्यम्।	इस समय तो मुझे भी कहीं जाना है।
भवान् स्वकार्यं पश्यतु।	आप अपना काम देखें।
शीघ्रं प्रत्यागच्छामि।	जल्दी ही वापस लौटूँगा।
आवश्यकं चेत् श्वः आनयामि।	जरूरी हो तो कल ले आता हूँ।
'मास्तु' इत्युक्तेऽपि सः न शृणोति।	मना करने भी पर भी वह नहीं मानता।

संस्कृते प्रश्नोत्तराणि

प्रश्न 1 **अभिवादनस्य भारतीय प्रकारः कः ?**

उत्तर नमस्ते / नमोनमः / नमस्कारः / प्रणामः।

प्रश्न 2 **भवतां दर्शनमेव दुर्लभं जातं किल ?**

उत्तर आम् ! अहं नगरात् बहिरेव आहम्।

प्रश्न 3 **अपि भोः। भवतां वृत्तमपि न ज्ञायते।**

उत्तर अहं प्रायः गतदिनेषु व्यस्त एव आसम्।

प्रश्न 4 **अरे भ्रातः ! भवान् तु पत्रमपि न लिखति कथम् ?**

उत्तर परीक्षा–निमित्तं प्रायः व्यग्रः जातः।

प्रश्न 5 **वयं सर्वे विस्मृतिपथं नीताः खलु ?**

उत्तर न हि कथमेतत् सम्भवति, सदास्मरामः।

प्रश्न 6 **भवन्तोऽपि महापुरुषेषु सम्मिलितः किल ?**

उत्तर न खलु तथा अहं तु जनसामान्य एव।

प्रश्न 7 **मित्र ! कथं एवं वदसि।**

उत्तर सत्यमेव ब्रवीमि।

प्रश्न 8 **भवानत्र किन्निमित्तं प्राप्तः ?**

उत्तर किचिंत् कार्यं आपतितं आसीत्।

प्रश्न 9 **कथं भवान् चिरायितः ? बहुकालात् प्रतीक्षारतोऽहम्।**

उत्तर यानमेव बिलम्बेन लब्धः।

प्रश्न 10 **आगच्छताम् आवां गृह व्रजाव।**

उत्तर सम्प्रति न गच्छामि।

प्रश्न 11 **श्वः सन्ध्याकाले मेलनं भविष्यति किल ?**

उत्तर आम् अवश्यं अगच्छामि।

प्रश्न 12 **इदानीं भवतां कः उद्यमः ? यन्त्रागारे / निर्माण्यां उद्यमः ?**

उत्तर एकस्मिन् विद्यालये अध्यापकः / अध्यापिका अस्मि।

प्रश्न 13 **सम्प्रति कुत्र निवसति भवान् ?**

उत्तर प्रयागे वसामि ?

प्रश्न 14 **किम् यानं प्राप्तम् ?**

उत्तर आम् ! यानं प्राप्तम्, आगच्छामि।

प्रश्न 15 **किमहं गच्छेयम् ?**

उत्तर अस्तु ! पुनर्मिलाव ?

प्रश्न 16 **पुनः अस्माकं मेलनं कदा भविष्यति ?**

उत्तर आगामिनि वर्षे मिलावः।

प्रश्न 17 **सम्प्रति कुत्र पठति भवान् ?**

उत्तर दिल्यां पठामि।

प्रश्न 18 **तद्दिने कथन्न भवान् मिलितः ?**

उत्तर आवश्यके कार्ये व्यस्तत्वात् न प्राप्तः।

प्रश्न 19 **कथं भवान् रुष्टः जातः ?**

उत्तर भवान् अन्यथा गृहीतवान्।

प्रश्न 20 **बहुकालं प्रतीक्षितः भवानत्र ?**

उत्तर किचिंदेव विलम्बायितः।

प्रश्न 21 **मम पत्रं लब्धं किल ?**

उत्तर अद्यैव पत्रं प्राप्तवान्।

प्रश्न 22 **मया सह भवान् तत्र गन्तुमिच्छति ?**

उत्तर आम् । सदैव गच्छावः।

प्रश्न 23 **कियद् दूरं भवतां कार्यस्थलम् इतः ?**

उत्तर प्रायः पंच किलोमीटरमितं दूरं एव।

प्रश्न 24 **चायं रोचते भवते उत काफी वा।**

उत्तर मह्यं काफी रोचते।

प्रश्न 25 **किचिंत् कालं प्रतीक्षितुं इच्छति भवान् ?**

उत्तर आम् प्रतीक्षाकर्तुं पारयामि।

6. यात्रा

चिटिकां कुत्र क्रीणामि ?	टिकट (यात्रा–पत्र) कहाँ से लूँ ?
शीघ्रम् आगच्छतु, यानं गच्छति।	जल्दी आओ (नहीं तो) बस निकल जायेगी।
इदानीं एवएकं यानं गतम्।	अभी एक बस निकली है।
अहं भवतः पार्श्वे उपविशामि।	मैं आपके पास बैठता हूँ
महान् जनसम्मर्दः।	बहुत भीड़ है।
परीवर्तं ददातु।	फुटकर (छुट्टे) दे दो।
अग्रे गच्छतु।	आगे–आगे चलिए।
यानं कदा वा निर्गच्छति ?	गाड़ी कब छूटेगी (चलेगी)।
किम् अग्रिमं निः स्थानम् अस्माकम् ?	अगला पड़ाव (स्टाप) कब आएगा।
मल्लेश्वरयानस्य का संख्या ?	मल्लेश्वर जाने वाली गाड़ी कौन सी है ? (क्या नं० है)
किंसंख्याकं यानं जयनगरं गच्छति ?	कौन–सी गाड़ी जयनगर जाती है ?
फलकमपि नास्ति, किमपि नास्ति।	न नामपट है न और कुछ (चिह्न दीख रहा) हैं।
अये, पादपथे आगच्छतु।	अरे, फुटपाथ पर चलो।
मल्लेश्वरं गन्तुं कः मार्गः ?	मल्लेश्वर जाने का मार्ग कौन–सा है ?
अयं संकेतः कुत्र इति जानाति किम् ?	यह पता क्या आप जानते हैं ?
इतः केवलं दशनिमेषाणां गमनम्।	वहाँ तक पहुँचने में केवल दस मिनट लगेंगे।
यानं न लब्धम्।	बस नहीं मिली।
यानस्य निर्गमनाया इतोऽपि अर्धघण्टा अस्ति।	बस छूटने में अभी आधे घण्टे की देर है।
यानं दशवादने आगच्छति।	दस बजे बस आती है।
पंचवाने एकं यानम् अस्ति।	पाँच बजे एक गाड़ी है।

यानं तदानीम् एव आगत्य स्थितम्।	अरे ! बस तो तभी से आकर खड़ी है।
आरक्षणं नास्ति।	आरक्षण नहीं है।
एवमेव अग्रे गच्छतु।	ऐसे ही आगे चलिए।
अत्रैव कुत्रचित् स्यात्, अन्वेषणं कुर्मः।	यहीं कहीं हो सकता है पता लगाते हैं।
तत्रैव अस्ति / तत्रैव स्यात्।	वहीं है / वहीं होगा।
अहं न जानामि, अन्यं पृच्छतु।	मैं नहीं जानता किसी और से पूछ लीजिए।
भवान् शीघ्रं न गच्छति चेत् यानं न लभ्यते।	आप जल्दी नहीं जाते हैं तो बस नहीं मिलेगी।
अयं मार्गः कुत्र गच्छति ?	यह रास्ता कहाँ जाता है ?
भवान् आरक्षणं कृतवान् किम् ?	आपका आरक्षण हो गया है क्या ?
सर्वं स्वीकृतवान् किल ?	सारा कुछ ले लिया, क्या ?
कृपया सर्वबन्धकं स्वीकरोतु।	होल्डाल (बिस्तरबन्द) को उठाओ।

स्यूतम् – झोला।	**एतद्** – इस, इसको।
चिटिका–यात्रा–पत्र (टिकट)।	**यानस्यूतम्** – एयर बैग।
यानपेटिका–सूटकेस।	**वनितास्यूतम्** – वेनिटी बैग।

धनविषये जागरूको भवतु।	रूपये–पैसे सावधानी से रखें।
ततः आगन्तुम् एतावान् विलम्बः किमर्थम् ?	वहाँ से आने में इतनी देर क्यों हुई ?
एकम् अपि यानं न आगतम्।	एक भी बस नहीं आई।
षष्टिसंख्याकं यानं गतं किम् ?	साठ नम्बर वाली बस गई क्या ?
अहम् इदानीम् एव आगतवान्।	मैं अभी–अभी आया।
कीदृशः मार्गः एषः !	कैसा रास्ता है यह ?

संस्कृते–प्रश्नोत्तराणि

प्रश्न 1 **चिटिका कुत्र मिलति ?**

उत्तर रेल / बस / वायुयान आरक्षण केन्द्रे / प्रस्थान केन्द्रे मिलति।

प्रश्न 2 **त्वरितगमने का हानिः भवति ?**

उत्तर मार्गे पतनभयं संभवति।

प्रश्न 3 **यानस्य आगमनात् प्राक् कथं रेल / बस प्रस्थान केन्द्रे प्राप्तव्यम् ?**

उत्तर येन सुखेन उपवेशन–स्थानं लभेत।

प्रश्न 4 **किं उपवेशनाय स्थानं मिलिष्यति ?**

उत्तर आम् ! मिलित्वा उपविशावः।

प्रश्न 5 किं रेल प्रस्थान केन्द्रे जनसम्मर्दः भवति ?

उत्तर आम् यदा कदा जनसम्मर्दः भवत्येव।

प्रश्न 6 यानं कदा निर्गच्छेत् ?

उत्तर प्रायः दशवादने रात्रौ।

प्रश्न 7 रेलयाने भवतां आरक्षणं सुनिश्चिम्।

उत्तर आम् दशमे यान कक्षे–पंचत्रिंशत् संख्याकं अस्ति।

प्रश्न 8 यानं कति वादने तत्र प्राप्स्यति ?

उत्तर प्रायः चतुर्वादने अपराह्णे अपरे दिने।

प्रश्न 9 किम् एवमेव अग्रे गमनीयम् ?

उत्तर नहि वामतः अग्रे गन्तव्यम्।

प्रश्न 10 मल्लेश्वर–यानस्य आगमनं कति संख्याके यान–मार्गे भविष्यति।

उत्तर पंचसंख्याके यान–मार्गे मल्लेश्वर–यानं आगमिष्यति।

7. प्रवासतः प्रतिनिवर्तनम् (वापसी यात्रा)

कदा आगतवान्	कब आये ?
अद्य प्रातः आगतवान् वा ?	आज प्रातः आए क्या ?
कथम् आसीत् प्रवासः ?	यात्रा कैसी रही ?
कति दिनानां प्रवासः ?	कितने दिनों की यात्रा थी ?
प्रवासे व्यवस्था समीचीना आसीद् वा ?	यात्रा में व्यवस्था ठीक रही क्या ?
एकाकी गतवान् वा ?	क्या अकेले गए थे ?
एकाकी किमर्थम् ? परिवारसमेतः गतवान्।	अकेले कैसे, परिवार के साथ गया था।
दिनत्रयं तत्र स्थितवान्।	तीन दिन वहाँ रहा।
मार्गमध्ये अपघातः संजातः।	रास्ते में एक दुर्घटना हो गई।
विशेषतयां कोऽपि न व्रणितः।	ईश्वर की दया थी, किसी को कोई खास चोट नहीं लगी।
वस्तूनि एतावन्ति एव किम् ?	क्या इतना ही सामान है।
बहुधाश्रान्तः अस्मि भोः।	बहुत थक गया हूँ भाई !
त्रिचक्रिका किमर्थम् ?	आटोरिक्शा किसलिए चाहिए ?
लोकयानेन गच्छाम।	बस से जाएंगे।
कः प्रतीक्षते भोः ?	कौन इन्तजार करता रहे।
त्रिचक्रिकया एव गच्छाम।	आटोरिक्शा ही लेकर चलते हैं।

लोकयानेन–बस से	**त्रिचक्रिकया**–आटोरिक्शा से
सुखयानेन – लग्जरी बस से।	**पादाभ्याम्** – पैदल।
सामिसुखयानेन–सेमी–लग्जरी बस से।	**संलपन्तः** – बतियाते हुए।

किमर्थं वृथा व्ययः इति ?	क्यों फिजूल (व्यर्थ) खर्च करें ?
बहुकालतः प्रतीक्षां करोमि।	बहुत देर से इन्तजार कर रहा हूँ।
कदा प्रस्थितः ?	कब चले थे ?
काशीं रामेश्वरं सर्वं दृष्टवान् किम् ?	क्या काशी रामेश्वर सब देख आए ?
कियत् सुन्दरम् अस्तीति जानाति किम् ?	कितना सुन्दर है जानती हो ?
महद अद्भुतम्।	बहुत सुन्दर / अद्भुत।

संस्कृते–प्रश्नोत्तराणि

प्रश्न 1 **कदा अत्र प्राप्तः ?**

उत्तर अद्य प्रभात एव आगतः।

प्रश्न 2 **प्रवासः कीदृशः आसीत् ?**

उत्तर प्रायः सन्तोषजनक एव आसीत्।

प्रश्न 3 **मार्गे असुविधा तु नानुभूतः भवान् ?**

उत्तर गमनागमने तु कष्टं न्यूनाधिकं भवति एव।

प्रश्न 4 **ईदृशः प्रवासः पूर्वं कदापि कृतवान् वा ?**

उत्तर नहि प्रवासोऽयं विंशतिदिनात्मक आसीत्।

प्रश्न 5 **किं एकाकी गमनं जातम् ?**

उत्तर नहि सपरिवारः यात्री सम्पादितवाहनम्।

प्रश्न 6 **यात्रायाः कारणेन श्रान्तो भवान् ?**

उत्तर श्रान्तः एव अनुभवामि।

प्रश्न 7 **केन मानेन प्रायः सर्वे जनाः गच्छन्ति ?**

उत्तर बसयानेन एव सर्वे जनाः प्रायः गच्छन्ति।

प्रश्न 8 **कदा प्रभृति प्रतीक्षारतः भवान्।**

उत्तर प्रातः दशवादनात्।

प्रश्न 9 **त्रिचक्रिकया गमने किं कारणम् ?**

उत्तर त्रिचक्रिकया गमने गन्तव्य प्राप्तौ विलम्बः न जायते।

प्रश्न 10 **काशीं–रामेश्वर–यात्रादि–दर्शने जनाः गच्छन्ति ?**

उत्तर धार्मिकाः जनाः काशी–रामेश्वरादि–तीर्थयात्रा दर्शने गच्छन्ति।

8. छात्राः (छात्रगाण)

अत्रैव महाविद्यालये पठामि।	यहीं कालेज में पढ़ रहा हूँ।
सिद्धता कथम् अस्ति ?	तैयारी कैसी है ?
पाठ्यभागः एव न समाप्तः।	पाठ्यक्रम ही पूरा नहीं हुआ।
गणित श्रवणमात्रेण मम शिरोवेदना भवति।	गणित का नाम सुनते ही मुझे सिरदर्द होने लगता है।
गाढम् अभ्यासः वा ?	खूब अभ्यास / तैयारी कर ली ?
अद्य किमपि न पठितवान् एव।	आज कुछ नहीं पढ़ सका।
मम लेखनं न सुन्दरम्।	मेरी लिखावट सुन्दर नहीं है।
एतम् उपन्यासं पठितवान् किम् ?	क्या इस उपन्यास को आपने पढ़ा है ?
बहु सम्यक् अस्ति।	बहुत अच्छा है।
बहु पूर्वमेव पठितवान्।	बहुत दिन हुए पढ़ा था।
शीघ्रं पठित्वा ददामि भोः।	पढ़कर जल्दी ही लौटा दूँगा।
अद्य उत्थाने विलम्बः।	आज उठने में कुछ देर हो गई।
अहं गृहे एव त्यक्त्वा आगतवान्।	मैं घर पर उसे छोड़ कर आ गया।
अद्य तु विरामः।	आज तो छुट्टी है।
भवतः वर्गशिक्षकः कः ?	आप का कक्षा–शिक्षक कौन है ?
श्रीमन्, विशेषकक्ष्यां स्वीकरोति किम् ?	क्या आप विशेष कक्षा लेना चाहते हैं ?
लेखनीम् एकवारं ददाति किम् ?	जरा लेखनी तो दीजिए।
टिप्पणीं किचिंत् ददाति किम् ?	अपने नोट्स दोगे क्या ?
ह्यः एव गिरिशः स्वीकृतवान्।	उसे तो कल गिरीश ले गया।
अहं तद्दिने न आगतवान् आसम्।	उस दिन मैं नहीं आया था।
आगच्छतु भोः, क्रीडाम।	अरे आइये, खेलते हैं।
पठनीयं बहु अस्ति भोः।	बहुत पढ़ाई करनी है।
किं, मम पठनीयं नास्ति किम् ?	मुझे नहीं पढ़ना है क्या ?
पदवी अशीतितमे वर्षे समापिता किम् ?	क्या अस्सी के वर्ष में डिग्री हासिल की ?
सम्यक् न स्मरामि भोः।	खास याद नहीं आ रहा है।
तिष्ठतु, अहं स्मरामि तत्।	जरा रुको, मुझे स्मरण है।
श्वः आरम्भ्य सहाध्ययनं कुर्मः।	कल से मिलकर पढ़ते हैं।

संस्कृते–प्रश्नोत्तराणि

प्रश्न 1 **किं अस्मिन् महाविद्यालये भवान् पठति ?**

उत्तर आम् / अत्रैव पठामि।

प्रश्न 2 **परीक्षा–निमित्तं अभ्यासः कथं सिद्धः ?**

उत्तर प्रायः सम्यक् एव अस्ति।

प्रश्न 3 **किम् पाठ्यक्रमः पूर्णः जातः ?**

उत्तर पाठ्यक्रमस्तु प्रायः न पूर्णः।

प्रश्न 4 **भवतः गणिते रुचिरस्ति न वा ?**

उत्तर भो गणित शब्दश्रवने मे शिरसिवेदना प्रवर्तते।

प्रश्न 5 **पर्याप्तं अभ्यासस्तु करणीय एवासीत् नु ?**

उत्तर सत्यम् किन्तु किं करोमि, तथा न भवति।

प्रश्न 6 **अद्य कियत् कालं अभ्यसितवान् ?**

उत्तर अद्य तु किमपि न पठितवान्।

प्रश्न 7 **किम् भवतः लेखनशैली सम्यग् ?**

उत्तर प्रायः अभ्यासेन सुललितेति वक्तुं शक्यते।

प्रश्न 8 **एतं उपन्यासं अधीतवान् किल ?**

उत्तर न खलु, केवलं पूर्णं पाठोऽस्य कृतः।

प्रश्न 9 **मेघदूतम् कदा पठितवान् भवान् ?**

उत्तर किचिंत् कालपूर्व एव।

प्रश्न 10 **मम पुस्तकं कदा निर्वर्तयति भवान् ?**

उत्तर शीघ्रमेव पठित्वा प्रस्तोष्यामि।

प्रश्न 11 **अद्य प्रातःभ्रमणे कथं विलम्बो जातः।**

उत्तर रात्रौ विलम्बेत शयनं कृतवानिति।

प्रश्न 12 **भवतः श्वानः कुत्र गतः ?**

उत्तर ओह ! सः गृहं परित्यज्य गतः।

1.4 अपनी प्रगति जांचिए

1 भवान् कस्मिन् व्यवसाये अस्ति ?

2 किं त्वं तरणं जानासि ?

3 किं ईश्वरं द्रष्टुं शक्यते ?

4 किं भवते दुग्धं रोचते ?

5 मेघदूतम् कदा पठितवान् भवान् ?

1.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई में दैनिक जीवन में काम आने वाले कुछ संस्कृत वाक्यों का संग्रह किया गया है। ये संस्कृत वाक्य संस्कृत भारती द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'संस्कृतव्यवहार –साहस्री' से उद्धृत किए गए हैं। इस इकाई में संस्कृतव्यवहारसाहस्री पुस्तक के पहले आठ विषय उद्धृत किए गए है, जो इस प्रकार है –

1.	शिष्टाचारः	2.	मेलनम्	3.	सरलव्याक्यानि
4.	सामान्य–व्याक्यानि	5.	मित्र–मेलनम्	6.	यात्रा
7.	प्रवासतः प्रतिनिवर्तनम्	8.	छात्राः		

इन विषयों पर आधारित वाक्यों का अभ्यास करके छात्र कहीं भी संस्कृत भाषा में सम्भाषण कर सकेंगे।

1.6 मुख्य शब्दावली

- **आरक्षिसेवायाम्** – पुलिस सर्विस में
- **वित्तकोषे** – बैंक में
- **यानपेटिका** – सूटकेस
- **लोकयानेन** – बस से
- **त्रिचक्रिकया** – ऑटोरिक्शा से

1.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1 अहं शिक्षकः अस्मि।

2 आम्, अहं जानामि।

3 न शक्यते।

4 तत् मह्यं न रोचते।

5 किंचित् कालपूर्वएव।

1.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1 भवान् किं उद्यमं करोति ?

2 कथं मेलनं विरलं जातम् ?

3 किम् भारत–पाक–युद्धः भविष्यति ?

4 भवतः किम् कष्टम् अस्ति ?

5 भवतां दर्शनमेव दुर्लभं जातं किल ?

1.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1 संस्कृत–व्यवहार–साहस्री, प्रकाशक – संस्कृत भारती, माता मन्दिर गली, झण्डेवालान नई दिल्ली।
2 रचनानुवादकौमुदी – डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
3 अनुवाद – चन्द्रिका – चक्रधर नौटियाल 'हंस' मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
4 अभ्यासपुस्तकम् – विश्वास, संस्कृत भारती, बेंगलूरु।
5 रूपचन्द्रिका – डॉ० सुखराम, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली।
6 हिन्दी–संस्कृत–कोशः – डॉ० रामसरूप 'रसिकेश', चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

इकाई – 2

संस्कृत ग्रन्थानुशीलनम्

इकाई की रूपरेखा

2.1 परिचय

2.1.1 हितोपदेशः (मित्रलाभः)

2.1.2 दूतवाक्यम् (भासविरचितम्)

2.1.3 शुकनासोपदेशः (कादम्बरीतः)

2.2 इकाई के उद्देश्य

2.3 संस्कृत ग्रन्थानुशीलनम्

2.3.1 हितोपदेशः (मित्रलाभः)

2.3.2 दूतव्याक्यम् (भासविरचितम्)

2.3.3 शुकनासोपदेशः (कादम्बरीतः)

2.4 अपनी प्रगति जांचिए

2.5 सारांश

2.6 मुख्य शब्दावली

2.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

2.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

2.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं।

2.1 परिचय

2.1.1 हितोपदेशः (मित्रलाभः)

देखने सुनने में हितोपदेश की जन्तु कथाएँ बड़ी सरल सरस रोचक लगती हैं और इनमें गुम्फित उपदेश परक सूक्तियाँ जीवन के हर क्षेत्र में उपादेय साबित हो रही हैं इसलिए यह हजारों वर्ष पूर्व रचित होने पर भी कालातीत और सार्वकालिक सत्य का कान्तासम्मित उपदेशक ग्रन्थ बना हुआ है। विश्व की अनेक भाषाओं में इसके अनुवाद प्राप्त होते हैं। सुप्रसिद्ध ईसप की कहानियाँ भी इससे ही प्रभावित लगती हैं। सरल संस्कृत सीखने में इसका उपयोग सर्वत्र हो रहा है। इसकी दो विशेषताएँ स्पष्ट हैं –

1 अनेक सन्देहों को दूर करने वाला (अनेक संशयोच्छेदि)

2 परोक्ष (भूत) और भावी घटनाक्रम के रहस्यों का सूत्र देने वाला (परोक्षार्थस्य दर्शकम्)।

अर्थात् शास्त्रों की कठिन रहस्य–परक बातों को समझने की शक्ति इस संग्रह ग्रन्थ के मनन से आ जाती है – ऐसा लेखक का मन्तव्य प्रकट होता है।

मित्रलाभ के कथानक

1 चित्रग्रीव और हिरण्यक की कहानियाँ

2 वृद्ध व्याघ्र तथा लालची ब्राह्मण की कथा

3 मृग—सियार कथा

4 मूषक परिव्राजक कथा

5 जारद्गव बिलाव कथा

6 संचयी शृंगाल की कथा

7 हाथी और शृंगाल की कथा

2.1.2 दूतव्याक्यम् (भासविरचितम्)

दूतवाक्य की कथा महाभारत के उद्योग पर्व के अन्तर्गत भगवत्—यान पर्व से ली गई है। भास ने इस मूल कथा के प्रसंग को और रुचिकर बनाने के लिये अनेक परिवर्तन किये हैं। महाभारत की कथा के अनुसार कृष्ण के स्वागत के लिए दुर्योधन ने सभागार बनवाया, जैसा कि उसे धृतराष्ट्र ने आदेश दिया था। किन्तु वह कृष्ण को बन्दी बनाना चाहता था। स्वयं दुर्योधन कृष्ण के निवास स्थान पर आकर उनसे निवेदन करता है कि धृतराष्ट्र, भीष्म आदि सब लोग सभा में आ गये हैं। आप भी चलें। कृष्ण ने धृतराष्ट्र को सम्बोधित करते हुए पाण्डवों से सन्धि करने का प्रस्ताव रखा, किन्तु बात सिरे नहीं चढ़ी। कृष्ण ने दुर्योधन को अपना शंखचक्रादि से युक्त विश्वरूप दिखलाया। कृष्ण सबसे अनुमति लेकर कुन्ती से मिलने चले जाते हैं।

भास ने महाभारत के इस कथानक को नाटकोचित बनाने के लिए पात्रों की संख्या अत्यन्त कम कर दी और नायक दुर्योधन को महत्त्व देने के लिए धृतराष्ट्र आदि को इसका पात्र नहीं बनाया। महाभारत में भीष्म के सेनापति पद का चुनाव इस घटना के बाद में होता है, किन्तु इस नाटक में यह निर्णय पहले ही हो जाता है। कृष्ण के आने पर कोई अपने आसन से न उठे, यह कल्पना भास की है। जो महाभारत में नहीं है। इस प्रसंग से दुर्योधन का अभियान और कृष्ण का सम्मान प्रदर्शित हुआ है। चित्रपट की घटना भी भास की नवीन कल्पना है। कृष्ण का अपमान भी कवि की अपनी कल्पना है। महाभारत में दुर्योधन युद्ध के लिए इतना उत्तेचित नहीं दिखाई देता। महाभारत में कृष्ण को बन्दी बनाने की योजना मात्र है, जबकि दूतवाक्य में उसे बांधने के लिए आदेश तक दे दिया है। विश्वरूप प्रदर्शन का सम्पूर्ण दृश्य भास की काव्य प्रतिभा से सुकर और अभिनेय बन गया है।

दूतवाक्य में दुर्योधन का चरित्र महाभारत की इस अन्य कथा की अपेक्षा निम्नतर है। दूतवाक्य रूपकों की व्यायोग कोटि में आता हैं। इसमें व्यायोग उचित पुरुष पात्रों की अधिकता, विख्यात धीरोद्धत नायक, वीर और अद्भूत रस आदि हैं और इतिवृत्त ख्यात है। इस नाटक में व्यंजना का भरपूर प्रयोग हुआ है। दुर्योधन कृष्ण को युधिष्ठिर आदि को जारज सन्तान बतलाकर उनके पिता पर दोष लगाता है। इधर—कृष्ण भी उसका मुंह तोड़ उत्तर देता है कि तुम जारज सन्तान हो। तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र को तुम्हारी माता अम्बिका में व्यास ने उत्पन्न किया था।

दूतवाक्य में चन्द्रमा, हाथी आदि पदों का तथा इनके पर्यायवाची शब्दों का बार— बार प्रयोग किया गया है। नाटक में चित्रपट की योजना भी अत्यन्त नवीन है, इससे नाटक में रोचकता बढ़ी है तथा भास की शिल्प—प्रियता का बोध होता है।

नाटक में अमानुषी पात्र सुदर्शन आदि भी कवि की कल्पना की उपज हैं। ऐसी योजनाओं का परवर्ती साहित्य में विशेषकर नाटकों में बहुत प्रयोग हुआ है।

इसमें कृष्ण और दुर्योधन का संवाद अत्यन्त रोचक है। वाक्य छोटे–छोटे हैं। भाषा की सरलता तथा व्यंग्यात्मक शब्दों का प्रयोग नाटक को रंगमंच के योग्य बनाने में समर्थ हुआ है। वास्तव में भास इस नाटक में एक कुशल आचार्य एवं नाटककार के रूप में उपस्थित हैं। इस नाटक में उनका यह अमर सन्देश एवं शिक्षा है कि भाइयों से प्रेम करो, यह प्रेम इस लोक और परलोक दोनों में कल्याणकारी है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भास का दूतवाक्यम् एकांकी नाटक, अत्यन्त सरल तथा रंग–मंच पर अभिनय के योग्य सफल नाटक है।

पात्र–परिचय

मुख्य चरित्र

सूत्रधार	–	रंगमंच का संचालन
दुर्योधन	–	धृतराष्ट्र का पुत्र, कौरव नरेश
बादरायण	–	दुर्योधन का कांचुकीय
वासुदेव	–	पाण्डवों के दूत श्रीकृष्ण
सुदर्शन	–	श्रीकृष्ण का सुदर्शन नामक दिव्य अस्त्र
धृतराष्ट्र	–	दुर्योधन का पिता

गौण चरित्र

द्रोणाचार्य	–	गुरु
भीष्मपितामह	–	गुरु
शकुनि	–	दुर्योधन का मामा
कर्ण	–	दुर्योधन का मित्र
दुःशासन	–	दुर्योधन का भाई
वैकर्ण–वर्षदेव	–	दुर्योधन के परामर्शदाता
शांर्ग	–	श्रीकृष्ण का शंख
नन्दक	–	श्रीकृष्ण की तलवार
गरुड़	–	श्रीकृष्ण का वाहन

2.1.3 शुकनासोपदेशः (कादम्बरीतः)

कादम्बरी कथान्तर्गत शुकनासोपदेश अत्यन्त महत्वपूर्ण शिक्षाप्रद अंश है। गीता की तरह शुकनासोपदेश का भी स्वतंत्र महत्व है। यह एक ऐसा उपदेशात्मक ग्रंथ है जिसमें जीवन दर्शन का एक भी पक्ष बाणभट्ट की दृष्टि से ओझल नहीं हो सका। इसमें राजा तारापीड का नीतिनिपुण एवं अनुभवी मन्त्री शुकनास राजकुमार चन्द्रापीड को राज्याभिषेक के पूर्व वात्सल्य भाव से उपदेश देते हैं और रूप, यौवन, प्रभुता तथा ऐश्वर्य से उद्भूत दोषों से सावधान रहने की शिक्षा देते हैं। यह प्रत्येक युवक के लिए उपादेय उपदेश है। 'शुकनासोपदेश', कादम्बरी का प्रवेशद्वार माना जाता है। इसमें लक्ष्मी की ब्याजस्तुति ब्याज निन्दा का अत्यन्त मनोरम वर्णन है। 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' इस उक्ति को चरितार्थ करने वाला यह साहित्य है। इसके अध्ययन से काव्यात्मक तत्व का तो ज्ञान होता ही है, साथ में

तत्कालीन सामाजिक ज्ञान भी प्राप्त होता है। शुकनासोपदेश का नायक राजकुमार चन्द्रापीड है, जो सत्व, शौर्य और आर्जव भावों से युक्त है। शुकनास एक अनुभवी मन्त्री हैं जो चन्द्रापीड को राज्याभिषेक के पूर्व वात्सल्यभाव से उपदेश देते हैं। वे उसे युवावस्था में सुलभ रूप, यौवन, प्रभुता एवं ऐश्वर्य से उद्भूत दोषों के विषय में सावधान कर देना उचित समझते हैं। इसे युवावस्था में प्रवेश कर रहे समस्त युवकों को प्रदत्त 'दीक्षान्त भाषण' कहा जा सकता है। चन्द्रापीड को दिये गये शुकनासोपदेश में कवि की प्रतिभा का चरमोत्कर्ष परिलक्षित होता है। कवि की लेखनी भावोद्रेक में बहती हुई सी प्रतीत होती है। शुकनासोपदेश में ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रतीत होता है मानो सरस्वती साक्षात् मूर्तिमती होकर बोल रही हैं। इसमें बाणभट्ट की शब्दचातुरी प्रदर्शित हुई है।

2.2 इकाई के उद्देश्य

- हितोपदेश की काव्यगत विशेषताओं का विश्लेषण कर पाएंगे,
- दूतवाक्यम् की कथावस्तु से अवगत हो सकेंगे,
- शुकनासोपदेश के महत्त्व को समझ पाएंगे,
- हितोपदेश के मित्र लाभ की कथाओं का विश्लेषण कर सकेंगे,
- शुकनासोपदेश के अनुसार जीवन–दर्शन की समीक्षा कर सकेंगे।

2.3 संस्कृत ग्रन्थानुशीलनम्

2.3.1 हितोपदेशः (मित्रलाभः)

प्रास्ताविकम्

अथ मंगलाचरणम्

सिद्धिः साध्ये सतामस्तु प्रसादात्तस्य धूर्जटेः।

जाह्नवी–फेन–लेखेव यन्मूर्ध्नि शशिनः कला।।1।।

अनुवाद : मंगलाचरण – जिन (जटा–भार–धारी महादेव जी) के सिर पर गंगा जी के फेन की रेखा के समान चन्द्रमा की कला (शोभायमान होती है), उन धूर्जटि (जटा–भार –धारी) की कृपा से सज्जनों के अभीष्ट कार्य में सफलता होवे।1।

श्रुतो हितोपदेशोऽयं पाटवं संस्कृतोक्तिषु।

वाचां सर्वत्र वैचित्र्यं नीतिविद्यां ददाति च।।2।।

अनुवाद : अच्छी प्रकार पढ़े जाने पर यह हितोपदेश नामक ग्रन्थ संस्कृत की सूक्तियों में कुशलता, सब विषयों में वाणी का चातुर्य तथा नीति–विद्या सिखाता है।2।

अजराऽमर–वत् प्राज्ञो विद्यामर्थ च चिन्तयेत्।

गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्।।3।।

अनुवाद : बुद्धिमान मनुष्य को अपने को जरा–रहित (अजर) तथा मृत्यु–रहित (अमर) के समान मान कर ज्ञान तथा धन (प्राप्ति) का विचार करना चाहिए, (किन्तु) धर्माचरण करते हुए उसे ऐसा सोचना चाहिए जैसे कि मृत्यु के द्वारा उसे बालों से पकड़ लिया गया हो।3।

विद्या तथा धन कमाने में कभी सन्तोष न करें तथा धर्माचरण में विलम्ब न करें, क्योंकि न जाने कब मृत्यु सिर पर आ जाए।

सर्व–द्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम्।
अहार्यत्वादनर्घत्वोदक्षयत्वाच्च सर्वदा।।4।।

अनुवाद : (विद्वान् लोग) कहते हैं कि संसार के सब द्रव्यों में विद्या ही सर्वश्रेष्ठ धन है, क्योंकि यह न तो चुराया जा सकता है, न इसका कोई मोल लग सकता है तथा न इसका कभी क्षय (नाश या कमी) हो सकता है।4।

संयोजयति विद्यैव नीचगाऽपि नरं सरित्।
समुद्रमिव दुर्धर्षं नृपं भाग्यमतः परम्।।5।।

अनुवाद : नीच मनुष्य के पास होते हुए भी विद्या उसी प्रकार मनुष्य को निरंकुश (दुर्धर्ष) राजा के पास पहुँचा देती है जैसे नीचे की ओर बहते हुए भी नदी स्वाश्रितों को भंयकर (दुर्धर्ष) समुद्र तक ले जाती है। इसके बाद (जैसा मनुष्य का) भाग्य होता है, (वैसा ही उसे लाभ होता है)।5।

विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति, धनाद्धर्मं ततः सुखम्।।6।।

अनुवाद : विद्या नम्रता देती है, नम्रता से (मनुष्य) योग्यता को प्राप्त करता है, योग्यता से धन प्राप्त करता है, धन से धर्म को (तथा) उससे सुख (प्राप्त करता है)।6।

विद्या ही सब सुखों का साधन है।

विद्या शस्त्रस्य शास्त्रस्य, द्वे विद्ये प्रतिपत्तये।
आद्या हास्याय वृद्धत्वे, द्वितीयाऽऽद्रियते सदा।।7।।

अनुवाद : शस्त्र विद्या और शास्त्र विद्या – दोनों विद्याएँ कीर्ति के लिए हैं। पहली विद्या (शस्त्र विद्या) बुढ़ापे में हँसी कराती है, परन्तु दूसरी (शास्त्र विद्या) सदैव (लोगों द्वारा) पूजी जाती है।7।

यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नाऽन्यथा भवेत्।
कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते।।8।।

अनुवाद : क्योंकि नये पात्र (नये बर्तन अथवा छोटे बालक) पर किया हुआ संस्कार (रेखाकृति अथवा शिक्षण) नष्ट नहीं होता है, इसलिए इस (ग्रन्थ) में कथा के बहाने से (मेरे द्वारा) बालकों के लिए नीति (राजनीति तथा व्यवहारनीति) का उपदेश किया जा रहा है।8।

जैसे नये बर्तन पर बने निशान को दूर नहीं किया जा सकता, इसी प्रकार यदि छोटे बालकों को नीति की शिक्षा दी जाए तो वह उनके चित्त में दृढ़ स्थान बना लेती है। वह नीति शिक्षा रोचक कथाओं के माध्यम से बच्चों को दी जा रही है।

मित्रलाभः सुहृद्भेदो विग्रहः सन्धिरेव च।
पंचतन्त्रात्तथाऽन्यस्माद् ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते।।9।।

अनुवाद : मित्रलाभ, सुहृद्–भेद, विग्रह तथा सन्धि (इन चार प्रकरणों से युक्त यह हितोपदेश नामक ग्रन्थ) पंचतन्त्र नामक ग्रन्थ से तथा अन्य ग्रन्थ से (सामग्री) लेकर तथा संक्षिप्त करके लिखा जा रहा है।9।

अस्ति भागीरथी–तीरे पाटलिपुत्र–नामधेयं नगरम्। तत्र सर्व–स्वामि–गुणोपेतः सुदर्शनो नाम नरपतिरासीत्। स भूपतिरेकदा केनापि पठ्यमानं श्लोकद्वयं शुश्राव–

अनुवाद : गंगा के किनारे पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) नामक शहर है। वहाँ पर स्वामी (अर्थात् राजा) के सब गुणों से युक्त सुदर्शन नाम का राजा था। उस राजा ने एक बार किसी से पढ़े जाते हुए दो श्लोकों को सुना।

अनेक–संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम्।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नाऽस्त्यन्ध एव सः।।10।।

अनुवाद : जिसके पास सब सन्देहों का नाश करने वाला, दृष्टि से छिपे हुए (परोक्ष) पदार्थों को प्रकट (प्रत्यक्ष) करने वाला, सब लोगों का मार्गदर्शक (शब्दार्थ–लोचनं=नेत्र) शास्त्र (का ज्ञान) नहीं है, वह मनुष्य निश्चय ही अन्धा है।10।

यौवनं धन–सम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्।।11।।

अनुवाद : जवानी, धन–दौलत, प्रभुत्ता तथा अज्ञानता – इनमें से एक–एक भी अनर्थ का कारण है, चारों की तो बात ही क्या ?।11।

इत्याकर्ण्याऽऽत्मनः पुत्राणामनधिगत–शास्त्राणां नित्यमुन्मार्ग–गामिनां शास्त्राननुष्ठा –नेनोद्विग्नमनाः स राजा चिन्तयामास–

अनुवाद : इसे सुनकर वह राजा शास्त्राध्ययन से शून्य सदा बुरे मार्ग पर चलने वाले अपने पुत्रों के शास्त्रों का अनुष्ठान न करने के कारण व्याकुल चित्त से सोचने लगा –

कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न धार्मिकः।
काणेन चक्षुषा किं वा चक्षुः पीडैव केवलम्।।12।।

अनुवाद : जो न तो विद्वान् ही है और न ही धार्मिक, उस पुत्र के उत्पन्न होने से क्या लाभ है ? कानी आँख से कोई लाभ नहीं होता, वह तो केवल कष्ट देने के लिए ही होती है।12।

अजात–मृत–मूर्खाणां वरमाद्यौ न चाऽन्तिमः।
सकृद्–दुःखकरावाद्यावन्तिमस्तु पदे–पदे।।13।।

अनुवाद : अजात (जो उत्पन्न न हो), मृत (जो उत्पन्न होते ही मर जाए) तथा मूर्ख (पुत्रों) में से प्रथम दो (अजन्मा तथा मृत पुत्र) तो कुछ अच्छे हैं, अंतिम (मूर्ख पुत्र) अच्छा नहीं है (क्योंकि) प्रथम दो (अजन्मा तथा मरा हुआ पुत्र) तो एक बार ही दुःख देते हैं, किन्तु अंतिम (मूर्ख पुत्र) तो कदम–कदम पर (दुःख देता है)।13।

स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।
परिवर्त्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।।14।।

अनुवाद : वही (पुत्र सच्चे अर्थ में) उत्पन्न हुआ है जिसके उत्पन्न होने से उसका कुल उन्नति (तथा ख्याति) को प्राप्त करता है। अन्यथा इस परिवर्तनशील जगत् में (कौन नहीं मरता है और) कौन मर कर (पुनः) जन्म नहीं लेता है (अर्थात् जो बिना कुछ किए मरते और पैदा होते रहते हैं उनका पैदा होना वास्तव में पैदा होना नहीं है)।14।

गुणि–गण–गणनाऽऽरम्भे न पतति कठिनी सुसम्भ्रमाद्यस्य।
तेनाऽम्बा यदि सुतिनी वद वन्ध्या कीदृशी भवति।।15।।

अनुवाद : गुणी लोगों के समुदाय के शुरू में जिस मनुष्य के (नाम पर) सहसा प्रथम, सबसे छोटी उंगली नहीं गिरती है (अर्थात् जिसकी सबसे पहले गिनती नहीं होती है) तथा उस मनुष्य की माता यदि (संसार में) पुत्रवती मानी जाती है (अथवा वह अपने आपको पुत्रवती समझती है) तो कहो फिर वन्ध्या (बांझ, नपूती) किसको कहेंगे।15।

अपि च

दाने तपसि शौर्ये च यस्य न प्रथितं यशः।
विद्यायामर्थलाभे च मातुरूच्चार एव सः।।16।।

अनुवाद : और भी–दान में, तपस्या में, वीरता में, विद्या में तथा धन की प्राप्ति में जिसका यश नहीं फैला वह तो माता का मल ही है।16।

'यशः' के स्थान पर पाठांतर 'मनः' हो तो 'मनः न प्रथितम्' का अर्थ होगा 'जिसका मन नहीं खुला।'

अपरं च

वरमको गुणो पुत्रो न च मूर्ख–शतान्यपि।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणोऽपि च।।17।।

अनुवाद : और भी–एक (ही) गुणी का पुत्र अच्छा है, न कि सौ मूर्ख पुत्र। अकेला चंद्रमा अंधकार दूर कर देता है, तारा–समूह भी (उसे) दूर नहीं कर पाता है।17।

पुण्य–तीर्थे कृतं येन तपः क्वाऽप्यति–दुष्करम्।
तस्य पुत्रो भवेद्वश्यः समृद्धः धार्मिको सुधीः।।18।।

अनुवाद : जिसके द्वारा कहीं किसी भी पवित्र तीर्थ में बहुत कठोर तपस्या की गई होती है उसका (ही) पुत्र आज्ञाकारी, धनी, धार्मिक (तथा) विद्वान् होता है।18।

अर्थाऽऽगमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रिय–वादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थ–करी च विद्या षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्।।19।।

अनुवाद : हे राजन् (युधिष्ठिर), प्राणियों के संसार में छः सुख हैं – नित्य धन–प्राप्ति, आरोग्य, प्रेयसी, मधुर बोलने वाली पत्नी, आज्ञाकारी पुत्र तथा धन पैदा करने वाली विद्या।19।

को धन्यो बहुभिः पुत्रैः कुशूलाऽऽपूरणाऽऽढकैः।
वरमेकः कुलाऽऽलम्वी यत्र विश्रूयते पिता।।20।।

अनुवाद : अनाज के कोठे को भरने में समर्थ आढ़कों (माप–विशेष, विशिष्ट के सूचक) के समान अनेक पुत्रों के होने मात्र से कौन भाग्यशाली माना जाएगा ? ऐसा एक पुत्र अच्छा है जो कुल का आसरा हो तथा जिसके कारण पिता की प्रसिद्धि हो।20।

ऋण–कर्त्ता पिता शत्रुर्माता च व्यभिचारिणी।
भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रः शत्रुरपण्डितः।।21।।

अनुवाद : कर्जदार (ऋण करने वाला, ऋणी) पिता शत्रु–तुल्य होता है। व्यभिचार करने वाली माता शत्रु–तुल्य होती है। रूपवती पत्नी शत्रु–तुल्य होती है तथा अशिक्षित पुत्र शत्रु–तुल्य होता है।21।

अनभ्यासे विषं विद्या, अजीर्णे भोजनं विषम्।
विषं सभा दरिद्रस्य, वृद्धस्य तरुणी विषम्।।22।।

अनुवाद : बिना अभ्यास के विद्या विष (के समान) है, अजीर्ण (= अपच) होने पर भोजन विष (के समान) है, दरिद्र के लिए सभा–सम्मेलन विष (तुल्य) है (तथा) बूढ़े व्यक्ति के लिए युवती स्त्री विष (के समान) है।

यस्य कस्य प्रसूतोऽपि गुणवान्पूज्यते नरः।
धनुर्वन्श–विशुद्धोऽपि निर्गुणः किं करिष्यति।।23।।

अनुवाद : जिस किसी कुल में पैदा होकर भी गुणी मनुष्य पूजित होता है। पवित्र कुल में पैदा होकर भी गुण रहित मनुष्य क्या कर सकता है ? जैसे अच्छे बांस से बना होने पर भी धनुष यदि गुण अर्थात् डोरी से रहित हो तो वह क्या कर सकता है अर्थात् कुछ नहीं कर सकता।23।

गुण ही आदर का स्थान है, न कि कुल।

हा हा पुत्रक नाधीतं सुगतैतासु रात्रिषु।
तेन त्वं विदुषां मध्ये पङ्के गौरिव सीदसि।।24।।
तत्कथमिदानीमेते मम पुत्रा गुणवन्तः क्रियान्ताम् यतः

अनुवाद : आराम से जीवन बिताने वाले हे बालक, खेद है कि इन रातों में तुमने कुछ नहीं पढ़ा, इसीलिए तुम विद्वानों के बीच ऐसे ही क्लेश पाते हो जैसे कीचड़ में गाय।24।

आहार–निद्रा–भय–मैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।25।।

अनुवाद : भोजन, नींद, डर तथा मैथुन (रति) – ये (चार बातें) मनुष्य और पशुओं में समान रूप से हैं। मनुष्य में केवल धर्म (गुण) ही अतिरिक्त वैशिष्ट्य है, इसलिए धर्म– हीन (विद्या, विनय आदि गुणों से रिक्त) मनुष्य पशु के समान है।25।

धर्माऽर्थ–काम–मोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्।।26।।

अनुवाद : धर्म, अर्थ, काम (तथा) मोक्ष–इनमें से जिसके पास एक भी नहीं है, उस मनुष्य का जन्म उसी प्रकार अर्थ–हीन है जैसे बकरी के गले का स्तन (चमड़े की स्तनाकार लम्बी थैली)।26।

यच्चोच्ये –

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।
पंचैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः।।27।।

अनुवाद : तथा कुछ लोगों द्वारा कहा जाता है कि 'आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु – ये पाँच भी गर्भ–स्थित जीव के साथ पैदा हो जाते हैं'।27।

अवश्यं भाविनो भावा भवन्ति महतामपि।
नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहिशयनं हरेः।।28।।

अनुवाद : और भी–महान् लोगों के साथ भी अवश्य होने वाली बातें हो कर रहती हैं। शिव जी का नग्न रहना, (तथा) विष्णु का शेषनाग (की शय्या) पर सोना– (इसमें प्रमाण हैं)।28।

यदभावि न तद्भावि, भावि चेन्न तदन्यथा।
इति चिन्ता–विषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते।।29।।

अनुवाद : जो बात नहीं होने वाली है वह कभी नहीं होगी। यदि कोई बात होने वाली है तो वह अन्यथा नहीं हो सकती है अर्थात् मिट नहीं सकती है। चिन्ता रूपी विष का नाश करने वाली इस (विचार रूपी) औषध का लोग पान क्यों नहीं करते हैं।29।

अर्थात् लोग यदि इस बात को समझ कर आचरण करें तो उन्हें किसी प्रकार की चिन्ता नहीं हो सकती।

न दैवमपि संचिन्त्य त्येजदुद्योगमात्मनः।
अनुद्योगेन तैलानि तिलेभ्यो नाऽऽप्तुमर्हति।।30।।

अनुवाद : भाग्य को मान कर ही मनुष्य अपने उद्योग को नहीं छोड़े। बिना उद्योग के तो वह तिलों से भी तेल प्राप्त नहीं कर सकता।30।

अतः भाग्य पर भरोसा न रख कर मनुष्य को अवश्य उद्योग करना चाहिए। उसके बिना उसे अभ्युदय की प्राप्ति नहीं हो सकती।

अन्यच्च –

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी 'दैवेन देय' मिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्म–शक्त्या यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः।।31।।

अनुवाद : और भी, लक्ष्मी (सम्पत्ति, सफलता) उद्योग–शील श्रेष्ठ मनुष्य के पास (स्वतः ही) आती है (सब सुख दुःख भाग्य के द्वारा ही दिया जाता है) – ऐसा तो कायर पुरुष ही करते हैं। दैव (भाग्य, अदृष्ट) की अपेक्षा करके (शाब्दिक अर्थ–हत्या करके) अपनी शक्ति के अनुसार उद्योग करो। यत्न करने पर भी यदि सफलता न मिलती है तो इसमें यत्न करने वाले मनुष्य का क्या दोष है अथवा यत्न करने पर भी सफलता नहीं मिलती है तो यह विचार करना चाहिए कि इस यत्न में क्या कमी रह गई है।31।

यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत्।
एवं पुरुषकारेण बिना दैवं न सिध्यति।।32।।

अनुवाद : जैसे एक चक्र से रथ नहीं चल सकता है, उसी प्रकार उद्योग के बिना केवल भाग्य से ही सफलता नहीं मिलती है।32।

तथा च

पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते।
तस्मात्पुरुषकारेण यत्नं कुर्यादतन्द्रितः।।33।।

अनुवाद : और भी (जो) पूर्व जन्म में किया हुआ कर्म है वही दैव (भाग्य) कहा जाता है इसलिए मनुष्य को पुरुषार्थ के साथ आलस्य–रहित होकर यत्न करना चाहिए।33।

यथा मृत्पिण्डतः कर्त्ता कुरूते यद्यदिच्छति।
एवमात्मकृतं कर्म मानवः प्रतिपद्यते।।34।।

अनुवाद : जैसे कुम्हार (शब्दार्थ – करने वाला, बनाने वाला) मिट्टी के पिण्ड से जो– जो वस्तु चाहता है, उस उसको बनाता है, उसी प्रकार मनुष्य अपने किए हुए कर्म (के फल) को प्राप्त करता है।34।

काकतालीयवत्प्राप्तं दृष्ट्वाऽपि निधिम्रगतः।
न स्वयं दैवमादत्ते पुरुषार्थमपेक्षते।।35।।

अनुवाद : काकतालीय न्याय से (अर्थात् अकस्मात्, भाग्य से) प्राप्त हुए धन को सामने देखकर भी दैव स्वयं उसे नहीं उठाता है, (अपितु) पुरुषार्थ (उद्योग) का सहारा लेता है।35।

उद्योग के बिना सामने पड़ी हुई वस्तु भी उसके हाथ नहीं लगती।

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।।36।।

अनुवाद : कार्य पुरुषार्थ से ही पूर्ण होते हैं, इच्छाओं मात्र से पूर्ण नहीं होते। क्योंकि सोये हुए सिंह के मुँह में पशु स्वयं प्रवेश नहीं करते हैं।36।

जंगल के राजा सिंह को भी मृग आदि पशुओं का शिकार करने का उद्योग करना होता है।

माता–पितृ–कृताऽभ्यासो गुणितामेति बालकः।
न गर्भ–च्युति–मात्रेण पुत्रो भवति पण्डितः।।37।।

अनुवाद : माता तथा पिता के द्वारा जिसे अभ्यास कराया जाता है (अर्थात् शिक्षित किया जाता है) ऐसा बालक गुणवत्ता को प्राप्त करता है। केवल जन्म ग्रहण से (शब्दार्थ–गर्भ से बाहर छूटने मात्र से) पुत्र पण्डित नहीं हो जाता।37।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभा–मध्ये हंस–मध्ये बको यथा।।38।।

अनुवाद : वह माता शत्रु है (तथा) वह पिता वैरी है जिनके द्वारा पुत्र (शब्दार्थ–बालक) नहीं पढ़ाया गया। हंसों के बीच में बगुले के समान सभ्य लोगों के बीच में वह (मूर्ख) बालक शोभा नहीं देता है।38।

रूप–यौवन–सम्पन्ना विशाल–कुल–सम्भवाः।
विद्या–हीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः।।39।।

अनुवाद : सौन्दर्य तथा जवानी से समृद्ध तथा अत्यन्न उत्तम वंश में उत्पन्न विद्या से रहित मनुष्य गन्ध रहित पलाश (ढाक) के फूलों के समान शोभा नहीं पाते हैं।39।

मूर्खोऽपि शोभते तावत्सभायां वस्त्र–वेष्टितः।
तावच्च शोभते मूर्खो यावत्किचिंन्न भाषते।।40।।

अनुवाद : (दुशाला इत्यादि रेशमी) वस्त्रों से ढका हुआ मूर्ख भी निश्चय ही विद्वानों की सभा में शोभा पाता है। किन्तु वह मूर्ख तब तक ही शोभा पाता है जब तक वह कुछ नहीं बोलता है।40।

एतच्चिन्तयित्वा स राजा पण्डितसभां कारितवान्। राजोवाच–भो भोः पण्डिताः। श्रूयताम्। अस्ति कश्चिदेवंभूतो विद्वान्यो मम पुत्राणां नित्यमुन्मार्ग–गामिनामनधिगत–शास्त्राणामिदानीं नीतिशास्त्रापदेशेन पुनर्जन्म कारयितुं समर्थः।

अनुवाद : यह सोचकर उस राजा ने विद्वानों की एक बैठक बुलवाई। राजा ने कहा – हे विद्वानों ! सुनियेगा। क्या (आप में) कोई इस प्रकार का विद्वान् है जो सदैव उल्टे रास्ते पर चलने वाले, शास्त्रों को न पढ़े हुए मेरे पुत्रों को अब नीति–शास्त्र की शिक्षा के द्वारा पुनर्जन्म दिलाने में समर्थ हो।

यत्

काचः कांचन–संसर्गाद्धते मारकतीं द्युतिम्।
तथा सत्संनिधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम्।।41।।

अनुवाद : क्योंकि (जिस प्रकार) कांच सोने के सम्पर्क से मरकत–मणि (पन्ने) की कान्ति को पा जाता है। उसी प्रकार सज्जनों की संगति से मूर्ख कुशलता को प्राप्त करता है।41।

उक्तं च –

हीयते हि मतिस्तात हीनैः सह समागमात्।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम्।।42।

अनुवाद : और कहा गया है : हे बन्धुवर ! अपने से छोटे लोगों के साथ मेल करने से बुद्धि छोटी हो जाती है, बराबर बुद्धि वालों का साथ करने से बुद्धि सामान्य रहती है तथा विशेष लोगों से सम्पर्क से बुद्धि उत्कर्ष को प्राप्त करती है।42।

अत्रान्तरे, विष्णुशर्मनामा महापण्डितः सकल–नीतिशास्त्रतत्त्वज्ञो बृहस्पतिरिवाब्रवीत्–देव, महाकुल–संभूता एते राजपुत्राः। तन्मया नीतिं ग्राहयितुं शक्यन्ते। यतः –

अनुवाद : इसके बाद समस्त नीतिशास्त्र के रहस्य का ज्ञाता (अथवा नीति–शास्त्र के सम्पूर्ण सिद्धान्तों का ज्ञाता) महापण्डित विष्णुशर्मा (दूसरे) बृहस्पति के समान बोला, 'हे प्रभो, ये राजकुमार उच्च कुल में पैदा हुए हैं, तो मुझ से नीति (की शिक्षा) प्राप्त करने में समर्थ हैं। क्योंकि –

नाऽद्रव्ये निहिता काचित्क्रिया फलवती भवेत्।
न व्यापारशतेनाऽपि शुकवत्पाठ्यते वकः।।43।।

अनुवाद : अयोग्य पात्र में रखी गई (अर्थात् की गई) कोई (भी) क्रिया फल देने वाली नहीं होती। सैंकड़ों तरीकों से उपाय करने पर भी बगुले को तोते की तरह नहीं पढ़ाया जा सकता।43।

अन्यच्च –

अस्मिंस्तु निर्गुणं गोत्रे नापत्यमुपजायते।
आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणेः कुतः।।44।।
अतोऽहं षण्मासाभ्यन्तरे तव पुत्रान्नीतिशास्त्राऽभिज्ञान्करिष्यामि। राजा सविनयं पुनरुवाच।

अनुवाद : और भी – (आपके) इस कुल में गुण रहित सन्तान पैदा नहीं होती। पुखराज (मणियों) के भण्डार में काचमणि का जन्म कैसे (सम्भव है)।44।

इसलिए मैं छः महीनों में तुम्हारे पुत्रों को नीतिशास्त्र का ज्ञात कर दूँगा। राजा विनय के साथ पुनः बोला –

कीटोऽपि सुमनः संगादारोहति सतां शिरः।
अश्माऽपि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः।।45।।

अनुवाद : फूलों के सहवास से कीड़ा भी सज्जनों के सिर पर चढ़ जाता है (अर्थात् उच्च स्थान प्राप्त करता है)। बड़ों द्वारा सम्मानित पत्थर भी देवता की पदवी को प्राप्त करता है।45।

यथोदयगिरेर्द्रव्यं संनिकर्षेण दीप्यते।
तथासत्संनिधानेन हीनवर्णोऽपि दीप्यते।।46।।

अनुवाद : और भी जैसे उदयाचल की वस्तुएँ सूर्य के समीप होने से चमकने लगती हैं, उसी तरह सज्जनों के संसर्ग से क्षुद्र मनुष्य भी विद्वान् हो जाते हैं।46।

गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः।
आस्वाद्यतोयाः प्रभवन्ति नद्यः समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः।।47।।

अनुवाद : गुण को समझने वालों में गुण (वास्तव में) गुण बनते हैं, वे (गुण) रहित मनुष्य को पाकर (वैसे ही) दोष बन जाते हैं (जैसे) नदियाँ स्वादिष्ट जल वाली होकर उत्पन्न होती हैं किन्तु समुद्र को प्राप्त करके न पीने योग्य (जल वाली) हो जाती हैं।47।

तदेतेषामस्मत्पुत्राणां नीतिशास्त्रोपदेशाय भवन्तः प्रमाणम्। इत्युक्त्वा तस्य विष्णुशर्मणो बहुमानपुरःसरं पुत्रान्समर्पितवान्।

इति प्रास्ताविकम्।

अनुवाद : तब मेरे इन पुत्रों को नीतिशास्त्र का उपदेश देने में आप समर्थ हैं। ऐसा कहकर उसने बड़े सम्मान के साथ विष्णुशर्मा को (अपने) पुत्र सौंप दिए। प्रास्ताविकम् (भूमिका) समाप्त।

मित्रलाभः

अथ प्रासादपृष्ठे सुखोपविष्टानां राजपुत्राणां पुरस्तात् प्रस्तावक्रमेण स पण्डितोऽब्रवीत्।

अनुवाद : इसके बाद (एक बार) महल की छत पर आनन्द से बैठे हुए राजकुमारों के सामने बातचीत के सिलसिले में विष्णुशर्मा नाम के वह पण्डित जी बोले –

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कल्लेन वा।।1।।

अनुवाद : बुद्धिमान् मनुष्यों का समय काव्यों तथा शास्त्रों के अध्ययन द्वारा अथवा मनोरंजन करने में बीतता है और मूर्खों का समय द्यूतादि दुर्व्यसनों, निद्रा अथवा लड़ाई –झगड़े में।1।

तद् भवतां विनोदाय काककूर्मादीनां विचित्रां कथां कथयामि। राजपुत्रैरूक्तम् – "आर्य ! कथ्यताम्।" विष्णुशर्मोवाच – 'शृणुत। सम्प्रति मित्रलाभः प्रस्तूयते, यस्याऽयमादिमः श्लोक –

अनुवाद : (क्योंकि बुद्धिमानों का समय काव्यादि के अध्ययन में बीतता है और आप सब बुद्धिमान् हैं) इसलिये आप लोगों के मनोरंजन के लिये कौए तथा कछुए आदियों की अद्भुत कहानी कहता हूँ। राजपुत्रों ने कहा – 'श्रीमान् ! कहिये।' तब विष्णुशर्मा ने कहा – 'सुनिये। इस समय मित्रलाभ की कहानी प्रारम्भ की जाती है' जिसका यह पहला श्लोक है –

असाधना वित्तहीना बुद्धिमन्तः सुहृत्तमाः।
साधयन्त्याशु कार्याणि काककूर्ममृगाखुवत्।।2।।

अनुवाद : साधनहीन तथा धनहीन होने पर भी बुद्धिमान् और उत्तम मित्र कौए, कछुए, हरिण और चूहे के समान अपने काम शीघ्र ही सिद्ध कर लेते हैं।2।

(अर्थात् जो व्यक्ति स्वयं बुद्धिमान् होते हैं और जिने सच्चे मित्र होते हैं, वे अपने कार्यों को शीघ्र ही सिद्ध कर लेते हैं, चाहे फिर उनके पास किसी प्रकार का साधन न भी हो।)

राजपुत्राः ऊचुः – 'कथमेमत्' विष्णुशर्मा कथयति।

अनुवाद : राजकुमारों ने कहा – यह कैसे ? तो विष्णुशर्मा कहने लगे –

मुख्य–कथा

कथा 1

कपोतराजमूषिकराजयोः कथा
(कबूतरों के राजा तथा चूहों के राजा की कहानी)

अस्ति गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरूः। तत्र नानादिग्देशादागत्य रात्रौ पक्षिणो निवसन्ति। अथ कदाचिद् अवसन्नायां रात्रौ, अस्ताचलचूडावलम्बिनि भगवति कुमुदिनीनायके चन्द्रमसि, लघुपतनकनामा वायसः प्रबुद्धः कृतान्तमिव द्वितीयमायान्तं व्याधमपश्यत्। तमवलोक्याचिन्तयत् 'अद्य प्रातरेवानिष्टदर्शनं जातम्, न जाने किमनभिमतं दर्शयिष्यति' इत्युक्त्वा तदनुसरणक्रमेण व्याकुलश्चलितः। यतः

अनुवाद : गोदावरी नदी के तट पर एक बहुत बड़ा सेमल का वृक्ष था। वहां अनेक दिशाओं तथा देशों से आकर रात में पक्षी निवास करते थे। एक बार रात ढल जाने पर जब कुमुदिनी पति भगवान् चन्द्रमा अस्ताचल के शिखर का आश्रय लेने लगे (डूबने लगे), तब लघुपतनक नाम का एक कौआ जागा। (उठते ही) उसने दूर से यमराज के समान आते हुए एक शिकारी को देखा। उसे देख कर सोचने लगा – "आज तो प्रातः काल ही एक अनिष्टकारी वस्तु का

दर्शन हुआ। न मालूम यह क्या अनिष्ट दिखाएगा।'' यह कह कर वह कौआ घबराया हुआ उसका पीछा करता हुआ चल दिया। क्योंकि –

शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न, पण्डितम्।।3।।

अनुवाद : (मनुष्य के सामने) प्रतिदिन हज़ारों शोक के अवसर तथा सैंकड़ों भय के निमित्त उपस्थित हुआ करते हैं। परन्तु वे (शोक व भय के निमित्त) मूर्ख को ही सताते हैं, विद्वान् को नहीं। (क्योंकि बुद्धिमान् मनुष्य उन्हें अपने बुद्धि बल से दूर करने में समर्थ होते हैं।) ।3।

अन्यच्च–विषयिणामिदमवश्यं कर्तव्यम्।

अनुवाद : साथ ही सांसारिक विषयों में व्यस्त मनुष्यों को प्रतिदिन यह अवश्य करना चाहिए कि –

उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं महद् भयमुपस्थितम्।
मरणव्याधिशोकानां किमद्य निपतिष्यति।।4।।

अनुवाद : प्रतिदिन उठते ही यह सोचना कि आज मृत्यु, रोग अथवा शोक में से न मालूम कौन–सी भंयकर विपत्ति आ जाएगी ।4।

अथ तेन व्याधेन तण्डुलकणान् विकीर्य जालं विस्तीर्णम्। स च प्रच्छन्नो भूत्वा स्थितः। तस्मिन्नेव काले चित्रग्रीवनामा कपोतराजः सपरिवारो वियति विसर्पन् तान् तण्डुलकणानवलोकयामास। ततः कपोतराजः तण्डुलकणलुब्धान् कपोतान् प्रत्याहकुतोऽत्र निर्जने वने तण्डुलकणानां संभवः ? तन्निरूप्यतां तावत्। भद्रमिदं न पश्यामि। प्रायेणानेन तण्डुलकणलोभे नास्माभिरपि तथा भवितव्यम्।

अनुवाद : कुछ देर बाद उस शिकारी ने चावल के दाने बिखेर कर जाल फैला दिया और वह स्वयं छिप कर बैठ गया। उसी समय अपने परिवार के साथ आकाश में उड़ते हुए चित्रग्रीव नामक कबूतरों के राजा ने चावलों के दाने देखे। इसके बाद उस कपोतराज (चित्रग्रीव) ने चावल के दानों के लिए ललचाते हुए कबूतरों को लक्ष्य करके कहा – इस निर्जन वन में चावल के दाने कहां से आ सकते हैं ? अतः पहले इस बात का विचार भली–भांति कर लो। मुझे तो इसमें कोई भलाई नहीं दिखती। बहुत संभव है कि इन चावल के दानों के लोभ से हम लोगों की भी वही दशा न हो (जैसी कि पथिक की हुई)।

कंकणस्य तु लोभेन मग्नः पङ्के सुदुस्तरे।
वृद्धव्याघ्रेण संप्राप्तः पथिकः सः मृतो यथा।।5।।

अनुवाद : कंगन के लोभ से गाढ़े कीचड़ में फंसा हुआ पथिक जिस प्रकार बूढ़े व्याघ्र द्वारा पकड़े जाने पर मर गया, (वही दशा हम लोगों की भी हो सकती है।) ।5।

कपोता ऊचुः – 'कथमेतत्।' सोऽब्रवीत् –

अनुवाद : कबूतरों ने पूछा – यह कैसे हुआ। तब वह चित्रग्रीव बोला –

कथा 2

वृद्धव्याघ्रलुब्धपान्थयोः कथा
(एक बूढ़े व्याघ्र और लोभी पथिक की कथा)

अहमेकदा दक्षिणारण्ये चरन्नपश्यम् एको वृद्धो व्याघ्रः स्नातः कुशहस्तः सरस्तीरे ब्रूते – 'भोः भोः पान्थाः इदं सुवर्णकंकणं गृह्यताम्।' ततो लोभाकृष्टेन केनचित् पान्थेनालोचितम् – 'भाग्येनैतत् संभवति। किन्त्वत्रात्मसन्देहे प्रवृत्तिर्न विधेया।'

अनुवाद : मैंने एक बार दक्षिण देश के जंगल में जाते हुए देखा कि एक बूढ़ा बाघ स्नान करके, हाथ में कुश लेकर यह कह रहा है – 'हे पथिकों ! यह सोने का कंगन ले लो।' तब एक यात्री लोभ से आकृष्ट होकर विचारने लगा – ऐसा अवसर भाग्य से ही आता है। किन्तु इसमें जान का खतरा है (अतः) इस कार्य में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए।

यतः –

अनिष्टादिष्टलाभेऽपि न गतिर्जायते शुभा।
यत्रास्ते विषसंसर्गोऽमृतं तदपि मृत्यवे।।6।।

अनुवाद : क्योंकि दुर्जन से अभीष्ट वस्तु प्राप्त हो जाने पर भी परिणाम अच्छा नहीं होता। (जैसे) जिस अमृत में विष का संसर्ग हो जाता है, वह अमृत भी मृत्यु का कारण बन जाता है।6।

किन्तु सर्वत्रार्थार्जने प्रवृत्तिः सन्देह एव तथा चोक्तम् –

अनुवाद : किन्तु धनोपार्जन में प्रयत्न तो सर्वत्र खतरे से युक्त ही होता है। कहा भी है–

न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति।
संशयं पुनरारुह्य यदि जीवति, पश्यति।।7।।

अनुवाद : मनुष्य खतरे या संकट में बिना पड़े कल्याण नहीं देख पाता। परन्तु संकट में पड़ कर यदि जीवित रहता है, तो ही वह विविध कल्याणों को देखता है।7।

तन्निरूपयामि तावत्। 'प्रकाशं ब्रूते' कुत्र तव कंकणम् ? व्याघ्रो प्रासार्य हस्तं दर्शयति। पान्थोऽवदत् – 'कथं मारात्मके त्वयि विश्वासः।' व्याघ्र उवाच 'शृणु रे पान्थ। प्रागेव– यौवन दशायामतिदुवृत्तः आसम्। अनेकगोमानुषाणां वधान्मे पुत्राः मृताः दाराश्च। वंशहीनश्चाहम्। ततः केनचिद् धार्मिकेणाहमादिष्टः – 'दानधर्मादिकं चरतु भवानम्।' तदुपदेशाद् इदानीमहं स्नानशीलो दाता वृद्धो गलितनखदन्तः कथं न विश्वासभूमिः ?

अनुवाद : 'इससे पहले मैं जांच कर लूँ।' (यह सोच कर) वह प्रकट रूप से बोला – 'तुम्हारा कंगण कहाँ हैं ?' बाघ ने हाथ फैला कर दिखा दिया। वह पथिक बोला – 'तुम जैसे हिंसक जीव पर विश्वास कैसे किया जाए ?' बाघ बोला – 'सुन रे पथिक ! पहले तो जवानी की हालत में मैं अत्यन्त दुराचारी था। अनेक गौओं और मनुष्यों के मारने से मेरे पुत्र और पत्नी मर गए और मैं वंशहीन हो गया। तब किसी धर्मात्मा ने मुझे उपदेश दिया कि – 'आप दान, धर्म आदि कीजिए।' उसके उपदेश से अब मैं नियम पूर्वक सदा स्नान करता हूँ। मैं दानी हूँ, बूढ़ा हूँ, मेरे नाखून और दांत भी गिर गए हैं। तो अब मैं विश्वास के योग्य क्यों नहीं ?

यतः –

इज्याऽध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः।।8।।

अनुवाद : क्योंकि – यज्ञ करना, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना, सत्पात्र में दान देना, तपस्या करना, सत्य बोलना, कष्ट आने पर धैर्य धारण करना, सहनशील होना तथा लोभ न करना – ये धर्म के आठ मार्ग हैं।8।

तत्र पूर्वश्चतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते।
उत्तरस्तु चतुर्वर्गो महात्मन्येव तिष्ठति।।9।।

अनुवाद : (पूर्वोक्त आठ प्रकार के धर्म के मार्ग में) प्रथम चार (यज्ञ करना, वेदादि पढ़ना, दान देना और तपस्या करना) तो पाखण्ड रचने के (बाहरी दिखावे) लिए भी किए जाते हैं। किन्तु अन्त के चार (सत्य बोलना, धैर्य धारण करना, कष्टादि सहना और लोभ न करना) तो महात्माओं में ही पाए जाते हैं।9।

मम चैतावांल्लोभविरहो येन स्वहस्तस्थमपि सुवर्णकंकणं यस्मै कस्मैचिद् दातुमिच्छामि। 'तथापि व्याघ्रो मानुषं खादति' इति लोकप्रवादो दुर्निवारः। यतः –

अनुवाद : मैं तो यहाँ तक निर्लोभी हूँ कि अपने हाथ का कंगन भी जिस किसी को देना चाहता हूँ। फिर भी 'बाघ मनुष्य को खाता है', यह लोकापवाद मिट नहीं सकता। क्योंकि –

गतानुगतिको लोकः कुट्टिनीमुपदेशिनीम्।
प्रमाणयति नो धर्मे, यथा गोघ्नमपि द्विजम्।।10।।

अनुवाद : पुरानी लीक पर चलने वाला यह संसार धर्म के विषय में एक ब्राह्मण को चाहे वह गो घातक ही क्यों न हो – जितना प्रमाण मानता है, उतना वह एक उपदेश देने वाली धर्मरता कुलटा को प्रमाण नहीं मानता।10।

अर्थात् जिस प्रकार अन्ध परम्परा से चलने वाला संसार, पहले व्यभिचारासक्त होने पर भी इस समय धर्मोपदेश करने वाली कुलटा की बात को नहीं सुनता, उसी प्रकार पूर्व काल में मैंने हिंसा आदि कार्य किया है, किन्तु इस समय उन दोषों से दूर रहने पर भी मेरी बात कोई नहीं सुनता।

मया च धर्मशास्त्राण्यधीतानि। शृणु –

अनुवाद : और मैंने धर्मशास्त्रों (महाभारत आदि) का भी अध्ययन किया है। सुनो –

मरुस्थल्यां यथा वृष्टिः क्षुधार्त्ते भोजनं यथा।
दरिद्रे दीयते दानं, फसलं पाण्डुनन्दन।।11।।

अनुवाद : हे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर ! जिस प्रकार मरुभूमि में बरसा जल सफल होता है, क्षुधा पीड़ित को दिया हुआ भोजन सफल होता है, उसी प्रकार जो दान एक दरिद्र जन को दिया जाता है, वह सफल होता है।11।

प्राणा यथाऽऽत्मनोऽभीष्टाः भूतानामपि ते यथा।
आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।।12।।

अनुवाद : जैसे किसी को अपने प्राण प्रिय होते हैं, वैसे ही सब प्राणियों को भी अपने प्राण प्रिय होते हैं। इसलिए श्रेष्ठ पुरुष अपने समान सब प्राणियों पर दया करते हैं।12।

अपरंच –

प्रत्याख्याने च दाने च सुखदुःखे प्रियाप्रिये।
आत्मौपम्येन च दाने च सुखदुःखे प्रियाप्रिये।
आत्मौपम्येन पुरुषः प्रमाणमधिगच्छति।।13।।

अनुवाद : और दूसरी बात यह है कि श्रेष्ठ पुरुष इन्कार या अपमान में, सुख व दुःख में तथा इष्ट–अनिष्ट में (किसी को कितना सुख–दुःख होता है) इसका अनुभव को, अपने अनुभव के समान करता है।13।

अन्यच्च –

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।।14।।

अनुवाद : और भी, जो मनुष्य पराई स्त्रियों को माता के समान, पराए धन को मिट्टी के ढेले के समान और सब प्राणियों को अपनी आत्मा के समान समझता है वह (सच्चा) पण्डित है।14।

त्वं चातीव दुर्गतस्तेन तत् तुभ्यं दातुं सयत्नोऽहम्। तथा चोक्तम् –

अनुवाद : और तुम अत्यन्त दुःखी दिखाई पड़ते हो, इसलिए मैं तुम्हें यह देने के लिए उद्यत हूँ। और (महाभारत में) कहा भी है –

दरिद्रान् भर कौन्तेय ! मा प्रयच्छेश्वरे धनम्।
व्याधितस्यौषधं पथ्यं, नीरुजस्य किमौषधैः।।15।।

अनुवाद : हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर। दरिद्रों का पालन–पोषण कर, धनवानों को धन मत दें। (क्योंकि) औषधि रोगी के लिए (ही) लाभदायक होती है, स्वस्थ को औषधि की क्या आवश्यकता है ?।15।

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद् दानं सात्त्विकं स्मृतम्।।16।।

अनुवाद : और भी – 'दान करना चाहिए' इस विचार से जो दान उचित स्थान पर, उचित काल में, अनुपकारी (जिससे किसी प्रकार के उपकार या निजी लाभ की आकांक्षा न हो) को तथा योग्य पात्र को दिया जाता है, वह दान सात्विक कहलाता है।16।

"तदत्र सरसि स्नात्वा सुवर्ण–कंकणं गृहाण।" ततो यावदसौ तद्वचः प्रतीतो लोभात्सरः स्नातुं प्रविशति तावन्महापंके। निमग्नः पलायितुमक्षमः। पंके पतितं दृष्ट्वा व्याघ्राऽवदत् –अहह ! महांके पतितोऽसि। अतस्त्वामुत्थापयामि' इत्युक्त्वा शनैः शनैरुपगम्य तेन व्याघ्रेण धृतः स पान्थोऽचिन्तयत्।"

अनुवाद : अतः यहाँ तालाब में स्नान करके इस सुवर्ण कंकण को ग्रहण करो। इस प्रकार जब वह उनके वचनों पर विश्वास करके लालच में ज्यों ही तालाब में स्नान करने के लिए प्रवेश करने लगा त्यों ही महान् कीचड़ में फंस गया और भागने में असमर्थ हो गया। कीचड़ में फंसे हुए (शब्दार्थ – गिरे हुए) उसको देखकर व्याघ्र बोला – 'अरे ! घने कीचड़ में गिर पड़े हा। इसीलिए मैं तुम्हें ऊपर उठाता हूँ' यह कहकर धीरे–धीरे उसके पास जाकर उस व्याघ्र के द्वारा पकड़ा गया। वह यात्री विचार करने लगा –

न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं,
न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः।
स्वभाव एवात्र तथाऽतिरिच्यते।
यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः।।17।।

अनुवाद : दुर्जन को (सज्जन बनाने के लिए) न धर्मशास्त्र कारण होता है और न ही वेदों का अध्ययन। इस विषय में तो स्वभाव ही ऐसा बलवान कारण है, जैसे गाय का दूध स्वभाव से ही मधुर होता है।17।

इस श्लोक का अभिप्राय यह है कि दुष्ट मनुष्य को सज्जन बनाने में न धर्मशास्त्र समर्थ है और न वेदादि शास्त्रों का अध्ययन। दुष्टता और अधर्माचरण को दूर करने वाला मुख्य कारण तो स्वभाव ही होता है। जैसे तिक्त आदि अनेक रसों को समान भाव से खाने वाली गाय का दूध स्वभाव से मधुर होता है। इसलिए इस बाघ का वेदादि अध्ययन भी दूसरों को फसाने के लिए ही है न कि धर्माचरण के लिए।

किंच –

अवशेन्द्रियचित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।
दुर्भगाऽऽभरणप्रायो ज्ञानं भारः क्रियां विना।।18।।

अनुवाद : जिनकी इन्द्रियां और मन वश में नहीं हैं, उनकी (वेदाध्ययन आदि) सभी क्रियाएं हाथी के स्नान की तरह (निष्फल) होती हैं। (क्योंकि हाथी को स्नान कराके ज्यों ही बाहर लाया जाता है, उसी समय वह धूल उठा–उठा

कर अपने शरीर पर उड़ेल लेता है) और आचरण ठीक न रहने पर (वेदादि का) ज्ञान विधवा या परित्यक्ता स्त्री के आभूषणों के समान (भार मात्र ही) है, उपयोगी नहीं।18।

तन्मया भद्रं न कृतं यदत्र मारात्मके विश्वासः कृतः। तथा ह्युक्तम्–

अनुवाद : सो मैंने अच्छा नहीं किया, जो इस स्वभावतः हिंसक जीव पर विश्वास कर लिया। वैसे कहा भी है –

नदीनां शस्त्रपाणीनां नखिनां श्रृंगिणां तथा।
विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च।।19।।

अनुवाद : नदियों का, शस्त्रधारी पुरुषों का, नाखून वाले सिंह आदि पशुओं का, सींग वाले बैल आदि पशुओं का, स्त्री का तथा राज–कुल का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए।19।

अपरंच –

सर्वस्य हि परीक्ष्यन्ते स्वभावा, नेतरे गुणाः।
अतीत्य हि गुणन् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते।।20।।

अनुवाद : और भी – सब लोगों के स्वभाव की ही परीक्षा करनी चाहिए, अन्य गुणों की नहीं। क्योंकि स्वभाव ही सब गुणों को अतिक्रान्त करके (सब गुणों की अपेक्षा) स्वभाव मुख्य है।20।

अन्यच्च –

स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी,
दशशतकरधारी, ज्योतिषां मध्यचारी।
विधुरपि विधियोगाद् ग्रस्यते राहुणाऽसौ।
लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः।।21।।

अनुवाद : और भी – वह आकाश में विहार करने वाला, अन्धकार को नष्ट करने वाला, सहस्रकिरणधारी तथा नक्षत्रों के मध्य विचरण करने वाला वह चन्द्रमा भी भाग्यवश राहु द्वारा ग्रस लिया जाता है। (क्योंकि) मस्तक पर लिखी (भाग्य रेखा) मिटा भी कौन सकता है अर्थात् कोई नहीं।21।

इति चिन्तयन्नेवाऽसौ व्याघ्रेण व्यापादितः खादितश्च।

अनुवाद : ऐसा सोचते हुए उसने (बाघ ने) उस पथिक ब्राह्मण को मारकर खा लिया।

सुजीर्णमन्नं सुविचक्षणः सुतः,
सुशासिता स्त्री, नृपतिः सुसेवितः।
सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य यत् कृतं,
सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम्।।22।।

अनुवाद : अच्छी तरह पका हुआ अन्न, विद्वान् पुत्र, सुशिक्षित स्त्री अच्छी तरह सेवा किया हुआ राजा, सोच–विचार कर कही हुई बात और जो काम अच्छी तरह सोच कर किया गया है, वह दीर्घ काल के बीत जाने पर भी नहीं बिगड़ता।22।

एतद्ववचनं श्रुत्वा कश्चित्कपोतः सदर्पमाह = 'आः ! किमेवमुच्यते' ?

अनुवाद : यह बात सुनकर किसी कबूतर ने गर्व से कहा – ऐसा क्यों कहते हैं ?

वृद्धानां वचनं ग्राह्यमापत्काले ह्युपस्थिते।
सर्वत्रैवं विचारे तु भोजनेऽप्यप्रवर्तनम्।।23।।

अनुवाद : निश्चय से आपातकाल में तो वृद्ध जनों का कहना मानना ही चाहिए। किन्तु यदि सब जगह ही ऐसे विचार करने लग जाएं तब तो भोजन में भी प्रवृत्ति न हो (भोजन भी नहीं किया जा सकता) ।23 ।

यतः –

शंकाभिः सर्वमाक्रान्तमन्नं पानंच भूतले।
प्रवृत्तिः कुत्र कर्तव्या, जीवितव्यं कथं नु वा।।24।।

अनुवाद : क्योंकि – संसार में खाद्य और पेय आदि सभी पदार्थ सन्देहों से भरे हैं। (तो फिर) किसमें प्रवृत्ति की जाए और कैसे जीवन–निर्वाह हो ।24 ।

ईर्ष्या, घृणी, त्वसंतुष्टः क्रोधनो, नित्यशंकितः।
परभाग्योपजीवी च, षडेते दुःखभागिनः।।25।।

अनुवाद : ईर्ष्या करने वाला, घृणा करने वाला, असन्तोषी, क्रोधी, सदा सन्देह करने वाला और दूसरे के सहारे जीने वाला – ये छः (मनुष्य) सदा दुःख पाते हैं ।25 ।

सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्तो बहु–श्रुताः।
छेत्तारः संशयानां च क्लिश्यन्त लोभ–मोहिताः।।26।।

अनुवाद : अत्यन्त विशाल शास्त्रों को (कण्ठ में) धारण करने वाले, बहुत बातों को जानने वाले (अर्थात् बहुत अनुभव वाले) सब सन्देहों को दूर करने वाले भी लोभ में पकड़कर दुःख पाते हैं ।26 ।

अन्यच्च –

लोभात् क्रोधः प्रभवति, लोभात् कामः प्रजायते।
लोभात् मोहश्च नाशश्च, लोभः पापस्य कारणम्।।27।।

अनुवाद : और भी–लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है, लोभ से काम उत्पन्न होता है, लोभ से मोह (अज्ञान) उत्पन्न होता है और नाश होता है। इसलिए यह लोभ सब पापों का कारण है ।27 ।

अन्यच्च –

असंभवं हेममृगस्य जन्म
तथापि रामो लुलुभे मृगाय।
प्रायः समापन्नविपत्तिकाले
धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति।।28।।

अनुवाद : और भी यद्यपि सोने के हरिण का होना असम्भव है, तो भी श्री रामचन्द्र जी ऐसे मृग के लिए ललचा उठे। (वस्तुतः) विपत्ति निकट आने पर (समझदार) मनुष्य की भी बुद्धियां प्रायः मलिन हो जाती हैं ।28 ।

उक्तं च –

न गणस्याग्रतो गच्छेत् सिद्धे कार्ये सम फलम्।
यदि कार्यविपत्तिः स्यात् मुखरस्तत्र हन्यते।।29।।

अनुवाद : कहा भी है – मनुष्य किसी दल का मुखिया (अगुआ) न बने। (क्योंकि) यदि कार्य सफल हो जाता है तो सभी को बराबर फल मिलता है। परन्तु यदि दैवयोग से काम बिगड़ जाए तब मुखिया ही मारा जाता है (सब उसे ही दोष देते हैं) ।29 ।

तथा

आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्ज्यः सम्पदां मार्गां येनेष्टं तेन गम्यताम्।।30।।

अनुवाद : कहा भी है – इन्द्रियों को अपने वश में न रखना विपत्तियों का मार्ग है और इन्द्रियों को वश में रखना ही सम्पत्ति का मार्ग है। जिस रास्ते में इच्छा हो उसे रास्ते से जाइए।30।

आपदामापतन्तीनां हितोऽप्यायाति हेतुताम्।
मातृजंघा हि वत्सस्य स्तम्भीभवति बन्धने।।31।।

अनुवाद : कभी–कभी शुभ चिन्तक भी आने वाली विपत्तियों का कारण बन जाता है। जैसे कि माता (गौ) की टांग (दुहने के समय) बछड़े के बांधने में खूंटे का काम देती है।31।

अन्यच्च –

स बन्धुर्यो विपन्नानामापदुद्धरणक्षमः।
न तु भीतपरित्राणवस्तूपालम्भपण्डितः।।32।।

अनुवाद : वही (वस्तुतः) बन्धु है जो विपत्ति में पड़े हुए प्राणियों को विपत्ति से निकालने में समर्थ हो न कि भयभीत की रक्षा करने के बदले उलाहना देने में निपुण।32।

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता, युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्।।33।।

अनुवाद : विपत्ति में धैर्य करना और उत्कर्ष में सहनशीलता, सभा में वाक् कुशलता, युद्ध में पराक्रम और यश प्राप्त करने की इच्छा, शास्त्र श्रवण में अनुराग – ये सब महात्माओं के स्वभावसिद्ध गुण हैं।33।

संपदि यस्य न हर्षो, विपदि विषादो, रणे च भीरुत्वम्।
तं भुवनत्रयतिलकं जनयति जननी सुतं विरलम्।।34।।

अनुवाद : सम्पत्ति पाकर जिसे (विशेष) हर्ष नहीं होता, विपत्ति पड़ने पर दुःख नहीं होता और युद्ध में डर उत्पन्न नहीं होता, ऐसे तीनों लोकों में श्रेष्ठ विरले पुत्र को (कोई) माता जानती है अर्थात् ऐसा पुरुष कोई विरला ही होता है।34।

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निन्द्रा, तन्द्रा, भयं, क्रोधः, आलस्यं, दीर्घसूत्रता।।35।।

अनुवाद : और भी – इस संसार में अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्य को (निम्न) छः दोष छोड़ देने चाहिए। (वे छः दोष हैं) – अधिक सोना, ऊंघते रहना, भय, क्रोध, आलस्य और ढीलापन (अर्थात् अल्प समय में होने वाले कार्य को अधिक समय में करना)।35।

अल्पानामपि वस्तूनां सहतिः कार्यसाधिका।
तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः।।36।।

अनुवाद : छोटी और तुच्छ वस्तुओं का भी परस्पर मेल कार्य को सिद्ध करने वाला होता है। जैसे, रस्सी बने हुए तनिकों से (अर्थात् वे छोटे–छोटे और तुच्छ तिनके, जिनके मेल से रस्सी बनाई गई है) मस्त हाथी (भी) बांधे जा सकते हैं।36।

संहतिः श्रेयसी पुंसां स्वकुलैरल्पकैरपि।
तुषेणापि परित्यक्ता न प्ररोहन्ति तण्डुलाः।।37।।

अनुवाद : मनुष्यों को अपने कुल के थोड़े अथवा तुच्छ व्यक्तियों के साथ भी मेल करना कल्याणकारी होता है। क्योंकि (तुच्छ) भूसी से भी अलग हुए चावल उग नहीं सकते। (भूसी रहित चावलों में उगने की शक्ति जाती रहती है।) |37 |

इति विचिन्त्य पक्षिणः सर्वे जालमादायात्पतिताः। अनन्तरं सः व्याधः सुदूरज्जालाऽपहार– कांस्तानवलोक्य पश्चाद्धावन्नचिन्तयत्।

अनुवाद : इस प्रकार सोचकर सभी पक्षी जाल लेकर उड़ चले। इसके बाद वह शिकारी बहुत दूरी से जाल ले जाने वाले पक्षियों को देखकर पीछे दौड़ता हुआ सोचने लगा।

संहतास्तु हरन्त्येते मम जालं विहंगमाः।
यथा तु निपतिष्यन्ति वशमेष्यन्ति मे तदा।।38।।

अनुवाद : ये पक्षी तो आपस में मिलकर मेरे जाल को लिए जा रहे हैं, परन्तु जब ये भूमि पर गिरेंगे। ('विवदिष्यन्ति' पाठ होने पर अर्थ–जब ये कलह करेंगे) तो मेरे वश में आ जाएँगे |38 |

माता, मित्रं, पिता चेति स्वभावात् त्रितयं हितम्।
कार्यकारणतश्चान्ये भवन्ति हितबुद्धयः।।39।।

अनुवाद : माता, मित्र और पिता – ये तीनों स्वभावतः ही हितकारी होते हैं। दूसरे लोग तो किसी प्रयोजनवश या कारण विशेष से ही हितैषी हुआ करते हैं |39 |

तदस्माकं मित्रं हिरण्यको नाम मूषिकराजो गण्डकीतीरे चित्रवने निवसति, सोऽस्माकं पाशांश्छेत्स्यति। इत्यालोच्य सर्वे हिरण्यक–विवर–समीपं गताः। हिरण्यकश्च सर्वदाऽपाय –शंकया शतद्वारं विवरं कृत्वा निवसति।

अनुवाद : इसलिए हमारा हिरण्यक नामक मित्र चूहों का राजा गण्डकी नदी के किनारे पर चित्रवन में रहता है, वह हमारे बंधनों को काटेगा। यह विचार कर सभी हिरण्यक के बिल के पास गए। हिरण्यक सदा विपत्ति के डर से सौ द्वारों वाला बिल बनाकर रहता था।

अनागत–भयंदृष्ट्वा नीतिशास्त्र–विशारदः।
अवसन्मूषिकस्तत्र वृद्धः शतमुखे बिले।।40।।

अनुवाद : नीतिशास्त्र में निपुण वह बूढ़ा चूहा भावी (शब्दार्थ – जो अभी नहीं आया है) भय को देखकर (अर्थात् सम्भावित मानकर) वहाँ सौ मार्ग वाले (शब्दार्थ– मुख वाले) बिल में रहता था |40 |

ततो हिरण्यकः कपोताऽवपात–भयाच्चकितस्तूष्णीं स्थितः। चित्रग्रीव उवाच – 'सखे हिरण्यक ! किमस्मान्न संभाषसे ?' ततो हिरण्यकस्तद्वचनं प्रत्यभिज्ञाय ससंभ्रमं बहिर्निः सृत्याब्रवीत् – 'आः ! पुण्यवानस्मि, प्रियसुहृन्मे चित्रग्रीवः समायातः।

अनुवाद : इसके बाद वह हिरण्यक कबूतरों के गिरने के भय से चकित होकर चुप होकर बैठ गया। तब चित्रग्रीव बोला – 'हे मित्र हिरण्यक ! हम लोगों से क्यों नहीं बोलते ?' तो हिरण्यक ने उसके वचन को पहचान कर शीघ्र बाहर निकल कर कहा – अहो ! मैं भाग्यशाली हूँ कि मेरे प्रिय मित्र चित्रग्रीव यहाँ पधारे हैं।

यस्य मित्रेण सम्भाषो यस्य मित्रेण संस्थितिः।
यस्य मित्रेण संलापस्ततो नास्तीह पुण्यतान्।।41।।

अनुवाद : जिसकी मित्र के साथ बोलचाल है, जिसका मित्र के साथ निवास है, जिसका मित्र के साथ प्रेमालाप है, उससे बढ़कर पुण्यवान् इस संसार में दूसरा कोई नहीं है |41 |

पाश–वृद्धांश्चैतान् दृष्ट्वा सविस्मयः क्षणं स्थित्वा उवाच – 'सखे ! किमेतत् ? चित्र– ग्रीवोऽवदत् – सखे ! अस्माकं प्राक्तन–जन्म–कर्मणः फलमेतत्। यत्: –

अनुवाद : इनको जाल में फंसा देखकर आश्चर्य से कुछ देख रुक कर बोला – 'मित्र ! यह क्या ?' चित्रग्रीव बोला – यह हमारे पूर्वजन्म के कर्मों का फल है क्योंकि –

यस्माच्च येन च यथा च यदा च यच्च
यावत् च यत्र च शुभाऽशुभमात्म–कम।
तस्माच्च तेन च तथा च तदा च तच्च
तावच्च तत्र च विधातृ–वशादुपैति।।42।।

अनुवाद : जिस–जिस कारण से जिस–जिस के द्वारा, जैसा–जैसा, जब–जब, जो–जो, जितना–जितना तथा जहाँ–जहाँ अपना अच्छा–बुरा किया हुआ कर्म है। उस–उस कारण से, उस–उस के द्वारा, वैसा–वैसा, तब–तब, वह–वह, उतना–उतना तथा वहाँ– वहाँ दैवयोग से (अवश्य) प्राप्त करता है।42।

रोगशोकपरितापबन्धनव्यसनाति च।
आत्मापराधवृक्षाणां फलान्येतानि देहिनाम्।।43।।

अनुवाद : रोग शोक, सन्ताप या पश्चात्ताप, बन्धन और विपत्ति – ये सब प्राणियों के अपने अपराध रूपी वृक्षों के फल हैं।43।

एतच्छृत्वा हिरण्यकश्चित्रग्रीवस्य बन्धनं छेत्तुं सत्वरमुपसर्पति। चित्रग्रीव उवाच – मित्रं ! मा मैवम् 'अस्मदाश्रितानामेषः' तावत्, पाशांश्छिन्धि, यदा मम पाशं पश्चात् छेत्स्यति। हिरण्यकोऽप्याह – 'अहमल्पशक्तिः दन्ताश्च मे कोमलाः तदेतेषां पाशांश्छेत्तुं कथं समर्थः? तद् यावन्मे दन्ता न त्रट्यन्ति तावत्तव पाशं छिनद्मि। तदन्तरमेषामपि बन्धनं यावच्छक्यं छेत्स्यामि।' चित्रग्रीव उवाच–अस्त्वेवम् तथापि यथाशक्त्येतेषां बन्धनं खण्डय।' हिरण्य– केनोक्तम्–आत्मपरित्यागेन यदाश्रितानां परिरक्षणं तन्न नीतिविदां सम्मतम्। यतः

अनुवाद : यह सुनकर हिरण्यक चित्रग्रीव के बन्धनों को काटने के लिए जल्दी से निकट आया तो चित्रग्रीव कहने लगा – 'हे मित्र ! यह ठीक नहीं है। (पहिले) इन मेरे आश्रितों के बन्धन काटो, पीछे मेरे बन्धन काटना।' तब हिरण्यक बोला – 'मैं कमजोर हूँ, मेरे दाँत भी कोमल हैं, तो इन सबके बन्धन काटने में मैं कैसे समर्थ हूँ ? अतः जब तक मेरे दाँत नहीं टूटते, तब तक मेरे बन्धन काटता हूँ, इसके बाद यथाशक्ति इनके भी बन्धन काट दूँगा।' चित्रग्रीव बोला – 'यह ठीक है, पर यथाशक्ति तुम इनके ही बन्धन काटो।' तब हिरण्यक बोला – 'अपने के विपत्ति में डाल करके अपने आश्रितों की रक्षा करना यह तो नीति जानने वालों के मत के अनुकूल नहीं है। क्यों ?'

आपदर्थे धनं रक्षेद्, दारान् रक्षेद् धनैरपि।

आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि।।44।।

अनुवाद : मनुष्य आपत्ति काल के लिए धन की रक्षा करे और धन से (धन का व्यय करके भी) पत्नी की रक्षा करे। परन्तु अपनी तो धन और पत्नी से भी (अर्थात् धन एवं पत्नी का त्याग करके भी) सदा रक्षा करे।44।

धर्मार्थ–काम–मोक्षाणां प्राणाः संस्थिति–हेतवः।
तन्निघ्नता किं न हतं रक्षता किं न रक्षितं च।।45।।

अनुवाद : और भी – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनकी रक्षा में होने के कारण प्राण ही है। इसीलिए जिसने इन (प्राणों का) नाश किया उसके द्वारा क्या नष्ट नहीं किया गया (अर्थात् सब कुछ नष्ट कर दिया गया) (और) जिसने इन प्राणों की रक्षा की, उसके द्वारा क्या नहीं बचा लिया गया ? (अर्थात् सब कुछ बचा लिया गया)।45।

चित्रग्रीव उवाच – 'सखे ! नीतितावदीदृश्येव किन्त्वहमास्मदाश्रितानां दुःखं सोढुं सर्वथासमर्थः। तेनेदं ब्रवीमि।'

अनुवाद : चित्रग्रीव बोला – 'मित्र, नीति तो ऐसी ही है किन्तु मैं अपने आश्रितों का कष्ट सहन करने में नितांत असमर्थ हूँ अतः ऐसा कहता हूँ। क्योंकि –

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।
सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति।।46।।

अनुवाद : और दूसरा यह भी विशेष कारण है – इन (कबूतरों) की जाति (पदितत्वादि) द्रव्य (शरीर तथा चंचु, पंख आदि अंग) एवं गुणों (अथवा बल–यदि–गुणानांच के स्थान पर बलानांच हो) की मेरे साथ समानता है। इसीलिए बतलाइये (इन्हें) मेरे स्वामी होने का क्या फल होगा और वह कब इन्हें मिलेगा ?।46।

अयमपरश्चाऽसाधारणो हेतुः –

जाति–द्रव्य–गुणानांच साम्यमेषां मया सह।
मत्प्रभुत्व–फलं ब्रूहि कदा किं तद्–भविष्यति।।47।।

अनुवाद : और भी बिना किसी प्रकार की जीविका और वेतन के भी ये मेरा साथ नहीं छोड़ते हैं, इसलिये मेरे प्राणों का व्यय (मेरी–प्राण–हानि) करके भी आप पहिले मम इन आश्रितों को जीवित करो (अर्थात् जीवन–रक्षा करो)।47।

'विना वर्त्तनमेवैते न त्यजन्ति ममाऽन्तिकम्।
तन्मे प्राणव्ययेनाऽपि जीवयैतान्मदाश्रितान्।।48।।

अनुवाद : बुद्धिमान् मनुष्य दूसरों के उपकार के लिए सम्पूर्ण धन और जीवन का परित्याग कर दे। जब इनका (धन और जीवन का) विनाश निश्चित है तो उत्तम उद्देश्य (परोपकार) के लिए इनका त्याग करना ही बेहतर है।48।

किंच –

मांसमूत्रपुरीषास्थिनिर्मितेऽस्मिन्कलेवरे।
विनश्वरे विहायास्थां यशः पालय मित्र मे।।49।।

अनुवाद : हे मित्र ! मांस, मूत्र, विष्ठा और हड्डियों से बने हुए इस नाशवान् शरीर को (बचाने के) यत्न को छोड़कर मेरे यश को बचाओ।49।

अपरंच पश्य –

यदि नित्यमनित्येन निर्मलं मल–वाहिना।
यशः कायेन लभ्येत, तन्न लब्धं भवेन्नु किम्।।50।।

अनुवाद : और भी देखो (अर्थात् सोचो) यदि मल धारण करने वाले नश्वर शरीर के बदले में शाश्वत और विशुद्ध यश मिल जाए तो फिर क्या प्राप्त नहीं हुआ अर्थात् सब कुछ प्राप्त हो गया।50।

अतः –

शरीरस्य गुणानां च दूरमत्यन्तमन्तरम्।
शरीरं क्षण–विध्वंसि कल्पाऽन्तस्थायिनी गुणाः।।51।।

अनुवाद : क्योंकि शरीर में और गुणों में बहुत दूर का अन्तर है, शरीर तो क्षण मात्र में नष्ट हो जाने वाला है (और) गुण प्रलयकाल तक स्थिर रहने वाले हैं।51।

योऽधिकाद्योजन–शतात्पश्यतीहाऽऽमिषं खगः।
स एव प्राप्त–कालस्तु पाशबन्धं न पश्यति।।52।।

अनुवाद : जो पक्षी (गीध आदि) सौ योजन से भी अधिक की दूरी से यहाँ (पड़े) माँस को देख सकता है, वहीं काल के उपस्थित होने पर जाल के बन्धन को नहीं देख पाता है।52।

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं गजभुजंगमयोरपि बन्धनम्।
मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां विधिरहो बलवानिति मे मतिः।।53।।

अनुवाद : और भी – चन्द्र और सूर्य के राहु नामक ग्रह से पीड़ित होने को, हाथी तथा सांप के बांधे जाने को एवं पण्डितों की दरिद्रता को देखकर मेरा तो यही विचार है कि दैव बड़ा बलवान् है।53।

अन्यच्च –

व्योमैकान्त–विहारिणोऽपि विहगाः सम्प्राप्नुवन्त्यापदं
बध्यन्ते निपुणैरगाधसलिलान्मत्स्याः समुद्रादपि।
दुर्नीतं किमिहाऽस्ति किं सुचरितं कः स्थानलाभे गुणाः
कालो हि व्यसन–प्रसारित–करो गृह्णाति दूरादपि।।54।।

अनुवाद : और भी – आकाश के एकान्त प्रदेश में विहार करने वाले पक्षी भी आपत्ति में फंस जाते हैं। अथाह जल वाले समुद्र से भी मछलियाँ पकड़ ली जाती हैं। इस संसार में क्या बुरा आचरण है ? क्या अच्छा आचरण है ? योग्य स्थान की प्राप्ति में क्या लाभ है ? क्योंकि विपत्ति रूपी हाथ पसारे बैठा हुआ काल दूर से ही पकड़ लेता है।54।

इति प्रबोध्याऽऽतिथ्यं कृत्वाऽऽलिंग्य च चित्रग्रीवस्तेन सम्प्रेषितो यथेष्ट–देशान्सपरिवारो ययौ। हिरण्यकोऽपि स्व–विवरं प्रविष्टः। अतः –

अनुवाद : इस प्रकार आश्वासन देकर अतिथि सत्कार करके तथा आलिंगन करके उस (हिरण्यक) ने चित्रग्रीव को विदा किया और वह अपने परिवार यथेष्ट देश को चला गया। हिरण्यक भी अपने बिल में घुस गया।

अतः –

यानि कानि च मित्राणि कर्त्तव्यानि शतानि च।
पश्य मूषिक–मित्रेण कपोता मुक्तबन्धनाः।।55।।

अनुवाद : जो कोई भी हों, सैकड़ों मित्र बनाने चाहिएँ। देखो चूहे के मित्र के द्वारा कबूतर से मुक्त कर दिए गए।55।

अथ लघुपतनकनामा काकः सर्ववृत्तान्तदर्शी साश्चर्यमिदमाह 'अहो हिरण्यक, श्लाघ्योऽपि, अतोऽहमपि त्वया सह मैत्रीमिच्छामि। अतो मां मैत्र्येणाऽनुग्रहीतुमर्हसि। एतच्छ्रुत्वा हिरण्यकोऽपि, विवराऽभ्यन्तरादाह – 'कस्त्वम् ? स ब्रूते – लघुपतनकनामा वायसोऽहम्। हिरण्यको विहस्याऽऽह – 'का त्वया सह मैत्री ?' यतः –

अनुवाद : इसके बाद सब वृत्तान्तों को देखने वाला लघुपतनक नाम का कौआ आश्चर्य से पड़कर बोला – हे हिरण्यक ! तुम प्रशंसा के योग्य हो। इसलिए मैं भी तुम्हारे साथ मित्रता करने की इच्छा रखता हूँ अतः मुझे भी अपना मित्र बनाकर अनुगृहीत करो। यह सुनकर हिरण्यक भी बिल के भीतर से बोला – 'तुम कौन हो ?' वह बोला – 'मैं लघुपतनक नाम का कौआ हूँ।' तब हिरण्यक हंसकर बोला – 'वाह ! तुम्हारे साथ हमारी मित्रता कैसी ? क्योंकि –

यद् येन युज्यते लोके बुधस्तत् तेन योजयेत्।
अहमन्नं, भवान् भोक्ता, कथं प्रीतिर्भविष्यति।।56।।

अनुवाद : जो वस्तु या व्यक्ति जिसके साथ मेल खा सकता है, बुद्धिमान् उस को उसके साथ मेल कराये। परन्तु मैं तुम्हारा भक्ष्य पदार्थ हूं और तुम मेरे भक्षक तो फिर (हम दोनों में) प्रेम कैसे हो सकेगा ? अर्थात् हमारा तुम्हारा मेल नहीं हो सकता।56।

अन्यच्च –

भक्ष्यभक्षकयोः प्रीतिर्विपत्तेरेव कारणम्।
शृगालात् पाशबद्धोऽसौ मृगः काकेन रक्षितः।।57।।

अनुवाद : और भी – भक्ष्य और भक्षक की प्रीति एकमात्र विपत्ति की ही जड़ है। जैसे – सियार (भक्षक) से जाल में फंसाया गया हरिण (भक्ष्य) कौए से बचाया गया था।57।

कथा 3

मृग–शृगालयोः कथा
(हरिण और गीदड़ की कहानी)

अस्ति मगधदेशे चम्पकवती नाम अरण्यानी। तस्यां चिरान्महता स्नेहेन मृगकाकौ निवसतः। स च मृगः स्वेच्छया भ्राम्यन् हृष्टपुष्टांगः केनचिच्छृगालेनावलोकितः। तं दृष्ट्वा शृगालोऽचिन्तयत् – 'कथमेतन्मांसं सुललितं भक्षयामि। भवतु विश्वासं तावदुत्पादयामि।' इत्यालोच्योपसृत्याब्रवीत् – मित्र ! कुशलं ते ? मृगेणोक्तम् – 'कस्त्वम् ?' 'स ब्रते –' क्षुद्रबुद्धिनामा जम्बुकोऽहम्। अत्रारण्ये बन्धुहीनो मृतवन्निवसामि। इदानीं त्वां मित्रमासाद्य पुनः सबन्धुः जीवलोकं प्रविष्टोऽस्मि। अधुना तवानुत्तरेण मया सर्वथा भवितव्यम्। मृगेणोक्तम्–एवमस्तु। ततः पश्चादस्तंगते सवितरि भगवति मरीचिमालिनि, तौ मृगस्य वासभूमिं गतौ। ततः चम्पकशाखायां सुबुद्धिनामा काको मृगस्य चिरं मित्रं निवसति। तौ दृष्ट्वा काकोऽवदत् – 'सखे चित्रांङ्ग ! कोऽयं द्वितीयः।' मृगो ब्रते – 'जम्बुकोऽयम्। अस्मत् सख्यमिच्छन् आगतः।' काको ब्रूते – "मित्र ! अकस्मादागन्तुना सह मैत्री न युक्ता तथा चोक्तम् –

अनुवाद : मगध देश में चम्पकवती नाम का एक बड़ा भारी जंगल था। उसमें चिरकाल से बड़े प्रेम के साथ हरिण और कौआ ये दोनों रहते थे। स्वेच्छा से घूमते–फिरते हुए हृष्ट–पुष्ट अंग वाले उस हरिण को एक गीदड़ ने देख लिया। उसे देखकर वह गीदड़ सोचने लगा – 'ओह' मैं इस सुन्दर (स्वादिष्ट) मांस को कैसे खाऊँ ? अच्छा, पहले इसे विश्वास दिलाता हूँ।' यह सोचकर वह पास जाकर बोला – हे मित्र ! कुशल से तो हो ? 'हरिण ने कहा – 'तुम कौन हो ?' उसने उत्तर दिया – मैं क्षुद्रबुद्धि नाम का गीदड़ हूँ। इस वन में बन्धु रहित मैं मरे हुए की तरह रहता हूँ। अब तुम जैसे मित्र को पाकर (मानो) बन्धु सहित हुआ इस संसार में पुनः प्रविष्ट हुआ हूँ। अब मैं सदा तुम्हारे साथ ही रहा करूँगा। हरिण ने कहा – 'अच्छी बात है, ऐसा ही सही। इसके बाद किरणों को धारण करने वाले भगवान् सूर्य देव के अस्त हो जाने पर वे दोनों हरिण के निवास स्थान पर गए। वहाँ पर चम्पक वृक्ष की शाखा पर उस हरिण का एक पुराना मित्र सुबुद्धि नाम का कौआ रहा करता था। वह कौआ उन दोनों को देखकर बोला – 'मित्र चित्रांग ! यह दूसरा कौन है ? हरिण ने कहा – 'यह गीदड़ है। मेरे साथ मैत्री करने की इच्छा से यहाँ आया है।' कौए ने कहा – 'हे मित्र ! अचानक आए हुए के साथ मित्रता करना ठीक नहीं। कहा भी है –

अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्।
मार्जारस्य हि दोषेण हतो गृध्रः जरद्गवः।।58।।

अनुवाद : किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसका वंश और स्वभाव ज्ञात न हो, अपने यहाँ आश्रय नहीं देना चाहिए। क्योंकि बिलाव के दोष से जरद्गव नाम का गीध मारा गया।58।

कथा 4

जरद्गवमार्जारयोः कथा
(जगद्गव गीध तथा बिलाव की कहानी)

अस्ति भगीरथीतीरे गृध्रकूटनाम्नि पर्वते महान्पर्कटीवृक्षः। तस्य कोटरे दैवदुर्विपाकात् गलितनखनयनो जरद्गवनामा गृध्रः निवसति। अथ कृपया तज्जीवनाय तद्वृक्षवासिनः पक्षिणः स्वाहारात् किंचित् किंचित् उद्धत्य ददति, तेनासौ जीवति। अथ कदाचित् दीर्घकर्णनामा मार्जारः पक्षिशावकान् भक्षयितुं तत्रागतः। ततस्तमायान्तं दृष्ट्वा पक्षिशावकैः भयार्तैः कोलाहलः कृतः। तच्छ्रुत्वा जरद्गवेनोक्तम्–कोऽयमायाति ? दीर्घकर्णो गृध्रमलोक्य सभयमाह–हा हतोऽस्मि। यतः।

अनुवाद : गंगाजी के किनारे गृध्रकूट नामक पर्वत पर एक बड़ा भारी पाकड़ का पेड़ था। उस वृक्ष के खोल में जरद्गव नाम का एक गीध रहता था। दुर्भाग्यवश जिस के नाखून गल चुके थे और आँखें भी जाती रही थीं। सो उस वृक्ष के रहने वाले पक्षी उसके जीवन निर्वाह के लिए कुछ न कुछ निकालकर उसे दिया करते थे। उसी से वह जीता था। एक बार दीर्घकर्ण नाम का एक बिलाव पक्षियों के बच्चे खाने की इच्छा से वहाँ आया। तब उसे आता हुआ देखकर भय से पीड़ित हुए पक्षियों के बच्चों ने शोर मचाया। यह सुनकर जरद्गव ने कहा – 'कौन आ रहा है ?' दीर्घकर्ण गीध को देखकर भयभीत होकर बोला – 'हाय–हाय, अब मारा गया।'

तावद्भयस्य भेतव्यं यावद्भयमनागतम्।
आगतं तु भयं वीक्ष्य नरः कुर्याद्यथोचितम्।।59।।

अनुवाद : भय से तभी तक डरना चाहिए जब तक भय (समीप) न आ जाए किन्तु भय को (पास) आया देखकर मनुष्य जैसा उचित हो वैसा ही करे।59।

अधुनाऽस्य सन्निधाने पलायितुमक्षमः तद्यथा भवितव्यं तद्भवतु। तावद्विश्वासमुत्पाद्याऽस्य समीपमुपगच्छामीत्यालोच्यापसृत्याऽब्रवीत्–'आर्य ! त्वामभिवन्दे।' गृध्रोऽवदत्–'कस्त्वम् ?' सोऽवदत् – 'माजारोऽहम् गृध्रो बूथे – 'दूरमपसर। नोचेद्धन्तव्योऽसि मया।' मार्जारोऽवदत् – 'श्रूयतां तावदस्मद्वचनं, ततो यद्यहं वध्यस्तदा हन्तव्यम्। यतः –

अनुवाद : अब मैं इस (गीध) के पास से भागने में असमर्थ हूँ। इसीलिए जो हो सो हो। तो मैं विश्वास उत्पन्न करके इसके समीप जाता हूँ।' इस प्रकार विचार करके उस गीध के पास जाकर वह बोला – 'हे आर्य ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। गीध ने कहा – 'तुम कौन हो ?' वह बोला – 'मैं बिलाव हूँ।' गीध ने कहा – 'दूर हटो, नहीं तो तुम मेरे हाथों मारे जाओगे।' बिलाव ने कहा – 'पहिले मेरा कहना सुन लीजिए, फिर यदि मैं मारने योग्य होऊँ, तो मुझे मार डालिए। क्योंकि –

जातिमात्रेण किं कश्चिद्धन्यते पूज्यते क्वचित्।
व्यवहारं परिज्ञाय वध्यः पूज्योऽथवा भवेत्।।60।।

अनुवाद : क्या कोई जातिमात्र के कारण कहीं मारने या पूजने योग्य होता है अर्थात् नहीं किन्तु व्यवहार जान कर ही (किसी को) मारने या पूजने योग्य समझना चाहिए।60।

गृध्रो ब्रूते – 'ब्रूहि किमर्थमागतोऽसि ?' सोऽवदत् – 'अहमत्र गंगातीरे नित्यस्नायी, निरामिषाशी, ब्रह्मचारी चान्द्रायण–व्रतमाचरंस्तिष्ठामि यूयं धर्मधाः प्रेम–विश्वास–भूमय इति पक्षिणः सर्वे ममाऽग्रे प्रस्तुवन्ति। अतो अवदभ्यो विद्यावयोवृद्धेभ्यो धर्मं श्रोतुमिहाऽऽगतः। भवन्तश्चैतादृशा धर्मज्ञा यन्मामतिथिं हन्तुमुद्यताः। गृहस्थ–धर्मश्चैषः –

अनुवाद : गीध बोला – 'अच्छा कहो, तुम यहाँ किसलिए आए हो ?' तब वह (बिलाव) बोला – 'मैं यहाँ पर गंगाजी के किनारे प्रतिदिन स्नान कर, मांस–भोजन का परित्याग करके, ब्रह्मचारी होकर चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान करता

हुआ रहता हूँ। 'आप बड़े धर्म के ज्ञाता तथा प्रेम व विश्वास के पात्र हैं' – ऐसा सब पक्षी सदा मेरे सम्मुख तुम्हारी स्तुति करते हैं। इसीलिए विद्यावृद्ध आपसे धर्म के विषय में सुनने के लिए मैं यहाँ आया हूँ तथा आप ऐसे धर्म के ज्ञाता हैं जो मुझ अतिथि को भी मारने को तैयार हैं। गृहस्थ – धर्म तो यह है –

अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते।
छेतुः पार्श्व–गतां छायां नोपसंहरते द्रुमः।।61।।

अनुवाद : अपने घर आए शत्रु का भी उचित अतिथि–सत्कार करना चाहिए। वृक्ष अपने काटने वाले के समीप गई छाया को समेट नहीं लेता (अपितु उसे भी छाया प्रदान कर उसका सत्कार करता है)।61।

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन।।62।।

अनुवाद : कुशों का आसन, बैठने का स्थान, जल और चौथी सच्ची एवं मधुर वाणी– ये सब चीजें तो सज्जनों के घर में कभी भी नष्ट नहीं होती। (अतः इन चारों वस्तुओं से सज्जन को घर में आए अतिथि का सत्कार करना ही चाहिए)।62।

अन्यच्च

बालो वा यदि वा वृद्धो युवा वा गृहमागतः।
तस्य पूजा विधातव्या सर्वस्याऽश्यागतो गुरुः।।63।।

अनुवाद : और भी – बालक हो या वृद्ध हो या जवान हो – यदि वह घर पर आ गया है तो उसकी पूजा करनी चाहिए, (क्योंकि) अतिथि सबका गुरु (पूज्य) होता है।63।

अपरंच –

निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।
नहि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनः।।64।।

अनुवाद : सज्जन लोग गुणहीन प्राणियों पर भी दया करते हैं। जैसे चन्द्रमा चाण्डाल के भी घर में अपनी चाँदनी नहीं हटाता। (अपितु सर्वत्र समान भाव से अपनी चाँदनी बिखेरता है, इसी प्रकार सज्जन भी समान भाव से सब प्राणियों पर दया किया करता है)।64।

अन्यच्च –

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति।।65।।

अनुवाद :

अन्यच्च –

उत्तमस्यापि वर्णस्य नीचोऽपि गृहमागतः।
पूजनीयो यथायोग्यं, सर्वदेवमयोऽतिथिः।।66।।

अनुवाद : और भी – उत्तम वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि) के घर पर यदि नीच जाति का भी अतिथि आ जावे तो उसका यथायोग्य सत्कार करना चाहिए। (क्योंकि) अतिथि सब देवताओं का स्वरूप होता है अर्थात् जो फल देवताओं की पूजा से मिलता है, वही अतिथि सेवा से मिलता है।

गृध्रोऽवदत्–'मार्जारो हि मांसरुचिः। पक्षिशावकाश्चात्र निवसन्ति। तेनाहमेवं ब्रवीमि।' तच्छ्रुत्वा मार्जारो भूमिं स्पृष्ट्वा कर्णौ स्पृशति, ब्रूते च – 'मया धर्मशास्त्रं श्रुत्वा वीतरागेणेदं दुष्करं व्रतं चान्द्रायणमध्यवसितम्। परस्पर विवदमानानामपि धर्मशास्त्राणाम्' अहिंसा परमो धर्मः इत्यत्रैकमत्यम्। यतः –

अनुवाद : गीध बोला – 'बिलाव निश्चय ही मांस खाने का शौकीन होता है और यहाँ पक्षियों के बच्चे रहते हैं। इसलिए मैं ऐसा कहता हूँ। यह सुनकर बिलाव ने भूमि का स्पर्श करके दोनों कान छुए और कहा – मैंने धर्मशास्त्र सुनने के पश्चात् बैरागी होकर यह अत्यन्त कठोर चान्द्रायण व्रत धारण किया है। परस्पर मतभेद रखते हुए भी सब धर्म–शास्त्रों में एक समान विचार है कि 'अहिंसा सर्वश्रेष्ठ धर्म है।' जैसे –

अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परो दमः।
अहिंसा परमं दानमहिंमा परमं तपः।।66।।

अनुवाद : अहिंसा ही परम धर्म है। अहिंसा ही सबसे बड़ा दम (इन्द्रिय–निग्रह) है। अहिंसा ही सबसे उत्तम दान है। अहिंसा ही सबसे महान् है।

अहिंसा परमो यागस्त्वहिंसा परमं बलम्।
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं श्रुतम्।।67।।

अनुवाद : अहिंसा ही सबसे बड़ा यज्ञ है। अहिंसा सबसे बड़ा बल है। अहिंसा सबसे बड़ा मित्र है। अहिंसा सबसे बड़ा ज्ञान है।

सर्व–हिंसा–निवृत्ता ये नराः सर्व–सहाश्च ये।
सर्वस्याऽऽश्रयभूताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः।।69।।

अनुवाद : जो व्यक्ति सब तरह की हिंसा से विरत है, जो सब कुछ सहन कर लेते हैं और सबका सहारा बने हुए हैं, वे लोग ही स्वर्ग में जाते हैं।69।

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति।।70।।

अनुवाद : एक मात्र धर्म ही ऐसा मित्र है कि जो प्राणी के मर जाने के बाद भी उसके साथ जाता है। शेष सब तो इस शरीर के साथ ही नष्ट हो जाते हैं।70।

मर्तव्यमिति यद् दुःखं पुरुषस्योपजायते।
शक्यते नानुमानेन परेण परिवर्णितुम्।।71।।

अनुवाद : 'मुझे मर जाना है' यह सोच कर मनुष्य को जो दुःख होता है, उसका (दुःख) दूसरा (कोई व्यक्ति) अनुमान से (भी) वर्णन नहीं कर सकता।71।

शृणु यतः –

स्वच्छन्दवनजातेन शाकेनापि प्रपूर्यते।
अस्य दग्धोदरस्यार्थे कः कुर्यात् पातकं महत्।।72।।

अनुवाद : और सुनो – (यह पेट तो) अपने आप वन में उत्पन्न हुए साग से भी भरा जा सकता है। (तो फिर) इस मुए (नीच) पेट के लिए भंयकर पाप कौन करे।72।

एवं विश्वास्य स मार्जारस्तरुकोटरे स्थितः। ततो दिनेषु गच्छत्सु असौ पक्षिशावकानाक्रम्य कोटरमानीय प्रत्यहं खादति। येषामपत्यानि खादितानि तैः शोकार्त्तैर्विलपद्भिरितस्ततो जिज्ञासा समारब्धा। तत्परिज्ञाय मार्जारः कोटरानिःसृत्य वहिः पलायितः पश्चात्पक्षिभिरितस्तो तरुकोटरे शावकाऽस्थीनि प्राप्तानि। अनन्तरं 'अनेनैव जरद्गवेनाऽस्माकं शावकाः खादिताः' इति सर्वैः पक्षिभिर्निश्चित्य स गृध्रो व्यापादितः।

अतोऽहं ब्रवीमि – 'अज्ञातकुलशीलस्य' इत्यादि।

अनुवाद : इस प्रकार विश्वास उत्पन्न कराके वह बिलाव गीध के साथ ही उस वृक्ष की खोखल में रहने लगा। इसके बाद कुछ दिन बीत जाने पर वह प्रतिदिन पक्षियों के बच्चों पर झपट कर उन्हें अपनी खोखल में ले जाकर खाने लगा। जिन पक्षियों के बच्चे खाए जाते थे उनके द्वारा शोक से दुःखी होकर विलाप करते हुए इधर–उधर खोज शुरू की गई। इस बात को समझ कर वह बिलाव खोखर से निकल कर बाहर भाग गया। बाद में इधर–उधर खोजते हुए पक्षियों को वहीं वृक्ष की खोखर में बच्चों की हड्डियाँ प्राप्त हुई। तब सब पक्षियों द्वारा इस 'जरद्गव द्वारा ही हमारे बच्चे खाए गए हैं' – ऐसा निश्चय करके वह गीध मार डाला गया। इसलिए मैं कहता हूँ – 'अज्ञात कुल शील वाले ....' इत्यादि।

(जारद्गव विडाल कथा समाप्त)

इत्याकर्ण्य स जम्बुकः सकोपमाह–'मृगस्य प्रथमदर्शनदिने भवानप्यज्ञातकुलशील एव, तत् कथं भवता सह एतस्य स्नेहानुवृत्तिरूत्तरोत्तरं वर्धते ?'

अनुवाद : यह सुनकर वह गीदड़ गुस्से से बोला – 'हरिण का जब आप ने पहली बार दर्शन किया था उस दिन आप भी उसके कुल और शील से अनभिज्ञ ही थे, तो फिर कैसे आपके साथ इसका प्रेमप्रवाह क्रमशः बढ़ता जा रहा है ?

यत्र विद्वज्जनो नाऽस्ति श्लाघ्यस्तत्राऽल्पधीरपि।
निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते।।73।।

अनुवाद : जहाँ योग्य विद्वान् नहीं है वहाँ अल्प–बुद्धि वाला पुरुष भी प्रशंसा के योग्य होता है। वृक्ष–रहित प्रदेश में एरण्ड भी वृक्ष कहा जाता है।73।

अन्यच्च –

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।74।।

अनुवाद : और भी – 'यह अपना है, यह पराया है' इस प्रकार की धारणा (विचार) छोटे दिल वालों की ही होती है। उदार स्वभाव वालों के लिए तो सारी पृथ्वी ही (अपना) परिवार होता है।74।

यथाऽयं मृगो मम बन्धुस्तथा भवानपि। मृगोऽब्रवीत्–किमनेनोत्तरोत्तरेण ? सर्वैरेकत्र विश्रम्भाऽऽलापैः सुखमनुभवद्भि स्थीयताम्। यतः –

अनुवाद : जैसे यह मेरा मित्र है वैसे आप भी मेरे मित्र हैं। तब मृग बोला – 'रहने दो, इस उत्तर प्रत्युत्तर से क्या लाभ ? सब लोग प्रेम से बातचीत करते हुए एक जगह सुखपूर्वक रहें – (यही अच्छा है)। क्योंक –

न कश्चित् कस्यचिन्त्रिं, न कश्चित् कस्यचिद् रिपुः।
व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते रिपवस्तथा।।75।।

अनुवाद : न कोई किसी का मित्र है, (और) न कोई किसी का शत्रु। व्यवहार से (ही) मित्र और शत्रु होते रहते हैं।75।

काकेनोक्त्माम्– 'एवमस्तु।' अथ प्रातः सर्वे यथाऽभिमतदेशं गताः।

अनुवाद : कौए ने कहा = 'ऐसा ही हो।' इसके बाद प्रातःकाल वे सब अपने अभीष्ट स्थान को चले गए।

एकदा निभृतं शृगालो ब्रूते – 'सखे ! अस्मिन् वनैकदेशे सस्यपूर्णं क्षेत्रमस्ति। तदहं त्वां नीत्वा दर्शयामि।' तथा कृते सति मृगः प्रत्यहं तत्र गत्वा सस्यं खादति। अथ क्षेत्रपतिना तद् दृष्ट्वा पाशो योजितः। अनन्तरं पुनरागतो मृगः पाशैर्बद्धोऽचिन्तयत्–को मामितः कालपाशादिव व्याधपाशात् त्रातुं मित्रादन्यः समर्थः ?

अनुवाद : एक दिन गीदड़ ने एकान्त में कहा – हे मित्र ! इस वन के एक तरफ हरी धान से भरा खेत है। सो मैं तुम्हें ले जाकर वह दिखाता हूँ। वैसा करने पर मृग, प्रतिदिन वहाँ जाकर हरी धान खाने लगा। इसके बाद एक बार खेत के स्वामी ने यह देख कर जाल लगा दिया। तदनन्तर जब वह हरिण फिर वहाँ आया तो, जाल में फंस गया (और) सोचने लगा – मित्र के अतिरिक्त और कौन मुझे यमराज के फन्दे के समान इस व्याध के जाल से बजा सकता है।

तत्राऽन्तरे जम्बुकस्तत्राऽऽगत्योपस्थितोऽचिन्तयत् – 'फलितस्तावदस्माकं कपटप्रबन्धः मनोरथसिद्धिरपि प्रायो मे भविष्यति। एतस्योत्कृत्यमानस्य मांसाऽसृग्लिप्तान्यस्थीनि मयाऽवश्यं प्राप्तव्यानि। तानि बाहुल्येन मे भोजनानि भविष्यन्ति।'

अनुवाद : इसी बीच में सियार वहाँ आकर उपस्थित हुआ (और) सोचने लगा – मेरी कपट की चाल तो चली गई। (अब मेरी) मनोकामना भी लगभग पूर्ण जो जाएगी। इस मृग पर से चमड़ा उतारे जाते समय माँस तथा लहू से सनी हुई हड्डियाँ मुझे अवश्य मिलेंगी और वे मेरा भरपूर भोजन बनेंगी।'

मृग उसे देखकर प्रसन्न होकर बोला – 'हे मित्र ! मेरे बन्धन काटो। मुझे शीघ्र बचा लो। क्योंकि –

आपत्सु मित्रं जानीयाद्युद्धे–शूरमृणे शुचिम्।
भार्या क्षीणेषु वित्तेषु व्यसनेषु च बान्धवान्।।76।।

अनुवाद : आपत्तियों में मित्र, युद्ध में वीर, ऋण में ईमानदार, धन–सम्पत्ति नष्ट हो जाने पर पत्नी और दुख पड़ने पर भाई–बन्धु परखे जाते हैं।76।

अपरंच –

उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः।।77।।

अनुवाद : इसके अतिरिक्त – जो व्यक्ति खुशी के अवसर पर, विपत्ति में, अन्न संकट में, राज्य में उथल–पुथल मच जाने पर, कचहरी में और श्मशान में साथ देता है, वही (अच्छा) बन्धु है।77।

जम्बुको मुहुर्मुहुः पाशं विलोक्याचिन्तयत्–दृढबन्धबद्धोऽस्ति तावदयं मृगः। ब्रूते च–'सखे, स्नायुनिर्मिता एते पाशाः। तदद्य भट्टारकरविवारे कथमेतान् दन्तैः स्पृशामि ? मित्र ! यदि चित्ते नाऽन्यथा मन्यसे तदा प्रभाते यत् त्वया वक्तव्यं तत् कर्तव्यम्। 'इत्युक्त्वा तत्समीपे–आत्मानमाच्छाद्य स्थितः सः।'

अनुवाद : यह गीदड़ बार–बार जाल की ओर देख कर सोचने लगा – 'यह फन्दा तो मजबूत है।' फिर बोला – 'मित्र ! ये जाल चमड़े के तांत से बने हुए हैं, अतः आज रविवार के दिन कैसे इन्हें दांतों से छुऊँ। हे मित्र ! यदि तुम दिल में बुरा न मानो तो प्रातःकाल जो तुम कहोगे, वह कर दूँगा। यह कह कर (मृग) के पास ही अपने को छिपा कर बैठ गया।

अनन्तरं स काकः प्रदोषकाले मृगमनागतमवलोक्येतस्ततोऽन्विष्य तथाविधं तं दृष्ट्वोवाच – 'सखे ! किमेतत् ?' मृगेणोक्तम् – 'अवधीरितसुहृद्वाक्यस्य फलेतत्। तथा चोक्तम् –

अनुवाद : तब वह कौआ सन्ध्या समय मृग को न आया देखकर इधर–उधर ढूँढते हुए, उसे इस प्रकार (फन्दे में फंसा) देखकर बोला – 'मित्र ! यह क्या ?' मृग ने कहा – 'यह मित्र की बात की अवहेलना करने का फल है। जैसा कि कहा है –

सुहृदां हितकामानां यः शृणोति न भाषितम्।
विपत्सन्निहिता तस्य, स नरः शत्रुनन्दनः।।78।।

अनुवाद : जो मनुष्य अपना हित चाहने वालों मित्रों की बात नहीं सुनता, विपत्ति उसके समीप रहती है और वह अपने शत्रु को प्रसन्न करने वाला होता है अर्थात् उसे विपत्ति में पड़ा देखकर उसके शत्रु प्रसन्न होते हैं।78।

काको ब्रूते – 'सः वंचकः क्वाऽऽस्ते ?'। मृगेणोक्तं – 'मन्मांसार्थी तिष्ठत्यत्रैव'। काको ब्रूते मित्र ! – 'उक्तमेव मयापूर्वम् –

अनुवाद : कौआ बोला – 'वह ठग कहाँ है ?' मृग ने कहा – 'मेरे मांस को खाने का इच्छुक यहीं बैठा है।' कौआ बोला – 'मैंने पहले कही कहा था –

अपराधो न मेऽस्तीति नैतद्विश्वासकारणम्।
विद्यते हि नृशंसेभ्यो भयं गुणवतामपि।।79।।

अनुवाद : मेरा कोई अपराध नहीं अर्थात् मैंने इसका कुछ भी नहीं बिगाड़ा। अतः यह भी मेरे साथ विश्वासघात न करेगा, यह विश्वास का कारण नहीं हो सकता। अभिप्राय यह कि किसी मनुष्य को दूसरे पर इसलिए विश्वास नहीं कर लेना चाहिए कि जब मैंने इसका कुछ नहीं बिगाड़ा तो यह मुझे हानि क्यों पहुंचायेगा। क्योंकि क्रूर जनों से गुणवानों को भी भय बना ही रहता है।79।

दीपनिर्वाणगधंच, सुहृद्वाक्यमरुन्धतीम्।
न जिघ्रन्ति, न शृण्वन्ति, न पश्यन्ति गताऽऽयुपः।।80।।

अनुवाद : दीपक के बुताने पर जो तेल की गन्ध उठती है उसको जो लोग नहीं सूंघ सकते हैं, या जो लोग मित्रों के हित वाक्यों पर ध्यान नहीं देते हैं, या उत्तर दिशा में स्थित सात ऋषियों के पास के छोटे अरुन्धती नक्षत्र को आकाश में नहीं देख सकते हैं, उनकी मृत्यु निकट ही समझनी चाहिए अर्थात् वे ज्यादा दिन इस संसार में नहीं रहेगें, शीघ्र ही नष्ट हो जाएँगे।

परोक्षे कार्यहन्तारं, प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत् तादृशं मित्रं, विषकुम्भं पयोमुखम्।।81।।

अनुवाद : ऐसे मित्र को छोड़ देना चाहिए जो पीठ पीछे तो काम बिगाड़ता हो और सामने मीठी–मीठी बातें करता हो। क्योंकि वह एक ऐसे विष के घड़े के समान है जिसके मुख पर (ऊपर) दूध पड़ा है।81।

ततः काको दीर्घ निःश्वस्य आह–अरे वंचक!
किं त्वया पापकर्मणा कृतम्। यतः –

अनुवाद : तब कौआ लम्बा सांस भरकर बोला – 'अरे धूर्त' तुम पापी ने यह क्या किया। क्योंकि –

संलापितानां मधुरैर्वचोभिर्मिथ्योपचारैश्च वशीकृतानाम्।
आशावतां श्रद्दधतां च लोके किमर्थिनां वंचयितव्यमस्ति।।82।।

अनुवाद : (संसार में) मधुर वचनों से विश्वस्त हुए (शब्दार्थ – बातों में आए हुए) लोगों को, तथा कपटमय व्यवहारों से वश में किए गए लोगों को, श्रद्धालुओं को, तथा आशा रखने वालों व याचकों को ठगना कौन बड़ी बात है ?।82।

उपकारिणि विश्रब्धे शुद्धमतौ यः समाचरति पापम्।
तं जनमसत्यसन्धं भगवति वसुधे! कथं वहसि।।83।।

अनुवाद : हे भगवती पृथ्वी ! जो प्राणी उपकारी, विश्वासी, पवित्र बुद्धि वाले (अर्थात् निष्कपट) प्राणी के साथ भी पाप–पूर्ण आचरण करता है (अर्थात् विश्वासघात करता है), छूठी प्रतिज्ञा वाले उस पुरुष को तुम कैसे धारण करती हो।83।

दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिं चापि न कारयेत्।
उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णयते करम्।।84।।

अनुवाद : दुर्जन के साथ मैत्री और प्रीति (कभी) नहीं करनी चाहिए क्योंकि जलता हुआ अंगारा हाथ जला देता है और वहीं अंगारा (कोयला ठण्डा होने पर) हाथ को काला कर देता है (अर्थात् वह सदा दुःखदायी ही होता है)।84।

प्राक्पादयोः पतति खादति पृष्ठमासं,
कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम्।
छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशंक।
सर्व खलस्य चरितं मशकः करोति।।85।।

अनुवाद : मच्छर दुष्ट के समान सब आचरण करता है – पहले पैरों पर पड़ता, पीठ का मांस खाता है, कान में कुछ मधुर विचित्र–सा शब्द करता है, फिर छेद देखकर निःशंक होकर (उस कान में) घुस जाता है।85।

दुर्जनः प्रियवादी च नैतिद्वश्वासकारणम्।
मधु तिष्ठतिजह्वाग्रे हृदि हालाहलं विषम्।।86।।

अनुवाद : दुर्जन का मधुरभाषी होना (उस पर) विश्वास का कारण नहीं होता अर्थात् दुष्ट को मधुर भाषण करता देख कर उस पर विश्वास नहीं कर लेना चाहिए, क्योंकि उसकी जिह्वा के अग्र भाग पर (ही) मिठास होता है, दिल में तो (हलाहल) विष ही भरा होता है।86।

अथ प्रभाते क्षेत्रपतिर्लगुडहस्तस्तं प्रदेशमागच्छन् काकेनाऽवलोकितः। तमालोक्य काकेनोक्तं – 'सखे मृग ! त्वमात्मानं मृतवत्संदर्श्य वातेनोदरं पूरयित्वा पादान स्तब्धीकृतः तिष्ठ। यदाऽहं शब्दं करोमि तदा त्वमुत्थाय सत्वरं पलायिष्यसे।' मृगस्तथैव काकवचनेन स्थितः। ततः क्षेत्रपतिना हर्षोत्फुल्ललोचनेन तथाविधो मृग आलोकितः – 'आः स्वयं मृतोऽसि' – इत्युक्वा मृगं बन्धनान्मोचयित्वा पाशान् ग्रहीतुं (संवरीतुं वा) सयत्नो बभूव। ततः कियद्दूरमन्तरिते क्षेत्राधिपे काकशब्दं श्रुत्वा मृगः सत्वरमुत्थाय पलायितः तमुद्दिश्य तेन क्षेत्रपतिना क्षिप्तेन लगुडेन शृगालो हतः। तथा चोक्तम् –

अनुवाद : इसके बाद कौवे न उस खेत के स्वामी को हाथ में डण्डा लिए उसी ओर आते हुए देखा। उसको देखकर कौए ने मृग से कहा – 'हे मित्र मृग ! तुम अपने को मृतक के समान दिखला कर पेट को वायु से फुला कर पैरों को निश्चेष्ट कर पड़ जाओ। जब मैं बोलूँ, तब तुम झट से भाग जाना।' कौए के कहने से मृग वैसे ही पड़ गया। इसके बाद खेत के स्वामी ने प्रसन्नता भरे नेत्रों से मृग को उस स्थिति में देखा। 'हा ! अपने आप मर गया।' ऐसा कह कर वह मृग को बन्धन से मुक्त करके जाल समेटन में प्रयत्नशील हो गया। तब कौए का शब्द सुनकर मृग शीघ्र उठकर भाग गया। उसको लक्ष्य कर फैंके गए दण्ड से उस खेत के स्वामी द्वारा वह सियार मार डाला गया।

कहा भी है –

त्रिभिर्वर्षैः त्रिभिर्मासैः त्रिभिः पक्षैः त्रिभिर्दिनैः।
अत्युत्कटैः पापपुण्यैरिहैव फलमश्नुते।।87।।

अनुवाद : (मनुष्य) अपने किए अत्यन्त तीव्र पाप–पुण्यों के कारण (मनुष्य) उनका फल तीन वर्ष में, तीन मास में, तीन पखवाड़ों में या तीन दिन में यहीं (इसी जन्म में ही भोग लेता है)।87।

अतोऽहं ब्रवीमि – 'भक्ष्यभक्षकयोः प्रीतिः' इत्यादि। काकः पुनराह –

अनुवाद : अतः मैं कहता हूँ – भक्ष्य और भक्षक का प्रेम विपत्ति की जड़ है – इत्यादि।

भक्षितेनाऽपि भवता नाऽऽहारो मम पुष्कलः।
त्वयि जीवति जीवामि चित्रग्रीव इवाऽनघ।।88।।

अनुवाद : हे निष्पाप ! आपको खा लेने से भी मेरा पूर्ण भोजन नहीं होगा। मैं तुम्हारे जीवित रहने पर चित्रग्रीव की तरह जीवित रहूँगा।88।

अन्यच्च –

तिरश्चामपि विश्वासो दृष्टः पुण्यैककर्मणाम्।
सतां हि साधुशीलत्वात्स्वभावो न निवर्तते।।89।।

अनुवाद : और भी – पुण्यात्मा पक्षियों में भी (परस्पर) विश्वास देखा गया है, क्योंकि सज्जनों का स्वभाव साधुशील (सदाचारी) होने के कारण (किसी भी योनि में) नहीं बदलता है।89।

किंच –

साधोः प्रकोपितस्याऽपि मनो नाऽऽयाति विक्रियाम्।
न हि तापयितुं शक्यं सागराऽम्भस्तृणोल्कया।।90।।

अनुवाद : और भी – क्रोध दिलाए जाने पर भी सज्जन का चित्त विकार को प्राप्त नहीं होता है। निश्चय ही समुद्र के जल को घास फूस की अग्नि (लुकाठी) से गरम नहीं किया जा सकता है।90।

मार्जारो, महिषो, मेष, काकः, कापुरुषस्तथा।
विश्वासात्प्रभवन्त्येते, विश्वासस्तत्र नोचितः।।91।।

अनुवाद : बिलाव, भैंसा, भेड़, कौआ और नीच आदमी ये सब विश्वास करने से प्रभावी हो जाते हैं। (इनका साहस बढ़ जाता है) (अतः) इनका कभी विश्वास नहीं करना चाहिए।91।

शत्रुणा नहि सन्दध्यात्सुश्लिष्टेनाऽपि सन्धिना।
सुतप्तमपि पानीयं शमयत्येव पावकम्।।92।।

अनुवाद : उत्तम से उत्तम सन्धि के द्वारा भी शत्रु से कभी सन्धि (मेल) नहीं करना चाहिये। क्योंकि यदि पानी गरम होगा तो भी वह अग्नि को तो बुझा ही देता है।92।

दुर्जनः परिहर्तव्यः विद्ययाऽलंकृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्वः किमसौ न भयंकरः।।93।।

अनुवाद : दुष्ट पुरुष चाहे विद्या से सुशोभित (विद्वान्) भी हो, छोड़ देने योग्य है अर्थात् उनका संग न करें। (क्योंकि) मणि से सुशोभित वह सांप क्या भयंकर नहीं होता ? अर्थात् भयंकर होता है।93।

यदशक्यं न तच्छक्यं, यच्छक्यं शक्यमेव तत्।
नोदके शकटं याति, न च नौर्गच्छति स्थले।।94।।

अनुवाद : जो बात असम्भव है वह कदापि नहीं हो सकती और जो सम्भव है वह सम्भव ही रहेगा। (अर्थात् असम्भव को सम्भव तथा सम्भव को असम्भव नहीं किया जा सकता)। जैसे पानी पर गाड़ी नहीं चल सकती और भूमि पर नौका नहीं चल सकती।94।

अपरं च

महताऽप्यर्थसारेण यो विश्वसिति शत्रुषु।
भार्यासु च विरक्तासु तदन्तं तस्य जीवनम्।।95।।

अनुवाद : जो मनुष्य धनादि के महान् बल के कारण से शत्रुओं का तथा अपने में विरक्त (किन्तु दूसरे पुरुषों में अनुरक्त) हुई स्त्रियों को विश्वास करता है, उस मनुष्य के जीवन का अन्त ही समझना चाहिए।95।

लघुपतनको ब्रूते–श्रुतं मया सर्वम्, तथापि मम चैतावान् संकल्पस्त्वया सह सौहृद्यमवश्यं करणीयमिति। नोचेदनाहारेणाऽऽत्मानं व्यापादयिष्यामि। यतः –

अनुवाद : लघुपतनक बोले – 'मैंने सब सुन लिया है। फिर भी मेरा इतना निश्चय है कि तुम्हारे साथ मित्रता अवश्य करूँगा, नहीं तो अनशन द्वारा (भोजन न करके) अपने आप को समाप्त कर डालूँगा। जैसा कि –

मृद्घटवत् सुखभेद्यो दुःसन्धानश्च दुर्जनों भवति।
सुजनस्तु कनकघटवद् दुर्भेद्यश्चाशु संधेयः।।96।।

अनुवाद : दुर्जन मिट्टी के घड़े के समान सहज में टूट जाता है। (अलग हो जाता है) और उसका पुनः जुड़ना (मेल) कठिन होता है। सज्जन तो सोने के घड़े के समान जल्दी टूटता (बिगड़ता) नहीं, (और यदि टूट भी जाए) तो शीघ्र जोड़ा जा सकता है।

इस श्लोक में दुर्जन की मिट्टी के घड़े से तथा सज्जन को सोने के घड़े से उपमा दी गई है और उनके स्वभाव में महान् अन्तर बताया गया है।96।

द्रवत्वात्सर्वलोहानां निमित्तान्मृगपखिणाम्।
भयालोभाच्च मूर्खाणां संगतं दर्शनात्सताम्।।97।।

अनुवाद : और भी – गलाने से सब धातुओं का, किसी निमित्त से पशु पक्षियों का, भय तथा लोभ से मूर्खों का मेल हो जाता है, पर सज्जनों का मेल (मैत्री) तो दर्शन मात्र से हो जाता है।97।

किंच –

नारिकेलसमाकारा दृश्यन्ते हि सुहृज्जनाः।
अन्ये बदरिकाकाराः बहिरेव मनोहराः।।98।।

अनुवाद : साथ ही – निश्चय से सुहृदय पुरुष नारियल के समान आकार वाले होते हैं। (ऊपर से रुखे या कड़े होते हुए भी भीतर से सरस होते हैं)। दूसरे (दुर्जन) तो बेर के आकार जैसे केवल बाहर से ही सुन्दर होते हैं (अन्दर से तो गुठली के समान कठोर ही होते हैं)।98।

स्नेहच्छेदेऽपि साधूनां गुणाः नाऽऽयान्ति विक्रियाम्।
भंगेऽपि हि मृणालानामनुबध्नन्ति तन्तवः।।99।।

अनुवाद : प्रीति टूट जाने पर भी सज्जनों के गुण विकार को प्राप्त नहीं होते, जैसे कमल–नालों के टूटने पर भी (उनमें) तन्तु (धागे) परस्पर जुड़े रहते हैं।99।

शुचित्वं त्यागिता शौर्य सामान्यं सुखदुःखयोः।
दाक्षिण्यं चानुरक्तिश्च सत्यता च सुहृद्गुणाः।।100।।

अनुवाद : पवित्रता, त्यागशीलता, पराक्रम, सुख–दुःख में एक–सा रहना, अनुकूलता, अनुराग और सच्चाई – ये सब सहृदय पुरुषों के गुण हैं।100।

एतैर्गुणैरुपेतो भवदन्यो मया कः सुहृद् प्राप्तव्यः ? इत्यादि तद्वचनमाकर्ण्य हिरण्यको बहिः निःसृत्याह – 'आप्यायितोऽहं भवताऽनेन वचनाऽमृतेन।' तथा चोक्तम् –

अनुवाद : इन गुणों से युक्त आपके अतिरिक्त मुझे कौन–सा मित्र मिलेगा ? इत्यादि उस कौए के वचन सुनकर हिरण्यक बाहर निकल कर बोला – 'मैं आपके इन अमत – वचनों से तृप्त हो गया हूँ, कहा भी है –

घर्मार्तं न तथा सुशीतलजलैः स्नानं, न मुक्तावली,
न श्रीखण्डविलेपनं सुखयति प्रत्यङ्गमप्यर्पितम्।
प्रीत्या सज्जनभाषितं प्रभवति प्रायो यथा चेतसः
सद्युक्त्या च पुरस्कृतं सुकृतिनामाकृष्टिमन्त्रोपमम्।।101।।

अनुवाद : गर्मी से सताए हुए मनुष्य को न अत्यन्त शीतल जल से स्नान, मोतियों की माला और प्रत्येक अंग में लगाया हुआ श्वेत चन्दन का लेप उतना सुख देता है, जितना कि प्रेमपूर्वक बोला हुआ सज्जन का वचन मन को प्रायः सुख देने में समर्थ होता है। (क्योंकि) पुण्यात्माओं का उत्तम युक्ति के साथ प्रस्तुत किया हुआ यह वचन वशीकरण मन्त्र के समान होता है।101।

रहस्यभेदो याच्ञा च, नैष्ठुर्यं चलचित्तता।
क्रोधो निःसत्यता द्यूतमेतन्मित्रस्य दूषणम्।।102।।

अनुवाद : और भी – रहस्योद्घाटन (गुप्त बातों को प्रगट कर देना), मांगना, निर्दयता, चित्त की अस्थिरता, क्रोध, झूठ बोलना (तथा) जुआ खेलना – ये सब मित्र के दोष हैं।102।

अनेन वचनक्रमेण तदेकमपि दूषणं त्वयि न लक्ष्यते। यतः –

अनुवाद : सो तुम्हारी इन बातों के ढंग से (इन दोषों में से) एक भी दोष तुम में नहीं दिखता। क्योंकि –

पटुत्वं सत्यवादित्वं कथायोगेन बुध्यते।
अस्तब्धत्वमचापल्यं प्रत्यक्षेणाऽवगम्यते।।103।।

अनुवाद : चतुरता (तथा) सत्यपरायणता वार्तालाप द्वारा जानी जाती है। नम्रता और गम्भीरता साक्षात् दर्शन से ही मालूम हो जाती है।103।

अपरंच –

अन्यथैव हि सौहार्दं भवेत्स्वच्छाऽन्तरात्मनः।
प्रवर्ततेऽन्यथा वाणी शाठयोपहतचेतसः।।104।।

अनुवाद : शुद्ध चित्त वालों की मित्रता और ही प्रकार की होती है और धूर्त्तता – पूर्ण चित्त वालों की वाणी दूसरी तरह की होती है।104।

मनस्यन्यर्द्वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।।105।।

अनुवाद : दुष्टों के मन में कुछ, वचन में कुछ तथा कर्म में कुछ और होता है। किन्तु महात्माओं के मन, वचन और कर्म एक – से ही होते हैं।105।

'तद् भवतु भवतो अभिमतमेव।' इत्युक्त्वा मैत्र्यं विधाय, भोजनविशेषैः वायसं सन्तोष्य, विवरं प्रविष्टः। वायसोऽपि स्वस्थानं गतः। ततः प्रभृति तयोरन्योऽन्यमाहारप्रदानेन कुशलप्रश्नैः विश्रम्भालापैश्च कालोऽतिवर्तते।

अनुवाद : 'अच्छा' तो तुम्हारी इच्छानुसार ही हो। यह कह कर मित्रता करके, विशेष प्रकार के भोजन से कौए को सन्तुष्ट करके, अपने बिल में चला गया।

उस दिन से उन दोनों में परस्पर भोजन के लेन–देन से, या कुशल–मंगल आदि पूछने से और विश्वास युक्त बातचीतों से (खुले हृदय से बातचीत करने से) समय बीतने लगा।

एकदा लघुपतनको हिरण्यकमाह – 'सखे ! कष्टतरलभ्याऽऽहारमिदं स्थानं परित्यज्य स्नानान्तरं गन्तुमिच्छामि।' हिरण्यको ब्रूते – 'मित्र ! क्व गन्तव्यम्। तथा चोक्तम् –

अनुवाद : एक दिन लघुपतनक कौए ने हिरण्यक चूहे से कहा कि 'हे मित्र ! अब तो बड़ी कठिनता से भोजन प्राप्ति कराने वाले इस स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान में जाना चाहता हूँ' हिरण्यक बोला – 'हे मित्र ! कहाँ जाओगे ?' कहा भी है –

स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः।
इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानं न परित्यजेत्।।106।।

अनुवाद : दाँत, केश, नाखून और मनुष्य – अपना स्थान छोड़ देने पर शोभा नहीं पाते। ऐसा सोच–विचार कर, बुद्धिमान कभी अपना स्थान न छोड़े।106।

काको ब्रूते –

कापुरुषस्य कापुरुषवचनमेतत्। यतः –
स्थानमुत्सृज्य गच्छन्ति सिंहाः सत्पुरुषा गजाः।
तत्रैव निधनं यान्ति काकाः कापुरुषा मृगाः।।107।।

अनुवाद : कौआ बोला – 'मित्र ! यह तो कायर मनुष्यों का वचन है। क्योंकि – सिंह, सत्पुरुष तथा हाथी अपना स्थान छोड़कर चले जाते हैं (परन्तु) कौआ, कायर तथा मृग अपने स्थान पर ही पड़े–पड़े मृत्यु को प्राप्त करते हैं।107।

तथा च

को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशः स्मृतः,
यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहु–प्रतापाऽर्जितम्।
यद्दंष्ट्रानखलांगुलप्रहरणः सिंहो वनं गाहते,
तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णां छिनत्त्यात्मनः।।108।।

अनुवाद : और भी – वीर एवं मनस्वी पुरुष के लिए कौन अपना देश है और कौन पराया देश है ? वह तो जिस देश में जाता है उसी को अपने बाहुबल से अपने वश में कर लेता हैं जैसे दान्त, नाखून तथा पूँछ रूपी शस्त्रों से युक्त सिंह जिस वन में प्रवेश करता है, उसी वन में गजराजाओं को मार कर उनके रुधिरों से अपनी प्यास बुझाता है।108।

चलत्येकेन पादेन, तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान्।
नाऽसमीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत्।।109।।

अनुवाद : बुद्धिमान् मनुष्य (अपने) एक पैर से चलता है और एक पैर से (पहले स्थान पर) टिका रहता है, (अर्थात् पैरों को एक साथ नहीं उठाता)। उसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य दूसरे को बिना देखे, पहले स्थान को न छोड़े।109।

वायसो ब्रूते – 'अस्ति सुनिरूपितं स्थानम्।' हिरण्यकोऽवदत् – 'किं तत् ?' वायसो ब्रूते – 'अस्ति दण्डकारण्ये कर्पूरगौराऽभिधान सरः। तत्र चिरकालोपार्जितः प्रियसुह्नन्मे मन्थराऽभिधानः कच्छपः सहजधार्मिकः प्रतिवसति। यतः –

अनुवाद : कौए ने कहा – 'एक स्थान मेरा पहिले से अच्छी तरह देखा हुआ है। हिरण्यक बोला – 'वह कौन–सा स्थान है ?' कौआ बोला – 'दण्डकारण्य में कर्पूरगौर नाम का एक तालाब है। वहाँ चिरकाल से परिचित मेरा एक प्रिय मित्र स्वभाव से धार्मिक, मंथर नाम का, कछुआ रहता है। क्योंकि –

परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्।
धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित्तु महात्मनः।।110।।

अनुवाद : दूसरों को उपदेश देने में चतुराई तो सभी मनुष्यों में सुलभ (सहज) है। परन्तु धर्म के अनुसार स्वयं आचरण करना किसी (बिरले) महात्मा का ही काम है।108।

स च भोजनविशेषैर्मा संवर्द्धयिष्यति। हिरण्यकोऽप्याह – 'तत् किमत्रावस्थाय मया कर्त्तव्यम्? यतः –

अनुवाद : और वह अनेक प्रकार के भोजनों से मेरा अच्छी तरह सत्कार करेगा। हिरण्यक बोला – '(अच्छा), फिर मैं यहाँ रहकर क्या करूँगा ? क्योंकि –

यस्मिन्देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवः।
न च विद्याऽऽगमः कश्चित्तं देशं परिवर्जयेत्।।111।।

अनुवाद : जिस देश में न सम्मान हो, न जीविका हो, न भाई–बन्धु हों और न कोई विद्या लाभ हो, उस देश को छोड़ देना चाहिए।111।

धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पंचमः।
पंच यत्र न विद्यन्ते न कुर्यात्तत्र संस्थितिम्।।112।।

अनुवाद : और भी – धनी, वेदपाठी, राजा, नदी तथा पाँचवाँ वैद्य – ये पाँच जहाँ नहीं होते वहाँ निवास नहीं करना चाहिए।112।

लोकयात्रा, भयं लज्जा दाक्षिण्यं त्यागशीलता।
पंच यत्र न विद्यन्ते न कुर्यात्तत्र संस्थितिम्।।113।।

अनुवाद : इसके अतिरिक्त – जीविका का साधन, निर्भयता, लज्जा, उदारता और दानशीलता ये पाँच बातें जहां न हों, वहां निवास न करें।

तत्र मित्र ! न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम्।
ऋणदाता च वैद्यश्च श्रौत्रियः सजला नदी।।114।।

अनुवाद : हे मित्र ! उस स्थान पर नहीं रहना चाहिए, जहाँ पर ये चार नहीं है – ऋण देने वाला महाजन, चिकित्सा करने वाला वैद्य, (शिक्षा तथा धार्मिक कृत्य वाला) वेद पाठी तथा (नहाने और पीने के लिए) उत्तम जल वाली नदी।114।

'ततो मामपि तत्र नय।' वायसोऽवदत् – ''एवमस्तु''। अथ वायसस्तत्र तेन मित्रेण सह विचित्रालापैः सुखेन तस्य सरसः समीपं ययौ। ततो मन्थरो दूरादवलोक्य लघुपतनकस्य यथोचितमातिथ्यं विधाय मूषकस्यातिथिसत्कारं चकार। यतः –

अनुवाद : 'अतः मुझे भी वहां ले चलो।' कौआ बोला – 'ऐसा ही सही।' इसके बाद वहां वह कौआ (अपने) उस मित्र (मृग) के साथ तरह–तरह की बातें करता हुआ सुखपूर्वक उस तालाब के समीप पहुंचा। तब मन्थर (कच्छप) ने दूर से ही लघुपतनक को देखकर, उसका यथायोग्य अतिथि सत्कार करके हिरण्यक का भी आतिथ्य किया। क्योंकि –

बालो वा, यदि वा वृद्धो, युवा वा गृहमागतः।
तस्य पूजा विधातव्या, सर्वस्याऽभ्यागतो गुरुः।।115।।

अनुवाद : बालक, या वृद्ध, या जवान कोई भी हो, वह यदि अपने घर पर आ जाये तो उसका भोजन आदि से सत्कार और अतिथिपूजन अवश्य करना चाहिए, क्योंकि अतिथि सबका पूज्य है।115।

गुरुरग्निर्द्विजातीनां, वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।
पतिरेको गुरुः स्त्रीणां, सर्वस्याभ्यागतो गुरूः।।116।।

अनुवाद : अग्नि द्विजों का (ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य का) गुरुः (पूज्य) है। ब्राह्मण सभी वर्णों का पूजनीय है। स्त्रियों का पूजनीय एक मात्र पति और अतिथि सबका पूजनीय होता है।116।

उत्तमस्याऽपि वर्णस्य नीचोऽपि गृहमागतः।
पूजनीयो यथायोग्यं, सर्वदेवमयो हि सः।।117।।

अनुवाद : उत्तम वर्ण (ब्राह्मण आदि) के घर पर यदि अपने से नीच (क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र आदि) भी कोई आवे तो भी उसकी भी यथायोग्य पूजा करनी चाहिए, क्योंकि अतिथि में सब देवताओं का निवास रहता है।117।

वायसोऽवदत्– 'सखे मन्थर ! विशेषंपूजामस्मै विधेहि। यतोऽयं पुण्यकर्मणां धुरीणः कारुण्यरत्नाकरो हिरण्यकनामा मूषिकराजः। एतस्य गुणस्तुतिं जिह्वा–सहस्त्रद्वयेनाऽपि सर्पराजो न कदाचित् कथयितुं समर्थः स्यात्। इत्युक्त्वा चित्रग्रीवोपाख्यानं वर्णितवान्। मन्थरः सादरं हिरण्यकं सम्पूज्याऽऽह–भद्र! आत्मनो निर्जनवनाऽऽगमनकारणमाख्यातु–मर्हसि।' हिरण्यकोऽवदत् – 'कथयामि श्रूयताम् 7

अनुवाद : कौए ने कहा – 'हे मित्र मन्थर ! इनका विशेष आदर–सत्कार करो। क्योंकि ये पुण्यात्माओं के प्रमुख, दया के सागर, हिरण्यक नाम के चूहों के राजा हैं। इनके गुण की प्रशंसा सर्पराज दो हजार जिह्वाओं से भी करने में कभी समर्थ नहीं हो पाते। यह कहकर चित्रग्रीव की कथा उसने कह डाली। (तदन्तर) मन्थर ने आदर सहित हिरण्यक का अच्छी प्रकार से पूजन कर उसे कहा – 'हे सज्जन पुरुष ! इस निर्जन वन में अपने आने का कारण तो कहिए।' हिरण्यक ने कहा – 'कहता हूँ सुनिए !'

कथा 5

मूषकपरिव्राजकयोः कथा
(चूहे और संन्यासी की कहानी)

अस्ति चम्पकाभिधानायां नगर्यां परिव्राजकावसथः। तत्र चूड़ाकर्णो नाम परिव्राट् प्रतिवसति। स भोजनावशिष्टभिक्षान्नसहितं भिक्षापात्रं नागदन्तकेऽवस्थाप्य प्रत्यहं स्वपिति। अहंच तदन्नमुत्प्लुत्योत्प्लुत्य प्रत्यहं भक्षयामि। अनन्तरं तस्य प्रियसुहृद्वीणाकर्णो नाम परिव्राजकः समायातः। तेन सह कथा–प्रसंगाऽवस्थितो ममत्रासार्थं जर्जरवंश–खण्डेन चूडाकर्णो भूमिमताडयत्। वीणाकर्ण उवाच 'सखे ! किमिति मम कथा–विरक्तोऽन्यासक्तो भवान् ? यतः –

अनुवाद : चम्पक नाम की नगरी में संन्यासियों का एक मठ है। वहाँ चूड़ाकर्ण नाम का एक संन्यासी रहता था। वह प्रतिदिन भोजन करने से बचे हुए भिक्षा के अन्न के साथ भिक्षापात्र को खूंटी पर टांग कर सो जाया करता था और मैं उस अन्न को उछल–कूद कर प्रति क्षण खा लिया करता था। उसके (कुछ दिन) बाद उसका प्रिय मित्र वीणाकर्म नाम का संन्यासी (वहाँ) आया। उसके साथ कथा वार्ता में लगा होने पर चूड़ाकर्ण मुझे डराने के लिए पुराने बांस के टुकड़े से भूमि को पीटता जाता था। वीणाकर्ण बोला – 'मित्र ! आप मेरी कथा से विरक्त होकर दूसरे (ध्यान में) कैसे लगे हो। क्योंकि –

मुखं प्रसन्नं विमला च दृष्टिः, कथाऽनुरागो मधुरा च वाणी।
स्नेहोऽधिकः सम्भ्रम–दर्शनं च, सदाऽनुरक्तस्य जनस्य लक्ष्म।।118।।

अनुवाद : प्रसन्न मुख तथा पवित्र दृष्टि, बातचीत में रुचि, मधुर वाणी, अधिक स्नेह, सम्मानपूर्वक दर्शन करना – ये सब सदा अनुरक्त रहने वाले व्यक्ति के लक्षण हैं।118।

अदृष्टिदानं कृतपूर्वनाशनममाननं दुश्चरिताऽनुकीर्त्तनम्।
कथा–प्रसंगेन च नाम–विस्मृतिः विरक्त–भावस्य जनस्य लक्षणम्।।119।।

अनुवाद : असन्तुष्ट होकर देखना, पहले किए हुए (उपकारों) को भूल जाना, सत्कार न करना, दोषों को प्रकट करना, कथा प्रसंग में नाम भी भूल जाना – ये सब विरक्त मनुष्य के लक्षण हैं।119।

चूड़ाकर्णेनाक्तम् – मित्र ! नाहं विरक्तः। किन्तु पश्य अयं मूषको ममापकारी सदा पात्रस्थं भिक्षान्नमुत्प्लुत्य भक्षयति। वीणाकर्णो नागदन्तकं विलोक्याह – 'कथं मूषिकः स्वल्पबलोऽप्येतावद् दूरमुत्पतति। तदत्र केनापि कारणेन भवितव्यम्। क्षणं विचिन्त्य परिव्राजकेनोक्तम् – 'कारणं चाऽत्र धन–बाहुल्यमेव भविष्यति। तथा चोक्तम् –

अनुवाद : चूड़ाकर्म ने कहा – 'मित्र ! मैं विरक्त नहीं हूँ किन्तु जरा देखो ! मेरा बुरा करने वाला यह चूहा सदा पात्र में रखे हुए भिक्षा के अन्न को उछल कर खा जाता है।' वीणाकर्ण ने खूंटी को देखकर कहा – 'अल्पशक्ति वाला होते हुए भी यह चूहा कैसे इतनी दूर तक उछल लेता है ? जरूर इसमें कोई कारण होगा।' कुछ देर विचार कर संन्यासी (वीणाकर्ण) ने कहा – 'इसमें धन की अधिकता ही कारण होगा। क्योंकि कहा है –

अकस्माद्युवती वृद्धं केशेष्वाकृष्य चुम्बति।
पतिं निर्दयमालिंग्य, हेतुरत्र भविष्यति।।120।।

अनुवाद : वृद्धपति की जवान (युवती) स्त्री सहसा अपने वृद्धपति के केशों को पकड़कर उसका गाढ आलिंगन कर उसके मुख का चुम्बन करती है, तो इसमें जरूर कुछ कारण होगा।120।

चूडाकर्णः पृच्छति– 'कथमेतत् ?'। वीणाकर्णः कथयति –

अनुवाद : चूडाकर्ण ने पूछा कि – यह कथा कैसे है ?। वीणाकर्ण कहने लगा –

कथा 5

लीलावती–वणिक्पुत्र–कथा

अस्ति' गौडीये कौशाम्बी नाम नगरी। तस्यां चन्दनदासनामा वणिंभहाधनो निवसति। तेन (च) पश्चिमे वयसि वर्त्तमानेन कामाऽधिष्ठितचेतसा धनदर्पाल्लीलावती नाम वणिक्पुत्री परिणीता। सा च मकरकेतोर्विजयवैजयन्तीव यौवनवती बभूव। स च वृद्धपतिस्तस्याः सन्तोषाय नाऽभवत्। यतः –

अनुवाद : गौड़ (बंगाल) देश में कौशाम्बी नाम की एक नगरी है। वहाँ पर चन्दनदास नाम का एक धनी वैश्य रहता था। उसने वृद्धावस्था में कामातुर होकर धन के घमण्ड से लीलावती नाम की एक बनिये की लड़की से विवाह किया। कुछ काल के बाद वह सुन्दरी कामदेव की विजय पताका के समान यौवनवती (जवान) हो गई और उसे उस वृद्ध पति से पूर्ण सन्तोष नहीं होता था। क्योंकि –

शशिनीव हिमार्त्तानां रवाविव।
मनो न रमते स्त्रीणां जराजीर्णेन्द्रिये पतौ।।121।

अनुवाद : जैसे – हिम (बर्फ जाड़ा) से पीड़ित प्राणी को चन्द्रमा अच्छा नहीं लगता है, धूप से पीड़ित मनुष्य को सूर्य अच्छा नहीं लगता है, वैसे ही जिस की सभी इन्द्रियाँ जीर्ण हो गयी हों ऐसा वृद्धपति युवती स्त्रियों को कभी अच्छा नहीं लगता है।121।

अन्यंच –

पलितेषु हि दृष्टेषु पुंसः का नाम कामिता !।
भैषज्यमिव मन्यन्ते यदन्यमनसः स्त्रियः।।122।।

अनुवाद : और जब पुरुष के सब बाल पक गये हों तो फिर कहो उसकी कामुकता कैसी ?। अर्थात् वृद्धावस्था में कामोपभोग की इच्छा व्यर्थ है। क्योंकि – वृद्ध पुरुष की स्त्री दूसरे से आसक्त हो जाती है और वह अपने उस वृद्ध पति को औषध (दवा) की तरह ही कडुआ समझती है।122।

(परन्तु) – स च वृद्धपतिस्तस्यामतीवाऽनुरागवान्। यतः –

अनुवाद : परन्तु वह वृद्ध वैश्य तो उस लीलावती पर अत्यन्त आसक्त हो रहा था।

धनाऽऽशा, जीविताऽऽशा च गुर्वी प्राणभृतां सदा।
वृद्धस्य तरुणी भार्या प्राणेभ्योऽपि गरीयसी।।123।।

अनुवाद : क्योंकि – सभी प्राणियों को धन की आशा और जीवन की आशा (लालसा) स्वभावतः अधिक होती है। परन्तु वृद्ध पुरुष को तो अपनी युवती स्त्री अपने प्राणों से भी अधिक प्यारी होती है।123।

नोपभोक्तुं, न च त्युक्तुं, शक्नोति विषयांजरी।
अस्थि निर्दशनः श्वेव जिह्वया लेढि केवलम्।।124।।

अनुवाद : और वृद्ध मनुष्य न तो विषयों (स्त्री आदि) को भोग ही सकता है और न उन्हें छोड़ ही सकता है किन्तु जिस प्रकार दन्तहीन कुत्ता हड्डी को केवल जीभ से चाटता रहता है, किन्तु उसे चबा नहीं सकता है, वही दशा उस वृद्ध मनुष्य की भी होती है।124।

अथ सा लीलावती यौवनदर्पादतिक्रान्तकुलशीलमर्यादा केनाऽपि वणिक्पुत्रेण सहाऽनुरागवती बभूव। यतः –

अनुवाद : कुछ काल के बाद वह लीलावती जवानी के मद से अपने कुल की मर्यादा का उलंघन कर एक बनिये के लड़के से फँस गई।

स्वातन्त्र्यं पितृमन्दिरे निवसतिर्यात्रोत्सवे संगति –
गोंष्ठी पूरुषसंनिधावनियमो, वासो विदेशे तथा।
संसर्गः सह पुंश्चलीभिरसकृद्वत्तेर्निजायाः क्षतिः,
पत्युर्वार्द्धकमीषिंतं, प्रवसनं', नाशस्य हेतुः स्त्रियाः।।125।।

अनुवाद : क्योंकि – स्वतन्त्रता, पिता के घर (पीहर में) रहना, यात्रा (देवता आदि के दर्शनों के मेले एवं विवाह–उत्सव इत्यादि में लोगों से मिलना, पुरुषों के साथ बिना रोक–टोक बैठना और उनसे गप लड़ाना, किसी की रोक–टोक का न रहना, विदेश में रहना, व्यभिचारिणी स्त्रियों का साथ होना, जीविका (खाने–पीने) का अभाव पति का वृद्ध होना, पति का इर्षालु होना और पति का परदेश में रहना, ये सब स्त्रियों के बिगड़ने के कारण हैं।125।

अपरंच –

पानं दुर्जनसंसर्गः, पत्या च विरहोऽटनम्।
स्वप्नश्चाऽन्यगृहे वासो, नारीणां दूषणानि षट्।।126।।

अनुवाद : और भी – शराब पीना, दुष्टों का साथ, पति का विरह, इधर उधर घूमना, दूसरे के घर में रहना या सोना, अकारण हँसना, हँसी–ठठ्ठा ये छः कारण स्त्रियों के दूषित होने (बिगड़ने) के होते हैं।126।

स्थानं नास्ति, क्षणो नास्ति, नास्ति प्रार्थयिता नरः।
तेन नारद ! नारीणां सतीत्वमुपजायते।।127।।

अनुवाद : हे नारद ! स्त्रियाँ पतिव्रता तभी तक रह सकती हैं, जब तक या तो उनके लिये व्यभिचार का कोई स्थान ही नहीं हो, या समय (व्यभिचार के लिये मौका) ही न मिले, या उनके चाहने वाला कोई पुरुष ही न हो।127।

न स्त्रीणामप्रियः कश्चित्प्रियो वाऽपि न विद्यते।
गावस्तृणमिवाऽरण्ये प्रार्थयन्ति नवं नवम्।।128।।

अनुवाद : और भी – स्त्रियों का न तो कोई प्रिय है और न उनका कोई अप्रिय ही है। किन्तु जैसे गाय वन में नया–नया तृण (घास) ढूँढती रहती हैं, वैसे ही स्त्रियाँ भी नये– नये पुरुषों को खोजा करती हैं।128।

अपरंच –

घृतकुम्भसमा नारी, तप्ताऽंगारसमः पुमान्।
तस्माद् घृतंच, वह्निंच, नैकत्र स्थापयेद् बुधः।।129।।

अनुवाद : और स्त्री – घी से भरे घड़े के समान है, पुरुष – जलते हुए अंगार (अग्नि) के समान है, इसलिए बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि घृत और अग्नि को एक साथ कभी न रखे।129।

मात्रा, स्वंस्त्रा, दुहित्रा वा न विविक्ताऽऽसनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो महान्तमपि कर्पति।।130।।

अनुवाद : बुद्धिमान् पुरुष को अपनी माता, बहिन तथा अपनी लड़की के साथ भी कभी एकान्त में नहीं बैठना चाहिये, क्योंकि इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल हैं, ये (इन्द्रियाँ) विद्वान् को भी अपने वंश में कर सकती हैं।130।

न लज्जा, न विनीतत्वं, न दाक्षिण्यं, न भीरुता।
प्राथनाऽभाव एवैकं सतीत्वे कारणं स्त्रियाः।।131।।

अनुवाद : और स्त्री के सती होने का कारण न तो लज्जा है, न नम्रता है, न दानशीलता है, और न डर ही है, किन्तु इसमें यदि कोई कारण है, तो वह केवल प्रार्थना करने वाले पुरुष का पास में नहीं होना ही है।131।

पिता रक्षति कौमारे, भर्त्ता रक्षति यौवने।
पुत्रश्च स्थाविरे भावे, न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।।132।

अनुवाद : और बाल्यावस्था में स्त्री की रक्षा पिता को करनी चाहिए, जवानी में पति को रक्षा करनी चाहिये और वृद्धावस्था में पुत्र को उनकी रक्षा करनी चाहिये। इस प्रकार स्त्री को कभी स्वतन्त्र नहीं छोड़नी चाहिये।132।

स्त्रियो हि चपला नित्यं देवानामपि–विश्रुतम्।
ताश्चाऽपि रक्षिता येषां ते नराः सुखभागिनः।।133।।

अनुवाद : क्योंकि – स्त्रियाँ सदा चंचल हैं – यह बात लक्ष्मी आदि के विषय में देवताओं में भी प्रसिद्ध है। अतः जिन पुरुषों की स्त्रियाँ सुशील व सुरक्षित हैं, वे ही मनुष्य संसार में सुखी हैं।133।

एकदा सा लीलावती रत्नावलीकिरणकर्बुरे पर्यंके तेन वणिक्पुत्रेण सह विश्रम्भाऽऽलापैः सुखाऽऽसीना तमलक्षितोपस्थितं पतिमवलोक्य, सहसोत्थाय, केशेष्वाकृष्य, गाढमालिंगय चुम्बितवती। तेनाऽवसरेण जारंच पलायितः। उक्तंच –

अनुवाद : एक समय वह लीलावती नाना प्रकार के रंग बिरंगे रत्नों की किरणों से सुशोभित पलंग पर सुखपूर्वक बैठी हुई। उस बनिये के लड़के से प्रेमपूर्वक बातचीत कर रही थी, कि – एकाएक अपने वृद्ध पति को आते हुए देखकर झट उठकर उससे चिपट कर उसका चुम्बन करने लगी। इसी समय मौका पाकर वह बनिये का लड़का भी भाग गया।

उशना वेद यच्छास्त्रं, यंच वेद बृहस्पतिः।
स्वभावेनैव तच्छास्त्रं स्त्रीबुद्धौ सुपतिष्ठितम्।।134।।

अनुवाद : कहा भी है – शुक्राचार्य और बृहस्पति भी जिन शास्त्रों को अपने गुरु से पढ़कर ही जान सके हैं, वे सब शास्त्र स्त्रियों की बुद्धि में स्वभाव से ही रहते हैं।134।

तदालिंगनमवलोक्य समीपवर्तिनी कुट्टन्यचिन्तयत् – 'अकस्मादियमेनमुपगूढवती (नूनं कोऽपि हेतुरत्र भविष्यति) – इति। 'ततस्तया कुट्टन्या तत्कारणं जारं परिज्ञाय, सा लीलावती गुप्तेन दण्डिता। अतोऽहं ब्रवीमा – 'अकस्माद्युवती वृद्धम' इत्यादि।

(एवं) मूषिकबलोपष्टम्भेन केनाऽपि कारणेनाऽत्र भवितव्यम्। क्षणं विचिन्त्य परिव्राजकेनोक्तम् – 'कारणं चाऽत्र धनबाहुल्यमेव भविष्यति। यतः –

अनुवाद : इस प्रकार वृद्ध पति को अपनी युवती पत्नी द्वारा आलिंगन किया जाता हुआ देखकर दैवात् उसी जगह खड़ी हुई एक कुट्टनी विचारने लगी कि सहसा यह इस वृद्ध पति से क्यों लिपट गई ?। जरूर इसमें कुछ कारण

है। इसके बाद उस कुट्टनी ने इसके कारण (उसके यार का उसके पास में उपस्थित रहना) को जान कर, उस लीलावती को डरा धमका कर उससे बहुत सा धन (रुपया) उस कुट्टिनी ने ऐंठ लिया (वसूल किया)।

इसीलिये मैं कहता हूँ कि 'एकाएक युवती स्त्री वृद्धपति का यदि आलिंगन करती है, तो इसमें अवश्य कुछ कारण है' इत्यादि।

इसी प्रकार इस चूहे के असाधारण बल का भी कोई कारण अवश्य ही होगा।

ऐसा कुछ देर सोचकर उस संन्यासी ने पुनः कहा, इसका कारण मुझे इसके पास अधिक धन का होना ही मालूम पड़ता है।

धनवान् बलवांल्लोके सर्वः सर्वत्र सर्वदा।
प्रभुत्वं धनमूलं हि राज्ञामप्युपजायते।।135।।

अनुवाद : संसार में सब धनवान् मनुष्य सदा और सब जगह बलवान् होता है और राजाओं की प्रभुता (बड़ाई) धन के कारण ही उत्पन्न होती है।135।

धनेन बलवांल्लोके धनाद् भवति पण्डितः।
पश्यैनं मूषिकं पापं स्व–जाति–समतां गतम्।।136।।

अनुवाद : संसार में (प्रत्येक मनुष्य) धन के द्वारा ही बलवान् होता है (और) धन के कारण से ही पण्डित (विद्वान्) होता है। धन–हीन हो जाने के कारण अपनी जाति वालों के अनुरूप बने हुए इस दुष्ट चूहे को देखो।136।

किंच –

अर्थेन हि विहीनस्य पुरुषस्याऽल्पमेधसः।
क्रियाः सर्वाविनश्यन्ति, ग्रीष्मे कुसरितो यथा।।137।।

अनुवाद : और भी – धनहीन (दरिद्र) हो जाने से अल्पबुद्धि वाले भाग्यहीन मनुष्य के सभी काम उसी प्रकार बिगड़े जाते हैं, जैसे गर्मी में सब छोटी छोटी नदियाँ सूख जाती हैं।137।

अपरंच –

यस्याऽर्थास्तस्य मित्राणि, यस्याऽर्थास्तस्य बान्धवाः।
यस्याऽर्थाः स पुमांल्लोके, यस्याऽर्थाः स च पण्डितः।।138।।

अनुवाद : और भी – जिसके पास धन है, उसी के सब लोग मित्र हैं, उसी के भाई बन्धु हैं, वही श्रेष्ठ पुरुष है और वही सच्चा पण्डित है।138।

अन्यच्च –

अपुत्रस्य गृहं शून्यं सन्मित्ररहितस्य च।
मूर्खस्य च दिशः शून्याः सर्वशून्या दरिद्रता।।139।।

अनुवाद : और भी – पुत्रहीन तथा सच्चे मित्र से रहित मनुष्य का घर सूना रहता है। मूर्ख के लिए सभी दिशाएं सूनी हैं अर्थात् मूर्ख को कहीं सम्मान नहीं मिलता। निर्धनता तो सभी अभावों का स्थान है अर्थात् दरिद्र के लिए सारा ब्रह्माण्ड ही सूना है। (अतः धन का अभाव शेष सब अभावों से अधिक दुःखदायी है)।139।

दारिद्र्यान्मरणाद्वाऽपि दारिद्र्यमवरं स्मृतम्।
अल्पक्लेशेन मरणं दारिद्र्यमतिदुः सहम्।।140।।

अनुवाद : दरिद्रता या मरण से (तुलना करने पर) दरिद्रता घटिया कही गई है। (क्योंकि) मरण अल्प क्लेश से होता है लेकिन दरिद्रता अति दुःख से सहन होती है।140।

अन्यच्च –

तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव।
अर्थोष्मणा विरहित पुरुषः स एव अन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्।।141।।
एतत्सर्वमाकर्ण्य मयाऽलोचितं – 'ममाऽत्रावस्थानमयुक्तमिदानीम्'।

अनुवाद : जो अपने कार्य में समर्थ हैं वे ही इन्द्रियाँ हैं, वही नाम है, जो कुण्ठित नहीं है वही बुद्धि है, वही वचन है। परन्तु धन की गर्मी से रहित (धनहीन) वही पुरुष, क्षणभर में दूसरा ही (कहाँ से कहाँ) हो जाता है यही विचित्र (लगता है)।141।

यह सुनकर मैंने विचार किया – 'मेरा यहाँ ठहरना इस समय उचित नहीं है।' वैसा ही कहा है –

यतः –

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च।
वंचनं चापमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत्।।142।।

अनुवाद : बुद्धिमान् मनुष्य अपने धन का नाश, मन का दुःख, अपने घर के दुराचरण, किसी दूसरे से स्वयं ठगा जाना और अपमानित होना – इन (पाँचों) को कभी न प्रकट करे।142।

अपि च –

आयुर्वित्तं, गृहच्छिद्रं, मन्त्र–मैथुन–भेषजम्।
तपो, दानाऽपमानंच नव गोप्यानि यत्नतः।।143।।

अनुवाद : और भी – आयु, धन, गृह का कलंक, मन्त्र, मैथुन, औषध, तप, दान और अपमान, इन नौ बातों को सदा बहुत सावधानी से छिपाना चाहिए।143।

तथा चोक्तम् –

अत्यन्तविमुखे दैवे व्यर्थे यत्ने च पौरुषे।
मनस्विनो दरिद्रस्य वनादन्यत्कुतः सुखम्।।144।।

अनुवाद : भाग्य के अत्यन्त विपरीत हो जाने पर तथा पुरुषार्थ और उद्योग भी व्यर्थ होने पर मनस्वी दरिद्र का वन से अतिरिक्त सुख कहाँ है ?।144।

अन्यच्च –

मनस्वी म्रियते कामं कार्पण्यं न तु गच्छति।
अपि निर्वाणमायाति नाऽनलो याति शीतताम्।।145।।

अनुवाद : मनस्वी स्वेच्छो से मर जाता है परन्तु कृपणता (दीनभाव) को नहीं चाहता है। अग्नि भले ही बुझ जाती है लेकिन शीतलता को प्राप्त नहीं होती है।145।

कुसुमस्तवकस्येव द्वे वृत्ती तु मनस्विनः।
सर्वेषां मूर्ध्नि वा तिष्ठद्विशीर्येत वनेऽथवा।।146।।

अनुवाद : फूल के गुच्छे के समान विचारशील (स्वाभिमानी) मनुष्य की दो ही कार्य के अवस्थाएं होती हैं। वह या तो सबसे सिर पर रहे या वन में क्षीण हो जाए।146।

जिस प्रकार पुष्पगुच्छ की दो स्थितियाँ होती हैं – वह या तो लोक में आ कर किसी देवता या महापुरुष के मस्तक पर चढ़ता है अथवा पुष्पोद्यान में ही खिल कर झड़ जाता है। इसी प्रकार विचारशील पुरुष या तो संसार में सर्वप्रधान होकर रहता है या वन में जाकर नष्ट हो जाता है। बीच की स्थिति में रह कर किसी प्रकार की दीनता नहीं दिखाता।

वरं विभवहीनेन प्राणैः सन्तर्पितोऽनलः।
नोपचारपरिभ्रष्टः कृपणः प्रार्थ्यतो जनः।।147।।

अनुवाद : विभव हीन द्वारा अपने प्राणों से अग्नि को तृप्त करना अच्छा है परन्तु सेवा – सत्कार हीन कृपण जन से प्रार्थना करना अच्छा नहीं है।147।

दारिद्रयात् ध्रियमेति ह्रीपरिगतः सत्वात् परिभ्रश्यते।
निःसत्वः परिभूयते परिभवान्निर्वेदमापद्यते।
निर्विण्णः शुचमेति शोकनिहतो बुद्धया परित्यज्यते
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निर्धनता सर्वापदामास्पदम्।।148।।

अनुवाद : गरीबी से लज्जा प्राप्त होती है, लज्जाशील का पराक्रम (सत्व) नष्ट हो जाता है। पराक्रम नष्ट होने से (बलहीन) अपमानित होता है। अपमान होने से दुःख प्राप्त होता है। दुःख से शोक प्राप्त होता है, शोक से मारा गया बुद्धिहीन हो जाता है। बुद्धिहीन का नाश हो जाता है। ओह ! निर्धनता सब मुसीबतों का स्थान है।148।

किंच –

वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतं
वरं क्लैब्धं पुंसां न च परकलत्राभिगमनम्।
वरं प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येष्वभिरूचिः
वरं भिक्षाशित्वं न च परधनास्वादनसुखम्।।149।।

अनुवाद : और भी – मौन रहना अच्छा है किन्तु झूठ कहना उचित नहीं है। मनुष्यों का नपुंसक होना अच्छा है, किन्तु पर–स्त्री के साथ गमन (संभोग) करना अच्छा नहीं है। मर जाना अच्छा है, किन्तु चुगली की बातों (पिशुन वाक्य) में रूचि लेना अच्छा नहीं। भीख मांग कर खाना (अशित्व) अच्छा है, किन्तु दूसरे के धन से स्वादिष्ट भोजन का सुख अच्छा नहीं।149।

वरं शून्या शाला, न च खलु वरो दुष्टवृषभो,
वरं वेश्या पत्नी, न पुनरविनीता कुलवधूः।
वरं वासोऽरण्ये, न पुनरविवेकाधिपपुरे,
वरं प्राणत्यागो, न पुनरधमानामुपगमः।।150।।

अनुवाद : और भी – गोशाला का सूना रहना अच्छा है, परन्तु उनमें दुष्ट बैल रखना अच्छा नहीं है। वेश्या को पत्नी रूप में रख लेना अच्छा है, परन्तु कुलीन स्त्री यदि दुश्चरित्रा हो, तो वह अच्छी नहीं। वन में रहना अच्छा है, परन्तु अविवेकी राजा के राज्य में रहना अच्छा नहीं। प्राण का त्याग कर देना कहीं अच्छा है, परन्तु नीचों की सेवा और उनका संग–साथ कभी अच्छा नहीं है।150।

सेवेव मानमखिलं ज्योत्स्नेव तमो जरेव लावण्यम्।
हरिहरकथेव दुरितं गुणशतमप्यर्थिता हरति।।151।।

अनुवाद : जैसे सेवा सारे अभिमान को हर लेती है, चाँदनी अंधेरे को, बुढ़ापा सुन्दरता को, विष्णु और शिव की कथा पापों को हरती है, वैसे ही याचना (मांगना) सैंकड़ों गुणों को हर लेती हैं।151।

पल्लवग्राहि पाण्डित्यं, क्रयक्रीतंच मैथुनम्।
भोजनंच पराऽधीनं, तिस्रः पुंसां विडम्बनाः।।152।।

अनुवाद : क्योंकि – पल्लवग्राही पाण्डित्य (थोड़ा–थोड़ा सब कुछ पढ़ना, परन्तु किसी विषय को पूरा पूरा न जानना), द्रव्य देकर मैथुन करना, दूसरे के अधीन होकर पेट पालना (भोजन करना) ये तीनों बातें तो अत्यन्त कष्ट देने वाली और उपहासास्पद हैं अर्थात् निस्सार (व्यर्थ) ही हैं।152।

अन्यच्च –

रोगी चिरप्रवासी परान्नभोजी परावसथशायी।
यज्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सोऽस्य विश्रामः।।153।।

अनुवाद : रोगी, लम्बे अर्से तक परदेश में रहने वाला, दूसरे का अन्न खाने वाला, दूसरे के घर में सोने वाला जो जीवन जीता है, वह मरण है और जो मरण है वह विश्राम है।

ऐसे विचार कर भी मैंने लोभ से फिर उस संन्यासी के अन्न ग्रहण करने के लिए आग्रह किया।153।

लोभेन बुद्धिश्चलति लोभो जनयते तृषाम्।

तृषार्तो दुःखमाप्नोति परत्रेह च मानवः।।154।।

अनुवाद : और जैसे कहा है – लोभ से बुद्धि चंचल हो जाती है। लोभ तृष्णा भी पैदा करता है। तृष्णा से पीड़ित मनुष्य इस लोक में और परलोक में दुःख पाता है।154।

धनलुब्धो ह्यसन्तुष्टोऽनियतात्माऽजितेन्द्रियः।

सर्वा एवापदस्तस्य यस्य तुष्टं न मानसम्।।155।।

अनुवाद : जिसका मन सन्तुष्ट नहीं है, उसे ही सारी विपत्तियाँ आती हैं। क्योंकि वह धन का लालची, असन्तुष्ट, अपने को वश में न रहने वाला और अजितेन्द्रिय हो जाता है।155।

सर्वाः सम्पत्तयस्तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम्।
उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतेव भूः।।156।।

अनुवाद : जिसका मन सन्तुष्ट है, उसी की सारी सम्पत्तियाँ भी हैं। जैसे जूते पहन कर चलने वाले पुरुष को समस्त भूतल चमड़े से ढका हुआ प्रतीत होता है।156।

सन्तोषामृततृप्तानां यत् सुखं शान्तचेतसाम्।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चैव च धावताम्।।157।।

अनुवाद : और दूसरे – सन्तोष रूपी अमृत से तृप्त हुए, शान्त चित्त वालों को जो सुख है, वह सुख इधर–उधर भटकने वाले धन के लोभियों को कहां प्राप्त होता है।157।

किंच–

तेनाऽधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम्।
येनाऽऽशाः पृष्ठतः कृत्वा नैराश्यमवलम्बितम्।।158।।

अनुवाद : जिसने आशाओं को त्याग कर निराशा का अवलम्बन किया है उसने सब (शास्त्र) पढ़ लिया, सब सुन लिया और सभी कर्मों को कर लिया।158।

असेवितेश्वरद्वारमदृष्टविरहव्यथम्।
अनुक्तक्लीबवचनं धन्यं कस्यापि जीवनम्।।159।।

अनुवाद : और भी – जिसने धनवान् के दरवाजे की सेवा नहीं की अर्थात् उसके पास कभी धन नहीं मांगा, जिसने विरह के कष्ट को नहीं देखा और कभी दीन वचन मुख से नहीं कहा, ऐसे किसी भी व्यक्ति का जीना धन्य है।159।

यतः –

न योजनशतं दूरं वाह्यमानस्य तृष्णया।
सन्तुष्टस्टय करप्राप्तेरप्यर्थे भवति नादरः।।160।।

अनुवाद : क्योंकि – तृष्णा – धन के द्वारा घुमाए गए मनुष्य के लिये सौ यौजन भी दूर है ? अर्थात् दूर नहीं है। और सन्तोषी के हाथ में धन के प्राप्त हो जाने पर भी उसका धन के प्रति आदर नहीं होता अर्थात् वह धन को कुछ नहीं समझता।160।

तदत्राऽवस्थोचितकार्यपरिच्छेदः श्रेयान्।

अनुवाद : इसलिए इस विषय में स्थिति के अनुसार कार्य का निश्चय करना ही उचित (कल्याणकारी) है।

को धर्मो भूतदया किं सौख्यमरोगिता जगति जन्तोः।
कः स्नेहः सद्भावः किं पाण्डित्यं परिच्छेदः।।161।।

अनुवाद : संसार में लोगों का धर्म क्या है ? जीवों पर दया करना। सुख क्या है ? स्वस्थ रहना। स्नेह क्या है ? सद्भाव पण्डिताई क्या है ? विवेकपूर्ण काम करना।161।

तथा च –

परिच्छेदो हि पाण्डित्यं यदाऽऽपन्ना विपत्तयः।
अपरिच्छेदकर्तृणां विपदः स्युः पदे पदे।।162।।

अनुवाद : और भी – विपत्ति आने पर, विचार कर कार्य करना ही पाण्डित्य (बुद्धिमत्ता) है। बिना विचारे काम करने वाले प्राणियों पर तो पद–पद में विपत्तियाँ आती हैं।162।

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्राम जनपदस्यार्थे स्वात्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्।।163।।

अनुवाद : कुल को बचाने के लिए एक को छोड़ दें। गाँव भर के लिये कुल को छोड़ दें। देश के लिये गाँव को छोड़ दें और अपने लिये (सारी) पृथ्वी को छोड़ दें।163।

अपरंच –

पानीयं वा निरायासं स्वाद्वन्नं वा भयोत्तरम्।
विचार्य्य खलु पश्यामि तत् सुखं यत्र निर्वृत्तिः।।164।।
इत्यालोच्याऽहं निर्जनवनमागतः।

अनुवाद : बिना परिश्रम का पानी है लेकिन स्वादु अन्न के पीछे भय है, परन्तु (इन दोनों की प्राप्ति में) जहाँ निवृत्ति (इच्छा का अभाव) है वह (सबसे बढ़िया) सुख है, इसे अच्छी तरह विचार कर देख रहा हूँ।164।

ऐसा विचार कर मैं निर्जन वन में आ गया।

यतः –

वनं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं
द्रुमालयं पक्वफलाम्बुभोजनम्।
तृणाति शय्या परिधानवल्कलं
न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम्।।165।।

अनुवाद : बाघ और हाथियों से भरे इस वन में रहना, वृक्ष के नीचे रहना, पके हुए कन्द –मूल फल और जल का पान करना तथा घास पर सोना और छाल के वस्त्र पहनना अच्छा है, किन्तु बन्धुओं के बीच में धन हीन होकर जीना अच्छा नहीं है।165।

ततः अस्मत्पुण्योदयादनेन मित्रेणाहं स्नेहानुवृत्तऽनुगृहीतः। अधुना च पुण्यपरम्परया भवदाश्रयः स्वर्ग एव मया प्राप्तः।

अनुवाद : इसके बाद हमारे पुण्यों के उद से इस मित्र (लघुपतनक) ने मुझे स्नेहपूर्वक अनुगृहीत किया। इस समय भी पुण्यों की परम्परा से आपका (कछुआ) का आश्रय (स्थान) जैसे स्वर्ग ही हो मैंने प्राप्त कर लिया है।

संसारविषवृक्षस्य द्वे एव रसवत् फले।
काव्यामृतरसास्वदः संगमः सुजनैः सह।।166।।

अनुवाद : क्योंकि – संसार रूपी जहरीले वृक्ष के दो ही रस युक्त फल हैं अर्थात् एक तो काव्य रूपी अमृत के रस का आनन्द और दूसरा सज्जनों के साथ संगति।166।

युष्माभिरतिसंचयः कृतः। तस्यायं दोषः, शृणु –

अनुवाद : तुमने बहुत अधिक संचय कर लिया था। उसी का दोष है।

सुनो –

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम्।
तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाम्भसाम्।।168।।

अनुवाद : जैसे तालाब के अन्दर विद्यमान् जलों का बाहर निकालना (प्रवाह) उसकी शुद्धि कारण है, वैसे ही संचित (कमाये हुए) धनों का दान देना ही उन धनों की रक्षा है।168।

अन्यच्च –

यदधोऽधः क्षितौ वित्तं निचखान मितम्पचः।
तदधोनिलयं गन्तुं चक्रे पन्थानमग्रत।।169।।

अनुवाद : कंजूस ने पृथ्वी में खूब गहरे जो धन गाड़ दिया, वह गड़ा हुआ धन आगे से ही पातालपुरी में (या नरक में) जाने के लिए अपना रास्ता बना लिया।169।

निजसौख्यं निरुन्धानो यो धनार्जनमिच्छति।
परार्थभारवाहीव क्लेशस्यैव हि भाजनम्।।170।।

अनुवाद : और जो मनुष्य अपने सुख को रोक (छोड़) कर धन इकट्ठा करने की इच्छा करता है, वह दूसरों के लिए भार ढोने वाले कुली के समान कष्ट का ही पात्र बनता है।170।

तथा चोक्तम् –

दानोपभोगहीनेन धनेन धनिनो यदि।
भवामः किं न तेनैव धनेन धनियना वयम्।।171।।

अनुवाद : दान या उपयोग इन दोनों से रहित धन से यदि (लोग) धनी होते हैं तो उसी धन से हम सब धनी क्यों नहीं होवें ?।171।

अन्यच्च –

दानोपभोगहीनाश्च दिवसा यान्ति यस्य वै।
स कर्मकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति।।172।

अनुवाद : और जिस मनुष्य के दिन दान और उपभोग के बिना निष्फल ही बीतते जाते हैं, वह मनुष्य लोहार की भट्ठी की तरह साँस लेता हुआ भी मरे हुए के समान ही है।172।

यतः –

धनेन किं ? यो न ददाति नाऽश्नुते
बलेन किं ? यो न रिपून् न बाधते।
श्रुतेन किं ? यो न च धर्ममाचरेत्
किमात्मना ? यो न जितेन्द्रियो भवेत्।।173।।

अनुवाद : जो न देता है और खाता (उपयोग ही करता) है, उसके धन से क्या फल है ? जो शत्रुओं को पीड़ित नहीं करता है उसके बल से क्या लाभ ? जो धर्म का आचरण नहीं करता है, उसके शास्त्र–श्रवण से क्या फल है ? जो इन्द्रियों को वश में करने वाला नहीं है, उसके शरीर धारण से क्या फल है ?।173।

अपि च –

असम्भोगेन सामान्यं कृपणस्य धनं परैः।
अस्येदमिति सम्बन्धो हानौ दुःखेन गम्यते।।174।।

अनुवाद : कृपण का धन उपयोग न होने से दूसरों के (धन के) समान है। परन्तु (धन की) हानि होने पर (चौरादि के द्वारा धन का नाश होने पर) 'इसका यह धन है' ऐसा सम्बन्ध जाना जाता है।174।

न देवाय न विप्राय न बन्धुभ्यो न चात्मने।
कृपणस्य धनं याति वह्नितस्करपार्थिवैः।।175।।

अनुवाद : जो व्यक्ति धन को न देवता के लिए प्रयोग में लाता है, न ब्राह्मण के लिए, न भाई–बन्धुओं के लिये, न अपने लिये काम में लाता है, उस कंजूस का धन तो आग में जल जाता है, चोर के पास चला जाता है या राजा छीन लेता है।175।

दानं, भोगो, नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति, न भुंक्ते, तस्य तृतीया गतिर्भवति।।176।।

अनुवाद : और भी – धन की तीन तरह की गति होती हैं, 1. दान, 2. भोग और 3. नाश। परन्तु जो कंजूस मनुष्य न देता है, न खाता है और उसके धन की तीसरी ही गति (नाश) होती है अर्थात् उसका वह धन नष्ट ही हो जाता है।176।

तथा चोक्तम् –

दानं प्रियवाक्सहितं ज्ञानमगर्वं क्षमाऽन्वितं शौर्यम्।
वित्तं त्यागनियुक्तं, दुर्लभमेतच्चतुष्टयं लोके।।177।।

अनुवाद : प्रियवाणी ये युक्त दान, गर्व रहित ज्ञान, सहनशीलतायुक्त वीरता, और दानसहित धन, ये चार प्रकार के कल्याण लोक में दुर्लभ हैं।177।

उक्तं च –

कर्त्तव्यः संचयो नित्यं कर्त्तव्यो नातिव्योसंचयः।
पश्य संचयशीलोऽसौ धनुषा जम्बुको हतः।।178।।

अनुवाद : और कहा भी है – (धन का) संचय करना चाहिये, किन्तु अति संचय नहीं करना चाहिए। देखो, अधिक संचय करने वाला गीदड़ धनुष के द्वारा मारा गया।178।

कथा 6

संचयशीलजम्बुककथा

असीत् कल्याणकटक वास्तव्यो भैरवो नाम व्याधः। स चैकदा मांसलुब्धो धनुरादाय मृगमन्विष्यमाणो विन्ध्याटवीं गतवान्। ततस्तेन व्यापादितं मृगमादाय गच्छता घोराकृतिः शूकरो दृष्टः। तेन व्याधेन मृगं भूमौ निधाय शूकरः शरेणाहतः। शूकरेणापि घनघोरगर्जनं कृत्वा स व्याधो मृष्कदेशे हतः सन्, छिन्नद्रुम इव भूमौ निपपात।

अनुवाद : कल्याण–कटक (बस्ती) में रहने वाला भैरव नाम का शिकारी था। वह एक दिन मृग को खोजता–खोजता विन्ध्याचल के जंगल की ओर गया। तब उस मारे हुए मृग को लेकर जाते हुए शिकारी ने भयंकर सुअर देखा। फिर उस शिकारी ने मृग को जमीन पर रखकर सूअर को बाण से मारा। सूअर द्वारा भी भयंकर गर्जना करके पेट में टक्कर मारा गया वह शिकारी, कटे हुए पेड़ के समान भूमि पर गिर पड़ा।

तथाचोक्तम् –

जलमग्निर्विषं शस्त्रं क्षुत् व्याधिः पतनं गिरेः।
निमित्तं किंचिदासाद्य देही प्राणैर्विमुच्यते।।179।।

अनुवाद : क्योंकि – जल, आग, विष, शस्त्र, बीमारी, पहाड़ से गिरना, इनमें से किसी– न–किसी बहाने (निमित्त) को पा कर प्राणी प्राणों से छूट जाता है।179।

अथ तयोः पादास्फालनेन सर्पोपि मृतः। अथानन्तरं दीर्घरवो नाम जम्बुकः परिभ्रमन्नाहारार्थी तान् मृतान् मृग–व्याघ्र–सर्प शूकरानपश्यत्। अचिन्तयच्च अहो ! अद्य महद्भोज्यं मे समुपस्थितम्।

अनुवाद : उसके बाद उन दोनों के पैरों की रगड़ से एक सांप भी मर गया। तदनन्तर दीर्घरव नाम के गीदड़ ने भोजन के लिए घूमते हुए मरे हुए उन मृग, शिकारी, सांप और सूअर को देखा। और उसने सोचा ओह ! आज तो मुझे बड़ा भोजन मिल गया है।

अथवा

अचिन्तितानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनाम्।
सुखान्यपि तथा मन्ये दैवमत्रातिरिच्यते।।180।।

अनुवाद : प्राणियों को जिस प्रकार अचिन्तित दुःख मिलते हैं उसी प्रकार सुख भी प्राप्त होते हैं। परन्तु इसमें भाग्य ही सबसे बलवान् है ऐसा मैं (गीदड़) मानता हूँ अर्थात् भाग्य से ही मुझे इतना बड़ा भोजन मिला है।180।

मासमेकं नरो याति द्वौ मासौ मृगशूकरौ।
अहिरेकं दिनं याति अद्य भक्ष्यो धनुर्गुणः।।181।।

अनुवाद : मनुष्य (व्याध) एक मास तक (भोजन) चलेगा, दो मास तक मृग तथा सूअर मांग चलेंगे। साँप (मांस भी) का दिन चलेगा। आज धनुष की डोरी खानी चाहिए।152।

ततः प्रथमबुभुक्षायामिदं निःस्वादु कोदण्डलग्नं स्नायुबन्धनं खादामि। इत्युक्त्वा तथा कृते सति छिन्ने स्नायुबन्धने उत्पतितेन धनुषा हृदि निर्भिन्नः स दीर्घरावः पंचत्वं गतः। अतोहं ब्रवीमि–'कर्त्तव्यः संचयो नित्यम्' इत्यादि।

अनुवाद : जब पहली भूख में यह स्वाद रहित धनुष पर लगा हुआ तांत का बन्धन डोरी खाता हूँ। यह कह कर वैसा करने पर डोरी के कटने पर टूटते हुए धनुष से छाती फटने से वह दीर्घरव गीदड़ मर गया। इसलिए मैं (मन्थर) कहता हूँ – संचय सदा करना चाहिए इत्यादि।

तत् सखे ! सर्वदा त्वया सोत्साहेन भवितव्यम्।

अनुवाद : तो मित्र ! चूहे, अब तुम्हें सदा उत्साह से रहना चाहिये।

तथा च –

यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनम्।
अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि।।182।।

अनुवाद : धनी जो देता है तथा जो उपयोग करता है धनी का वही अपना धन है। (नहीं तो) दूसरे लोग मरे हुए धनी के धन तथा स्त्री से खेलते हैं (आनंद भोगते हैं)।182।

किंच –

यद्ददासि विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नासि दिने दिने।
तत्ते वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षसि।।183।।

अनुवाद : प्रतिदिन सुपात्रों के लिए जो धन देते हो और खाते हो (उपयोग करते हो), मैं वह धन तुम्हारा मानता हूँ। बाकी धन तो किसी अन्य के लिए रक्षा करते (बचाते) हो। जाने दो, अब बीती हुई बात की चर्चा करने से क्या होता है।183।

यतः –

नाप्राप्यमभिवांछन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्।
आपत्स्वपि न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः।।184।।

अनुवाद : पण्डित बुद्धि वाले (भले–बुरे का विचार रखने वाले) मनुष्य अलभ्य वस्तु को नहीं चाहते, विनष्ट वस्तु को (लेकर) शोक नहीं करते तथा बड़ी–बड़ी आपत्तियों में भी मोहित नहीं होते हैं।155।

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः
यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।
सुचन्तितं चौषधमातुराणां
न नाममात्रेण करोत्यरोगम्।।185।।

अनुवाद : क्योंकि – शास्त्र पढ़ कर भी मनुष्य मूर्ख रहते हैं, परन्तु जो क्रियाशील हैं वहीं सच्चा विद्वान् है। जैसे अच्छी प्रकार से सोची हुई (निर्णीत) दवाई भी रोगियों को केवल नाम लेने से ही अच्छा नहीं करती।185।

अन्यच्च –

न स्वल्पमप्यध्यवसाय भीरोः
करोति विल्सान विन्धि गुंणं हि।
अन्धस्य किं हस्ततलस्थितोपि
प्रकाशयत्यर्थमिह प्रदीपः।।186।।

अनुवाद : और दूसरे – पराक्रम से डरने वाले मनुष्य को विज्ञान (शास्त्र) के नियम (विधि) कोई (थोड़ा) भी लाभ नहीं करते। जैसे इस जगत् में हथेली पर रखा हुआ भी दीपक क्या अंधे को वस्तु दिखा सकता है ? अर्थात् नहीं।186।

तदत्र सखे ! दशाविशेषे शान्तिः करणीया। एतदप्यतिकष्टं त्वया न मन्तव्यम्। यतः –

अनुवाद : इसलिए हे मित्र ! इसको समय विशेष का परिणाम समझ कर चित्त को शान्त करना चाहिये और इस कष्ट (विपत्ति) को भी विशेष दुःखप्रद नहीं समझना चाहिये।

राजा, कुलवधूर्विप्रा, मन्त्रिणश्च, पयोधराः।
स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः, केशा, नखा, नराः।।187।।

अनुवाद : क्योंकि – 'राजा, कुलीन स्त्री, ब्राह्मण, मन्त्री, स्त्रियों के स्तन, दाँत, केश, नख और मनुष्य – ये सब अपने स्थान से गिर जाने पर शोभा नहीं देते हैं।187।

स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते, दन्ताः, केशा, नखा, नराः।
इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानं न परित्यजेत्।।188।।

अनुवाद : अपने स्थान से भ्रष्ट हुए – दाँत, केश, नख और पुरुष ये सुशोभित नहीं होते हैं। इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह अपने स्थान को कभी न छोड़ें।188।

किन्तु कापुरुषवचनमेतत्।

अनुवाद : परन्तु ये दोनों ही कायरों के वाक्य हैं।

यतः –

स्थानमुत्सृज्य गच्छन्ति, सिंहाः, सत्पुरुषा, गजाः।
तत्रैव निधनं यान्ति, काकाः, कापुरुषा, मृगाः।।189।।

अनुवाद : क्योंकि – सिंह, गुणी पुरुष, हाथी – ये अपने स्थानों को छोड़कर भी अन्यत्र जाकर प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। परन्तु कौवा, कापुरुष, हरिण – ये एक जगह रहकर ही जन्म बिता देते हैं और वहीं मर भी जाते हैं।189।

को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः, को वा विदेशस्तथा,
यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम्।
यद्दंष्ट्रानखलांगुलप्रहरणः सिंहो वनं गाहते,
तस्मिन्नेवहतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णां छिनत्त्यात्मनः।।190।।

अनुवाद : और उत्साही वीर पुरुष के लिए स्वदेश और परदेश क्या है। वह तो जहाँ भी जाता है, उसी जगह को अपने बाहुबल से अपने अधीन कर लेता है। क्योंकि दाँत, नख, पोंछ ही जिसके साधन (शस्त्र) हैं, ऐसा सिंह – जिस वन में जाता है, उसी में हाथियों का शिकार कर के ही अपनी क्षुधा शान्त करता है।190।

अपरच्च –

निपानमिव मण्डूकाः सरः पूर्णमिवाण्डजाः।
सोद्योगं नरमायन्ति विवशाः सर्वसम्पदः।।191।।

अनुवाद : मेंढक जैसे जलाशय की ओर जाते हैं, पक्षिगण जैसे जल से भरे हुए सरोवर की ओर जाते हैं, उसी तरह सारी सम्पत्तियाँ विवश होकर उद्योगी पुरुष के पास चली जाती हैं।191।

सुखमापतितं सेव्यं दुःखमापतितं तथा।
चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च।।192।।

अनुवाद : और दूसरे – आये हुए सुख को और आये दुःख को भोगना चाहिए। क्योंकि दुःख और सुख गाड़ी के पहिये के समान घूमते रहते हैं अर्थात् कभी दुःख और कभी सुख आते–जाते हैं। इन दोनों को सहन करना चाहिए।192।

अन्यच्च –

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रिया विधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढ़सौहृदं च लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः।।193।।

अनुवाद : और दूसरे – उत्साह से युक्त, आलस्य रहित, कार्य प्रणाली को जानने वाले, जुआ आदि व्यसन से रहित, शूरवीर, उपकार मानने वाले और दृढ़ मित्रता वाले पुरुष के पास रहने के लिए लक्ष्मी अपने आप ही चली जाती है।193।

विशेषतश्च –

विनाऽप्यर्थैर्वीरः स्पृशति बहुमानोन्नतिपदं
समायुक्तोऽप्यर्थैः परिभवपदं याति कृपणः।
स्वभावादुद्भूतां गुणसमुदयावाप्तिविषयां
द्युतिं सैहीं किं श्वा घृतकनकमालोपि लभते।।194।।

अनुवाद : और विशेष कर – वीर पुरुष धन के बिना ही बहुत मान और उन्नति को प्राप्त कर लेता है और कंजूस धनयुक्त होने पर भी अपमान प्राप्त करता है। जैसे कुत्ता सोने की माला पहन कर भी स्वाभाविक उत्पन्न होने वाली तथा सम्पूर्ण शौर्यादि गुणों की प्राप्ति से प्रकट होने वाली तथा सम्पूर्ण शौर्यादि गुणों की प्राप्ति से प्रकट होने वाली सिंह की शोभा को कैसे पा सकता है ? अर्थात् नहीं पा सकता है।194।

किंच –

धनवानिति हि मदस्ते किं गतविभवो विषादमुपयासि।
करनिहतकनदुकसमाः पातोत्पाता मनुष्याणाम्।।195।।

अनुवाद : 'मैं धनवान् हूँ' ऐसा तुम्हारा गर्व था अब धन के चले जाने पर (तुम मन में) विषाद क्यों लाते हो। क्योंकि मनुष्यों का पतन और उत्थान हाथ से उछाली गई गेंद के समान हैं। (जैसे गेंद कभी जमीन पर गिरती है फिर जमीन से ऊपर की ओर उछलती है, इसी तरह अवनति और उन्नति हैं।)।195।

अपरंच –

अभ्रच्छाया, खलप्रीतिर्नवसस्यानि, योषितः।
किंचित्कालोपभोग्यानि, यौवनानि, धनानि च।।196।।

अनुवाद : और भी – मेघों की छाया, दुर्जनों की प्रीति, नया अन्न, कामिनी युवती स्त्री, यौवन और धन, ये सब थोड़े ही काल तक भोगने लायक रहते हैं, क्योंकि – वे सदा एक से नहीं रहते हैं।196।

वृत्यर्थं नातिचेष्टेत सा हि धात्रैव निर्मिता।
गर्भादुत्पतिते जन्तौ मातुः प्रस्त्रवतः स्तनौ।।197।।

अनुवाद : आजीविका के लिए बहुत प्रयत्न नहीं करना चाहिए, वह तो भाग्य (विधाता) ने ही बना दी है। क्योंकि प्राणी के गर्भ से निकलते ही माता के स्तनों से दूध बहने लगता है।197।

येन शुक्लीकृताः हंसा शुकाश्च हरितीकृताः।
मयूराश्चित्रिता येन स ते वृत्तिं विधास्यति।।198।।

अनुवाद : और भी है मित्र ! – जिस विधाता ने हंसों को सफेद बनाया, तोतों को हरा बनाया और मोरों को रंग–बिरंगा बनाया है, वही विधाता तुम्हारी जीविका चलाएगा।।198।

जनयन्त्यर्जने दुःखं तापयन्ति विपत्तिषु।
मोहयन्ति च सम्पत्तौ कथमर्थाः सुखावहाः।।199।।

अनुवाद : धन को कमाने में भी कष्ट होता है, चोरादि के हर लेने से भी कष्ट होता है और अधिक बढ़ने से ये धन मदांध कर देते हैं। तो ऐसे धन किस स्थिति में सुखदायक है ? अर्थात् धन किसी भी अवस्था में सुखदायी नहीं है।199।

अपरंच –

धर्मार्थं यस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता।
प्रक्षालनाद् हि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम्।।200।।

अनुवाद : (अधर्म करके) फिर – धर्म ग्रहण करने के लिए जिसको धन की इच्छा है उसको धन प्राप्ति की लालसा न करना ही अच्छा है। जैसे कीचड़ में प्रथम हाथ डुबा कर फिर कीचड़ में धोने की अपेक्षा उसका दूर से स्पर्श न करना ही अच्छा लगता है।200।

यतः –

यथा ह्यामिषमाकाशे पक्षिभिः श्वापदैर्भुवि।
भक्ष्यते सलिले नक्रैस्तथा सर्वत्र वित्तवान्।।201।।

अनुवाद : जिस प्रकार मांस आकाश में पक्षियों से, पृथ्वी पर हिंसक जन्तुओं (कुत्ता, सिंह इत्यादि) से और जल में मछलियों से खाया जाता है, उसी प्रकार धनवान् सब जगह खाया (लूटा) जाता है।201।

अन्यच्च –

राजतः सलिलादग्नेश्चोरतः स्वजनादपि।
भयमर्थवतां नित्यं मृत्योः प्राणभृतामिव।।202।।

अनुवाद : प्राणधारियों की मृत्यु की तरह धनियों को राजा से, जल से, अग्नि से, चोर से तथा अपने सगे–सम्बन्धियों से नित्य भय रहता है।202।

यथा हि –

जन्मनि क्लेशबहुले किन्नु दुःखमतः परम्।
इच्छासम्पद् यतो नास्ति यच्चेच्छा न निवर्तते।।203।।

अनुवाद : क्योंकि नाना प्रकार के दुःखों से युक्त जीवन में इच्छानुसार सम्पत्ति प्राप्त नहीं होती है और इच्छा भी निवृत्त नहीं होती, तो इससे अधिक दुःख क्या है ?।203।

अन्यच्च भ्रातः ! शृणोतु –
धनं तावदसुलभं लब्धं कृच्छ्रेण रक्ष्यते।
लब्धनाशो यथा मृत्युस्तस्मादेतन्न चिन्तयेत्।।204।।

अनुवाद : और दूसरे – हे भाई, सुनो – पहले तो धन का मिलना कठिन है। मिलने पर उसकी रक्षा बड़े कष्ट से होती है और प्राप्त करने के बाद उसका नष्ट होना मृत्यु के समान कष्टदायी है। इसलिए इस धन प्राप्ति की चिन्ता नहीं करना चाहिए।204।

सा तृष्णा चेह परित्यज्य को दरिद्रः क ईश्वरः।
तस्याश्चेत् प्रसरो दत्तो दास्यंच शिरसि स्थितम्।।205।।

अनुवाद : यदि वह तृष्णा (धन की पिपासा) त्याग दी जाए तो फिर कौन दरिद्र है, और कौन धनी है ? यदि उस तृष्णा को बढ़ावा दिया तो सिर पर दासता दिया तो सिर पर दासता सवार हो गई (अर्थात् अपने को गुलामी की बेड़ियों से जकड़ लिया।)।।205।

यद्यदेव हि वांछेत ततो वांच्छा प्रवर्तते।
प्राप्त एवार्थतः सोऽर्थो यतो वांछा निवर्तते।।206।।
किं बहुना, विश्रम्भालापैः मयैर सहाऽत्र कालो नीयताम्।

अनुवाद : जिस–जिस वस्तु की इच्छा की जाती है उससे इच्छा बढ़ती ही जाती है और वास्तव में वही वस्तु प्राप्त हुई (समझो) जिस वस्तु से इच्छा निवृत्त हो जाती है।

अधिक कहने से क्या ? मेरे ही साथ विश्वास पूर्ण वचनों से यहाँ पर समय बिताइए।206।

यतः –

आमरणान्ताः प्रणयाः कोपास्त्क्षणभंगुराः।
परित्यागाश्च निःसंगा भवन्ति हि महात्मनाम्।।207।।

अनुवाद : महात्माओं के स्नेह मृत्यु पर्यन्त स्थिर होते हैं। क्रोध केवल क्षण मात्र रहते हैं और दान आदि स्वार्थ रहित होते हैं।207।

यतः –

सन्त एव सतां नित्यमापदुद्धरणक्षमाः।
गजानां पंकमग्नानां गजा एव धुरंधराः।।208।।

अनुवाद : क्योंकि – सज्जन ही सज्जनों की आपत्तियाँ सर्वदा दूर करने में समर्थ होते हैं। जैसे कीचड़ में फंसे हुए हाथियों के निकालने में हाथी ही समर्थ होते हैं।208।

गुणिनि गुणज्ञो रमते, नाऽगुणशीलस्य गुणिनि परितोप।
अलिरेति वनात्कमलं, नहि भेकस्त्वेकवासोऽपि।।209।।

अनुवाद : और गुणी के संग से गुणी को ही आनन्द होता है, निर्गुण को गुणी से सन्तोष कभी नहीं होता है। देखो, भ्रमर तो वन से चल कर भी कमल के पास आता है, परन्तु पास में ही रह कर भी मेढ़क कभी कमल के पास नहीं जाता।209।

श्लाघ्यः स एको भुवि मानवानां
स उत्तमः सत्पुरुषः स धन्यः।
यस्यार्थिनो वा शरणागता वा
नाशाभिभंगाद् विमुखा प्रयान्ति।।210।।

अनुवाद : पृथ्वी पर मनुष्यों में वही एक प्रशंसा के योग्य है, वही उत्तम सज्जन है और वही धन्य है, जिसके पास से याचक और शरणागत लोग निराश और विमुख होकर लौट नहीं जाते हैं।210।

तदेव ते स्वेच्छाहारविहारं कुर्वाणाः सन्तुष्टाः सुखं निवसन्ति स्म। अथ कदाचित् चित्रांगनामा मृगः केनापि त्रासितस्तत्रागत्य मिलितः। ततः पश्चादायान्तं मृगमवलोक्य भयं संचिन्त्य मन्थरो जलं प्रविष्टः मूषिकश्च विवरं गतः, का कोऽप्युड्डीय वृक्षमारूढः। ततो लघुपतनके न सुदूरं निरूप्य भयहेतुर्न कोऽप्यायातीत्यालोचितम्। पश्चात् तत् वचनादागत्य पुनः सर्वे मिलित्वा तत्रैवोपविष्टाः। मन्थरेणोक्तम् – भद्र, मृग ! स्वागतं ते, स्वेच्छयोद–काद्याहारोऽनुभूयताम्। अत्रावस्थानेन वनमिदं सनाथीक्रियताम्। चित्रांगो ब्रूते – लुब्धकत्रासितोऽहं भवतां शरणमागतः। ततश्च भवद्भिः सह सख्यमिच्छामि !? हिरण्यकोऽवदत् मित्रत्वं तावदस्माभिः सह भवताऽयत्नेन मिलितम्।

अनुवाद : इस प्रकार वे सब (कूर्मादि) अपनी इच्छा के अनुसार, आहार–विहार करते हुए संतुष्ट होकर सुखपूर्वक रहते थे। इसके बाद एक बार चित्रांग नाम का एक मृग किसी से डरा हुआ वहां आ उनसे मिला। फिर पीछे मृग का आता देख कर भय का विचार कर मन्थर तो पानी में चला गया और चूहा बिल में घुस गया। कौआ भी उड़ कर पेड़ पर बैठ गया। फिर लघुपतनक (कौवे) ने दूर से देखा कि भय का कोई कारण नहीं है। बाद में उसके कहने से आकर सब मिलकर वहां बैठ गये। मन्थर ने कहा – भद्र मृग ! तुम्हारा स्वागत है। अपनी इच्छा से पानी, भोजन आदि खाओ। और यहां रहकर इस वन को पवित्र करो। चित्रांग बोला – शिकारी के डर से मैं आप लोगों

की शरण में आया हूँ। आप के साथ मित्रता करना चाहता हूँ। हिरण्यक ने कहा – मित्रता तो हमारे साथ तुम्हारी बिना यत्न के ही हो गई है।

यतः –

> **लोभाद्वाऽथ भयाद्वाऽपि यस्त्यजेच्छरणागतम्।**
> **ब्रह्महत्यासमं तस्य पापमाहुर्मनीषिणः।।211।।**
> **हिरण्यकोऽप्यवदत्–मित्रत्वं तावदस्माभिः सह, अयत्नेन निष्पन्नं भवतः।**

अनुवाद : जो लोभ से अथवा भय से भी शरणागत को परित्याग दे, तो विद्वान् लोग उसको ब्रह्महत्या के समान पाप कहते हैं। हिरण्यक ने भी कहा – 'आपकी मित्रता तो हम सब के साथ बिना प्रयत्न के ही हो चुकी।211।

यतः –

> **औरसं कृतसम्बन्धं तथा वंशक्रमागतम्।**
> **रक्षितं व्यसनेभ्यश्च मित्रं ज्ञेयं चतुर्विधम्।।212।।**

अनुवाद : क्योंकि – मित्र चार प्रकार के समझने चाहिए – एक तो औरस (शरीर से उत्पन्न पुत्रादि), दूसरा विवाहादि सम्बन्ध वाले सम्बन्धी और तीसरा कुल परम्परा से चले आए हुए पड़ोसी आदि और चौथे वे जो आपत्तियों से बचाते हैं, ये चार मित्र हैं।212।

तदत्र भवता स्वगृहनिर्विशेषण स्थीयताम्। तच्छ्रुत्वा मृगः सानन्दो भूत्वा कृतस्वेच्छा –ऽऽहारः पानीयं पीत्वा जलासन्नवटतरुच्छायायामुपविष्टः।

अनुवाद : इसलिए यहाँ आप अपने घर के समान रहिए। इसे सुनकर मृग प्रसन्न होकर अपनी इच्छानुसार आहार लेकर (घास चर के) तथा पानी पीकर जल के समीप स्थित वट वृक्ष की छाया में बैठ गया।

यतः –

> **कूपोदकं, वटच्छाया, श्यामा स्त्री चेष्टकागृहम्।**
> **शीतकाले भवेदुष्णमुष्णकाले च शीतलम्।।213।।**

अनुवाद : क्योंकि – कुएँ का जल, वट की छाया, श्यामा (सोलह वर्ष की सुन्दरी युवती) स्त्री और ईंटों का घर, ये चारों वस्तुएँ शीतकाल में गर्म रहते हैं और गर्मी में ये ठण्डे रहते हैं।213।

अथ मन्थरो ब्रूते – 'सखे मृग । केने त्रासितोऽसि ? अस्मिन्निर्जने वने कदाचित् किं व्याधाः संचरन्ति ?' मृगेण उक्तम् – 'अस्ति कलिंगविषये रुक्मांगदो नाम नरपतिः, स च दिग्विजयव्यापारक्रमेण आगत्य चन्द्रभागा–नदीतीरे समावेशितकटको वर्तते, प्रातश्च तेनाऽत्रागत्य कर्पूरसरः समीपे भवितव्यम्' इति व्याधानां मुखात् किंवदन्ती श्रूयते, तदत्रापि प्रातरवस्थानं भयहेतुकमित्यालोच्य यथा कार्यं तथा आरभ्यताम्। तच्छ्रुत्वा कूर्मः समयमाह – 'मित्र ! जलाशयाऽन्तरं गच्छामि'। काकमृगावपि उक्तवन्तौ – 'मित्र ! एवमस्तु'। हिरण्यको विमृश्याऽब्रवीत्–पुनर्जलाशये प्राप्ते मन्थरस्य कुशलम्, स्थले गच्छतोऽस्य का विधा ?

अनुवाद : इसके बाद मन्थर (कछुआ) बोलता है – 'मित्र ! मृग ! तुम किससे डरे हो ? क्या इस निर्जन वन में कभी व्याध (बहेलिये) घूमते हैं ?' मृग ने कहा – 'कलिंग देश (प्रदेश) में रुक्मांगद नाम का राजा है, वह दिग्विजय के कार्यक्रम से आकर चन्द्रभागा नदी के तीर पर सेनाओं को इकट्ठा किया है। प्रातःकाल कर्पूर सरोवर के पास उसे रहना चाहिए।' इस प्रकार व्याधों (बहेलियों) के मुँह से यह किंवदन्ती सुनी जा रही है। तब फिर यहाँ भी प्रातःकाल रहना भय कारक है। यह विचार कर जो करना उचित हो वह किया जाए।' उसे सुनकर कुछआ ने भय के साथ कहा – 'मित्र ! दूसरे जलाशय में जा रहा हूँ।' कौआ और मृग ने भी कहा – 'मित्र ! ऐसा ही हो।' परन्तु हिरण्यक

विचार करके बोला – 'फिर तो जलाशय मिलने पर ही मन्थर का कुशल है। परन्तु भूतल पर जाते हुए इसकी क्या दशा होगी ?

यतः –

अम्भांसि जलजन्तूनां दुर्गं दुर्गनिवासिनाम्।
स्वभूमिः श्वापदादीनां राज्ञां सैन्यं परं बलम्।।214।।

अनुवाद : जल के जीवों का जल (ही उत्कृष्ट बल है) एवं किले में रहने वालों का किला, हिंसक जीवों (सिंह आदि) का अपना निवास स्थान (उत्तम बल है) तथा राजाओं का अपना सैन्य सर्वोत्तम बल है। तब भी उपाय सोचना चाहिए।214।

स्वयं वीक्ष्य यथा वध्वा पीडितं कुचकुड्मलम्।
वणिक्पुत्रोऽभवद् दुःखी, त्वं तथैव भविष्यसि।।215।।

अनुवाद : एक बनिये का लड़का – अपनी स्त्री के स्तनों को, दूसरे को दबाते हुए अपने आँखों से देख कर जैसे दुःखी हुआ था, वैसे ही तुम लोग भी दुःखी होगे।215।

कथा 7

राजपुत्रवणिग्वधूकथा

अस्ति कान्यकुब्जविषये वीरसेनो नाम राजा। तेन वीरपुरनाम्नि नगरे तुंगबलो नाम राजपुत्रो। भोगपतिः कृतः। स च महाधनस्तरुण एकदा स्वनगरे भ्राम्यन्नतिप्रौढयौवनां लावणयवतीं नाम वणिक्पुत्रवधू–मालोकयमास। ततः स्वहर्म्यं गत्वा स्मरऽऽकुलमतिस्तस्याः कृते दूतीं प्रेषितवान्। यतः –

अनुवाद : कान्यकुब्ज (कन्नौज) देश में वीरसेन नाम का राजा था। उसने वीरपुर नामक नगर में तुंगबल नामक एकराजपुत्र को रक्षक अधिकारी (करग्रहणाधिकारी या ठाकुर) बनाया। वह तुंगबल बहुत धनी तथा युवा था। एक दिन अपने नगर में घूमते हुए उसने एक अत्यन्त सुन्दरी पूर्ण–यौवना लावण्यवती नाम की किसी बनिये की पुत्रवधू को देखा। इसके बाद अपने महल को गया और कामार्त होकर उस लावण्यवती के पास उसने एक दूती (कुटनी) को भेजा। क्योंकि –

सन्मार्गे तावदास्ते, प्रभवति पुरुषस्तावदेवेन्द्रियाणां,
लज्जां तावद्विधत्ते, विनयमपि सभालम्बते तावदेव।
भ्रूचापाऽऽकृष्टमुक्ताः, श्रवणपथगता, नीलपक्ष्माण एते
यावल्लीलावतीनां न हृदि धृतिम्रुषो दृष्टिबाणाः पतन्ति।।216।।

अनुवाद : पुरुष तभी तक सन्मार्ग पर रहता है और वह तभी तक अपनी इन्द्रियों को भी वश में रख सकता है और तभी तक वह लज्जा भी रख सकता है और तभी तक शील भी रखता है, जब तक सुन्दरी स्त्रियों के भौंहरूपी धनुष से कान तक खींच कर छोड़े गये व धैर्य को चुराने वाले, काले–काले पलक वाले नेत्ररूपी धनुष से छूटे हुए बाण (कटाक्ष) उसके हृदय में नहीं लगते हैं।216।

साऽपि लावण्यवती तदवलोकनक्षणात्प्रभृति स्मरशरप्रहारजर्जरितहृदया तदेकचित्ताऽभवत्। तथा ह्युक्तम् –

अनुवाद : और वह लावण्यवती भी उस युवा राजपुत्र को देखने के बाद से ही काम– पीडित होकर तन्मयचित्त हो गई। कहा भी है –

असत्यं, साहसं माया, मात्सर्यं चाऽतिलुब्धता।
निर्गुणत्वमशौचत्वं, स्त्रीणां दोषाः स्वभावजः।।217।।

अनुवाद : असत्य, साहस, माया, डाह, लोभ, निर्गुणता, अपवित्रता, ये स्त्रियों के स्वाभाविक 7 दोष हैं।217।

अथ दूतीवचनं श्रुत्वा लावण्यवत्युवाच – 'अहं पतिव्रता कथमेतस्मिन्नधर्मे पतिलंघने प्रवर्त्ते?। यतः –

अनुवाद : और वह दूती लावण्यवती के पास जाकर उसे समझाने लगी। दूती की बात सुन कर लावण्यवती बोली – मैं पतिव्रता हूँ, अतः मैं इस पापकार्य (व्यभिचार) में कैसे प्रवृत्त हो सकती हूँ ?। क्योंकि –

सा भार्या या गृहे दक्षा, सा भार्या या प्रजावती।

सा भार्या या पतिप्राणा, सा भार्या या पतिव्रता।।218।।

अनुवाद : वही सच्ची पत्नी है, जो गृहकार्य में कुशल हो, सन्तान वाली हो और अपने पति को ही अपना प्राण समझे, और पतिव्रता हो।218।

कोकिलानां स्वरो रूपं, नारीरूपं पतिव्रतम्।

विद्या रूपं कुरूपाणां, क्षमा रूपं तपस्विनाम्।।219।।

अनुवाद : क्योंकि कोयल का स्वर ही रूप है, स्त्रियों का पातिव्रत्य ही रूप है, कुरूपों का विद्या ही रूप है, और तपस्वियों का क्षमा ही रूप है।219।

न सा 'भार्ये' ति वक्तव्या यस्या भर्त्ता न तुष्यति।

तुष्टे भर्तरि नारीणां, सन्तुष्टाः सर्वदेवताः।।220।।

अनुवाद : और भी – वह भार्या भार्या नहीं कहीं जा सकती है, जिससे उसका पति प्रसन्न नहीं हो। पति के प्रसन्न होने पर स्त्रियों पर सभी देवता प्रसन्न होते हैं।220।

ततो यद्यदादिशति मे प्राणेवरस्तदेवाऽहमविचारितं करोमि। दूत्योक्तम् – 'किं सत्यमेतत्।'

ततो दूतिकया गत्वा तत्तत्सर्व तुंगबलस्याऽग्रे निवेदितम्। तच्छ्रुत्वा तुंगबलोऽब्रवीत् – 'विषमेषुणा व्रणितहृदयस्तां विना कथमहं जीविष्यामि ?।

कुट्टन्याह – 'स्वामिनाऽऽनीय समर्पयितव्ये' ति। स प्राह– 'कथमेतच्छक्यम्' ?। कुट्टन्याह – 'उपायः क्रियताम्'।

अनुवाद : इसलिये मेरे प्राणपति जो मुझे आज्ञा देते हैं, उसे मैं बिना विचारे करने को तैयार रहती हूँ अर्थात् मेरा पति यदि मुझे उस राजा के पास भेजेगा, तो मैं जा सकती हूँ, ऐसे नहीं। दूती ने कहा – क्या यह बात सच है ?। लावण्यवती ने कहा – यह बिलकुल सच है। इसके बाद दूती ने जाकर तुंगबल से उसके पतिव्रता होने की बात कही। दूती की बातों को सुन कर वह तुंगबल बोला – मैं तो अत्यन्त कामपीडित हो रहा हूँ। उसके बिना मैं कैसे जीता रहूँगा ?। तब कुट्टनी बोली – स्वयं उसका स्वामी ही उसे लाकर आपको समर्पण करेगा (दे देगा)। तुंगबल बोला – भला यह कैसे हो सकता है ?। कुट्टनी बोली – उपाय करने से सब कुछ हो सकता है। अतः आप भी उपाय कीजिये। कहा भी है –

उपायेन हि यच्छक्यं, न तच्छक्यं पराक्रमैः।

शृगालेन हतो हस्ती गच्छता पंकवर्त्मना।।221।।

अनुवाद : जो कार्य बल व पराक्रम से नहीं हो सकता है, वही कार्य उपायों द्वारा सरलता से हो जाता है। देखो कीचड़ के मार्ग से चलकर एक सियार ने एक जबरदस्त हाथी को मार डाला था।221।

कथा 8

हस्तिधूर्तशृगालकथा
धूर्त गीदड़ और कर्पूरतिलक हाथी की कहानी

अस्ति ब्रह्मारण्ये कर्पूरतिलको नाम हस्ती। तमवोलक्य सर्वे शृगालाश्चिन्तयन्ति स्म–यद्ययं केनाप्युपायेन म्रियते तदाऽस्माकमेतद्देहेन मासचतुष्टस्य भोजनं भवेत्। तत्रैकेन वृद्धश्शृगालेन प्रतिज्ञातम्–मया बुद्धि–प्रभावादस्यमरणं साधयितव्यम्। अनन्तरं स वंचकः कर्पूरतिलक– समीपं गत्वा साष्टांगपातं प्रणम्योवाच – देव ! दृष्टिप्रसादं कुरू। हस्ती ब्रूते–कस्त्वम् ? कुतः समायतः। सोऽवदत् जम्बुकोऽहम्। सर्वैर्वनवासिभिः पशुभिर्मिलित्वा भवत्सकाशं प्रस्थापितः। यद्विना राज्ञाऽवस्थातुं न युक्तम्, तदत्राटवीराज्येऽभिषेक्तुं भवान् सर्वस्वामि– गुणोपेता निरूपितः।

अनुवाद : ब्रह्म नामक वन में कर्पूर तिलक नाम का हाथी था। उसे देखकर सभी गीदड़ सोचा करते थे कि यदि वह किसी उपाय से मारा जाए तो इसके शरीर से हमारा चार मास का भोजन हो जाएगा। उनमें से एक बूढ़े गीदड़ ने प्रतिज्ञा की – कि मैं बुद्धि के प्रभाव से इसको मार डालूंगा। इसके बाद वह धूर्त गीदड़ कर्पूरतिलक के पास जाकर साष्टांग प्रणाम करके (सीधा लेट कर) बोला – महाराज कृपादृष्टि कीजिए। हाथी ने कहा – तू कौन है ? कहां से आया है ? वह बोला – मैं गीदड़ हूँ। सभी वनवासी (जंगली) पशुओं ने मिलकर मुझे आपके पास भेजा है कि बिना राजा के रहना उचित नहीं है, तो इस वन के राज्य पर राज (स्वामी) के सब गुणों से युक्त आपको ही अभिषेक (राजतिलक) के लिए चुना है।

यतः –

> **यः कुलाचारजनाऽऽचारैरतिशुद्धः प्रतापवान्।**
> **धार्मिको नीतिकुशलः स स्वामी युज्जते भुवि।।222।।**

अनुवाद : वंश–परंपरा तथा मानव आचारों से अति शुद्ध, प्रतापी, धर्मात्मा, नीतिकुशल वह स्वामी (राजा) भूतल पर शासन के लिए नियुक्त किया जाता है।222।

अपरं च पश्य –

> **राजानं प्रथमं विन्देत् ततो भार्यां ततो धनम्।**
> **राजन्यसति लोकेऽस्मिन् कुतो भार्या कुतो धनम्।।223।।**

अनुवाद : और दूसरे देखो – सबसे पहले राजा को प्राप्त करना चाहिए, फिर स्त्री को और उसके बाद धन को प्राप्त करे। क्योंकि राजा के न होने पर इस संसार में कहां से स्त्री और कहां से धन प्राप्त हो सकता है अर्थात् बिना राजा के सुरक्षा के अभाव में स्त्री और धन की प्राप्ति कठिन है।223।

अन्यच्च –

> **पर्जन्य इव भूतानामाधारः पृथिवीपतिः।**
> **विकलेऽपि दि पर्जन्ये जीव्यते न तु भूपतौ।।224।।**

अनुवाद : राजा मेघ के समान देहधारियों के जीवन का आधार है, फिर भी मेघ की अपेक्षा राजा में विशेषता है क्योंकि मेघ के बिना भी जिया जा सकता है, लेकिन राजा के न होने पर किसी तरह भी जीने की सम्भावना नहीं है।224।

> **नियतविषयवर्ती प्रायशो दण्डयोगा–**
> **ज्जगति परवशेऽस्मिन् दुर्लभः साधुवृत्तः।**
> **कृशमपि विकलं वा व्याधितं वाऽधनं वा**
> **पतिमपि कुलनारी दण्डभीत्याऽभ्युपैति।।225।।**

अनुवाद : इस पराधीन संसार में अर्थात् राजा के अधीन लोक में प्रायः दण्ड के भय से लोग अपने नियत कामों में लगे रहते हैं, नहीं तो अच्छे काम में लगना (अच्छा आचरण) कठिन है। क्योंकि दण्ड के भय से ही कुल की नारी अपने दुर्बल, विकलांग (अंगहीन– लंगड़े–लूले), रोगी, अथवा गरीब पति को भी स्वीकार करती है।225।

तद्यथा लग्नवेला न विचलति तथा कृत्वा सत्वरमागम्यतां देवेन। इत्युक्त्वोत्थाय चलितः। ततोऽसौ राज्यलोभाकृष्टः कर्पूरतिलकः शृगालवर्त्मना धावन्महापंके निमग्नः। ततस्तेन हस्तिनोक्तम् – सखे शृगाल ! किमधुना विधेयम् ? पंके निपतितो म्रिये। परावृत्य पश्य। शृगालेन विहस्योक्तम् – देव! मम पुच्छावलम्बनं कृत्वोत्तिष्ठ यन्मद्विधस्य वचसि त्वया प्रत्ययः कृतस्तदनुभूयतामशरणं दुःखम्।

अनुवाद : इसलिए जिससे कि लगन का समय (शुभ मूहूर्त) न बीत जाए, आप शीघ्र ही आ जाइए। यह कह कर वह गीदड़ उठकर चल दिया। तब वह कर्पूरतिलक हाथी राज्य के लोभ से आकर्षित हो कर गीदड़ के पीछे–पीछे दौड़ता हुआ बहुत गहरे कीचड़ में फंस गया। फिर उस हाथी ने कहा – मित्र गीदड़ ! अब क्या किया जाए ? कीचड़ में फंसा हुआ मैं मर रहा हूं। लौट कर देखो। गीदड़ ने हँस कर कहा – महाराज ! मेरी पूंछ का सहारा लेकर उठो। क्योंकि मुझ जैसे (धूर्त) के वचनों पर तुमने विश्वास किया। अतः शरणहीन दुःख को भोगो।

तथा चोक्तम् –

यदाऽसत्सङ्गरहितो भविष्यति भविष्यसि।
यदासज्जनगोष्ठीषु पतिष्यसि पतिष्यसि।।226।।

अनुवाद : जब दुर्जनों की संगति से रहित (तुम) होगे तब इस दुनिया में रहोगे। जब दुर्जनों की मंडली में पड़ोगे (तब तुम दुःखरूपी पाँक में ही) गिरोगे।226।

ततो महापंके निमग्नो हस्ती शृगालैर्भक्षितः। अतोऽहंब्रवीमि उपायेन यच्छक्यम् इत्यादि।

अनुवाद : फिर बड़े कीचड़ में फंसे हुए हाथी को गीदड़ों ने खा लिया। इसलिए मैं कहता हूँ कि ''उपाय से जो हो सकता है'' इत्यादि। फिर उस राजपुत्र ने अपनी कुटनी (दूती) के उपदेश से उस चारूदत्त नामक बनिये के पुत्र को अपना नौकर बना लिया। बाद में उसको उसने सब विश्वास के कार्यों में लगा दिया।

ततः तद्धितवचनमवधीर्य महता भयेन विमुग्ध इव तं जलाशयमुत्सृज्य मन्थरश्चलितः। तेऽपि हिरण्यकादयः स्नेहादनिष्टं शंकमाना मन्थरमनुगजग्मुः। ततः स्थले गच्छन् केनापि व्याधेन काननं पर्यटता सः मन्थरः प्राप्तः। सच प्राप्य तं गृहीत्वोत्थाय धनुषि बद्धवा भ्रमणक्लेशात् क्षुत्पिपासाकुलः स्वगृहाभिमुखं चलितः। अथ ते मृगवायसमूषकाः परं विषादं उपगताः तमनुगच्छन्ति स्म।

अनुवाद : उसके हितकारी वचन को न सुनकर अर्थात् अनसुनी करके बड़े भय से मूढ़ बना हुआ वह मन्थर उस तालाब को छोड़ कर चल दिया। वे हिरण्यक आदि भी स्नेह के कारण उसकी विपत्ति की शंका करते हुए मन्थर के पीछे–पीछे गए। तब जमीन पर चलता हुआ मन्थर (कछुआ) जंगल में घूमते हुए किसी शिकारी के हाथ पड़ गया। वह उसे पकड़ कर और लेकर धनुष में बाँध कर, घूमता हुआ भूख और प्यास से व्याकुल अपने घर की ओर चल पड़ा। फिर हरिण, कौआ और चूहा ये सब बड़े दुःखी होते हुए उस शिकारी के पीछे–पीछे चल पड़े।

ततो हिरण्यको विलपति –

एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं
गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य।
तावद्द्वितीयं समुपस्थितं मे
छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति।।227।।

अनुवाद : फिर हिरण्यक विलाप करने लगा – जब तक मैं समुद्र के पार के समान एक दुःख के पार नहीं जा पाता हूं, तब तक मुझे दूसरा दुःख प्राप्त हो जाता है। निश्चय ही विपत्तियों में अनर्थ (दुःख) अधिक मात्रा में आते हैं।227।

स्वभाविकं तु यन्मित्रं भाग्येनैवाभिजायते।
तदकृत्रिमसौहार्दमापत्स्वपि न मुंचति।।228।।

अनुवाद : स्वाभाविक मित्र तो भाग्य से ही मिलता है। वह स्वाभाविक मित्रता को विपत्तियों में भी नहीं छोड़ता है अर्थात् सच्चा मित्र बड़ा दुर्लभ है।228।

अपि च –

न मातरि न दारेषु न सोदर्ये न चाऽऽत्मजे।
विश्वासस्तादृशः पुंसा यादृङ्मित्रे स्वभावजे।।229।।

अनुवाद : पुरुषों का स्वाभाविक मित्र में जैसा विश्वास (होता है) वैसा (विश्वास) माता में नहीं, पत्नी में नहीं, सहोदर भाई में नहीं, अपने पुत्र में भी नहीं होता है।

इस प्रकार बार–बार चिन्ता करके कहा – 'अहो ! मेरा दुर्भाग्य है।229।

अतः –

स्वकर्मसन्तानविचेष्टितानि कालान्तराऽऽवर्तिशुभाऽशुभानि।
इहैव दृष्टानि मयैव तानि जन्मान्तराणीव दशान्तराणि।।230।।

अनुवाद : मैंने इस प्रकार अपने किए हुए कर्मसमूहों से उत्पन्न होने वाले कालान्तर में होने वाले शुभाशुभ फलवाली उन अनेक दशाओं को जन्मान्तर (दूसरों जन्म में भोग्य) की भांति इस जन्म में ही देख लिया।230।

अथवा यह इसी प्रकार है –

कायः सन्निहिताऽपायः सम्पदः पदमापदाम्।
समागमाः साऽपगमाः सर्वमुत्पादि भङ्गरम्।।231।।
पुनर्विमृश्याऽऽह–

अनुवाद : शरीर विनाश के पास है, सम्पदाएँ विपदा के स्थान पर हैं, समागम वियोग वाले हैं (इस प्रकार) सब कुछ उत्पन्न होने वाले पदार्थ नाशवान हैं।231।

फिर विचार कर बोला –

शोकारातिभयत्राणं प्रीतिविश्रम्भाजनम्।
केन रत्नमिदं सृष्टम् मित्रमित्यक्षरद्वयम्।।232।।

अनुवाद : फिर सोच कर बोला –

शोक और शत्रु के भय से बचाने वाला, प्रेम और विश्वास का पात्र, दो अक्षरों वाला यह मित्र रूपी रत्न किसने बनाया है अर्थात् मित्र तो रत्न के समान सुन्दर है।232।

किंच –

मित्रं प्रीतिरसायनं नयनयोरानन्दनं चेतसः
पात्रं यत् सुखदुःखयोः सममिदं पुण्यात्मना लभ्यते।
ये चाऽन्ये सुहृदः समृद्धिसमये द्रव्याऽभिलाषाकुला–
स्ते सर्वत्र मिलन्ति तत्त्वनिकषग्रावा तु तेषां विपत्।।233।।

अनुवाद : जो मित्र नेत्रों के प्रीतिरस का स्थान है, चित्त को आनन्द देने वाला है, सुख –दुःख में समान भाव से साथ देने वाला पात्र है, ऐसे मित्र का लाभ किसी पुण्यात्मा को होता है। उन्नति काल में धन की लालसा से व्याकुल जो अन्य मित्र हैं, वे तो सर्वत्र मिलते हैं। परन्तु उनके तत्व (मित्रता) की कसौटी तो विपत्ति है। (अर्थात् विपत्ति में मित्र पहचाने जाते हैं) ।233।

इति बहुः विलप्य हिरण्यकश्चित्रांगलघुपनकावाह – "यावदयं व्याधो वनात् निःसरति तावन्मन्थरं मोचयितुं यत्नः क्रियताम्। तावूचतुः – सत्वरं कार्यमुच्यताम्। हिरण्यको ब्रूते– चित्रांगो जलसमीपं गत्वा मृतमिवात्मानं दर्शयतु। काकः तस्योपरि स्थित्वा चंच्वा किमपि विलिखतु। नूनमनेन लुब्धकेन तत्र कच्छपं परित्यज्य मृगमांसार्थिना सत्वरं गन्तव्यम्। ततोऽहं मन्थरस्य बन्धनं छेत्स्यामि। संनिहिते लुब्धके भवद्भ्यां पलायितव्यम्।"

अनुवाद : इस प्रकार बहुत विलाप करके हिरण्यक ने चित्रांग (हरिण) और लघुपतनक (कौवे) से कहा – जब तक यह शिकारी वन से नहीं निकलता है, तब तक मन्थर (कछुए) को छुड़ाने का प्रयत्न (उपाय) करो। वे दोनों बोले – शीघ्र ही क्या करना है बताओ। हरिण्यक ने कहा – चित्रांग जल के निकट जाकर अपने आप को मरे हुए के समान दिखाए और कौआ उसके ऊपर बैठकर चोंच से कुछ कुरेदने लगे। (इससे) निश्चय ही यह शिकारी वहाँ कछुए को छोड़कर (रखकर) हरिण के माँस खाने की इच्छा से शीघ्र ही जाएगा। तब मैं (वहाँ जाकर) मन्थर के बन्धन काट दूंगा। शिकारी के पास आने पर आप दोनों भाग जाना।

ततः चित्रांग–लघुपतनकाभ्यां शीघ्रं गत्वा तथानुष्ठिते सति सः व्याधः श्रान्तः पानीयं तरोरधस्तादुपविष्टस्तथा विंध मृगमपश्यत्। ततः कच्छपं जलसमीपे निधाय कर्तरिकामादाय प्रहृष्टमना मृगान्तिकं चलितः। अत्रान्तरे हिरण्यकेनागत्य मन्थरस्य बन्धनं छिन्नम्। सः कूर्मः सत्वरं जलाशयं प्रविवेश। स मृगः आसन्नं तं व्याधं विलोक्योत्थाय पलायितः। प्रत्यावृत्य लुब्धको यावत् तरुतलमायाति कूर्ममपश्यन्नचिन्तयत्उचितमेवैतन्म– मासमीक्ष्यकारिणः।

अनुवाद : चित्रांग और लघुपतनक ने शीघ्र ही जाकर वैसा ही किया, तब थके हुए, जल पी कर पेड़ नीचे बैठे हुए शिकारी ने उस प्रकार के हरिण को देखा। फिर छुरी (काटने का साधन) लेकर प्रसन्न होता हुआ हरिण के पास जाने लगा। इसी बीच हिरण्यक ने आकर मन्थर का बन्धन काट डाला। वह कछुआ (मन्थर) शीघ्र ही तालाब में चला गया। वह हरिण पास आते हुए उस शिकारी को देखकर उठकर भाग गया। जब शिकारी लौट कर पेड़ के नीचे आया, तब कछुए को न देखकर सोचने लगा – मेरे जैसे बिना सोचे–समझे काम करने वाले के लिए यही उचित है।

यतः –

यो ध्रुवाणि परत्यिज्य अध्रुवाणि निषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव हि।।234।।

अनुवाद : जो निश्चित (हाथ में आए हुए) पदार्थ को छोड़कर अनिश्चित पदार्थ का सेवन करता है, उसके निश्चित पदार्थ नष्ट हो जाते हैं और अनिश्चित तो नष्ट हो ही जाता है।234।

ततऽसौ स्वकर्मवशान्निराशः कटकं प्रविष्टः, मन्थरादयश्च सर्वे मुक्ताऽऽपदः स्वस्थानं गत्वा यथासुखमास्थिताः।

अनुवाद : तब वह (व्याध) अपने अविवेकपूर्ण कर्म वश निराश होकर अपने शिविर में चला गया और मन्थरादि सबके सब आपत्ति से छुटकारा पाकर अपने स्थान पर जाकर सुख से रहने लगे।

अथ राजपुत्रैः सानन्दमुक्तम् – 'सर्वे श्रुतवन्तः। सुखिनो वयम्, सिद्धं नः समीहितम्'। विष्णुशर्मोवाच – 'एतद्भवतामभिलाषितमपि सम्पन्नम् अपरमपि इदमस्तु' –

अनुवाद : इसके बाद राजकुमारों ने आनंदपूर्वक कहा – 'हम सब सुन चुके। हम सभी सुखी हैं, हम लोगों का मनोरथ सिद्ध हुआ।' विष्णु शर्मा जी बोले यह आप लोगों का अभिलषित भी सम्पन्न हुआ और भी यह होवे –

मित्रं यान्तु च सज्जना जनपदैर्लक्ष्मीः समालम्ब्यतां
भूपालाः परिपालयन्तु वसुधां शश्वत् स्वधर्मे स्थिताः।
आस्तां मानसतुष्टये सुकृतिनां नीतिर्नवोढेव वः
कल्याणं कुरुतां जनस्य भगवांश्चन्द्रार्द्धचूडामणिः।।235।।

अनुवाद : यह और भी हो जाए –

सज्जन (अच्छे व्यक्ति) मित्र प्राप्त करें, नगर के लोग लक्ष्मी प्राप्त करें, राजा लोग हमेशा अपने धर्म में रहकर पृथ्वी का पालन करें। आप राजपुत्रों की नीति नव– विवाहिता स्त्री के समान पुण्यशाली विद्वानों के मन को प्रसन्न करे और भगवान् शिव लोगों का कल्याण करें।235।

हितोपदेश (मित्रलाभ) समाप्त
हितोपदेश मित्र लाभो नाम प्रथमः संग्रहः समाप्त।

2.3.2 दूतवाक्यम् (भासविरचितम्)

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)
हिन्दी अनुवाद

(नान्दी के बाद सूत्रधार का प्रवेश)
(नेपथ्य में)

सूत्रधार :

पादः पायादुपेन्द्रस्य सर्वलोकोत्सवः स वः।
व्याविद्धो नमुचिर्येन तनुताम्रनखेन खे।।1।।

अनुवाद : (नान्दी के बाद सूत्रधार रंगमंच पर आता है।)

सूत्रधार : छोटे तथा लाल रंग के नाखूनों वाले जिस पैर ने नमुचि नाम के राक्षस को आकाश में पछाड़ दिया था, भगवान् वामन (उपेन्द्र) का सब लोगों को आनन्दित करने वाला वह पैर आपकी रक्षा करे।

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। अये किन्तु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते। अङ्ग ! पश्यामि।

(नेपथ्ये)

भो भोः प्रतिहाराधिकृता ! महाराजो दुर्योधनः समाज्ञापयति।

सूत्रधार : भवतु, विज्ञातम्।

उत्पन्ने धार्तराष्ट्राणां विरोधे पाण्डवैः सह।
मन्त्रशालां रचयति भृत्यो दुर्योधनाज्ञया।।2।।

(निष्क्रान्तः)

स्थापना

कांचुकीय : **भोः भोः प्रतिहाराधिकृताः महाराजो दुर्योधनः समाज्ञापयति–अद्य सर्वपार्थिवैः सह मन्त्रयितुमिच्छामि।**
तदाहूयन्तां सर्वे राजान इति (परिक्रम्यावलोक्य) अये ! अयं महाराजो दुर्योधन इत एवाभिवर्तते ! य एषः

श्यामो युवा सितदुकूलकृतोत्तरीयः
सच्छत्र चामरवरो रचिताङ्रागः।
श्रीमान् विभूषणमणिद्युतिरजिंताङ्गो
नक्षत्रमध्य इव पर्वगतः शशाङ्कः।।3।।

अरे, अरे द्वारपालो ! महाराज दुर्योधन आज्ञा देते हैं।

सूत्रधार : अच्छा, समझ गया।

धृतराष्ट्र के पुत्रों (दुर्योधन आदि) कौरवों का, युधिष्ठिर आदि पाण्डु पुत्रों (पाण्डवों) के साथ विरोध उत्पन्न होने के कारण दुर्योधन की आज्ञा से उसका सेवक सभाभवन को तैयार कर रहा है।

(सूत्रधार निकल जाता है)

स्थापना

(तब कंचुकी का प्रवेश)

दुर्योधन : **उद्धूत तरोषमिव मे ह्रदयं सहर्षं**
प्राप्तं रणोत्सवमिदं सहसा विचिन्त्य
इच्छामि पाण्डवबले वरवारणाना –
मुत्कुत्तदन्तमुसलानि मुखानि कर्तुंम्।।4।।

कांचुकीय : जयतु महाराजः । महाराजशासनात् समानीतं सर्वराजमण्डलम्।

दुर्योधन : सम्यक् कृतम्। प्रविश त्वमवरोधनम्।

कांचुकीय : यदाज्ञापयति महाराजः।

(निष्क्रान्तः)

दुर्योधन : **आर्यौ वैकर्णवर्षदेवौ। उच्यताम्–अस्ति ममैकदशा–क्षौहिणीबलसमुदयः।**
अस्य कः सेनपतिर्भवितुमर्हति।
किं किमहतुर्भवन्तौ–महान् खल्वयमथ्रः। मन्त्रयित्वा वक्तव्यमिति।
सदृशमेतत्। तदागम्तां मन्त्रशालामेव प्रविशामः। आचार्य ! अभिवादये।
प्रविशतु भवान् मन्त्रशालाम्। पितामह!
अभिवादये। प्रविशतु भावन् मन्त्रशालाम्। आर्यौ वैकर्णवर्षदेवौ !
प्रविशतां भवन्तौ।
भो भोः सर्वक्षत्रियाः। स्वैरं प्रविशन्तु भवन्तुः। वयस्व ! कर्ण !
प्रविशामस्तावत्।

हिन्दी अनुवाद

(तब पहले बताए हुए वेश में दुर्योधन का प्रवेश)

दुर्योधन : मेरा क्रोधशून्य ह्रदय अचानक युद्ध उत्सव को प्राप्त हुआ सोचकर हर्षित हो उठा है। मैं पाण्डवों की सेना में श्रेष्ठ हाथियों के मूसल जैसे दान्तों वाले मुखों को उखाड़ना चाहता हूँ।

कंचुकी : महाराज की जय हो। महाराज की आज्ञा से मैं सभी राजाओं को बुला लाया हूँ।

दुर्योधन : ठीक किया। तुम (अब) अन्तःपुर में चले जाओ।

कंचुकी : जैसे आपकी आज्ञा।

(चला जाता है)

दुर्योधन : आर्य वैकर्ण ओर वर्षदेव ! (तुम) बताओ –

मेरी ग्यारह अक्षौहिणी सेना है, उसका सेनापति कौन हो सकता है ?

आपने क्या कहा – यह विषय बड़ा (महत्त्वपूर्ण) है। (अतः) सोच समझकर कहना होगा।

यह उचित है। तो आओ, विचारगृह (सभागृह) में ही चलते हैं। आचार्य द्रोण ! मैं दुर्योधन आपका अभिनन्दन करता हूँ। आप मन्त्रशाला में प्रवेश करें। हे पितामह (भीष्म) मैं आपका स्वागत करता हूँ। आप मन्त्रशाला (सभागृह) में प्रवेश करें। मामा शकुनि जी ! मैं अभिवादन करता हूँ। आप मन्त्रशाला में प्रवेश करें। आर्य वैकर्ण और वर्षदेव ! आप मन्त्रशाला में प्रवेश करें। हे सब क्षत्रिय महानुभवों ! आप इच्छानुसार अन्दर प्रवेश करें। मित्र कर्ण ! आओ हम भी मन्त्रशाला में प्रवेश करते हैं।

किमित किमित महाराजो नास्त इति।
अहो सेवाधर्मः। नन्वयमहमासे।
वयस्य कर्ण ! त्वप्यास्स्व। *(उपविश्य)*
आयौ वैकर्णवर्षदेवौ ! उच्यताम् – अस्ति ममैकादशाक्षौहिणीबल–समुदायः।
अस्य कः सेनापतिर्भवितुमर्हतीति।
किमाहतुर्भवन्तौ–अत्रभवान् गान्धारराजो वक्ष्यतीति। भवतु, मातुलेनाभिधीयताम्।
किमाहमातुलः–अत्रभवति गाङ्गेये स्थिते कोऽन्यः सेनापति–र्भवितुर्महतीति।
सम्यगाह मातुलः। भवतु भवतु,
पितामह एव भवतु वयमप्येतदभिलषामः।
सेनानिनादपटहस्वनशंखनादै
श्चण्डानिलाहतमहोदधिनादकल्पैः।
गाङ्गेयमूर्ध्नि पतितैरभिषेकतोयै;
सार्धं पतन्तु ह्रदयानि नराधिपानाम्।।5।।

(पादयोः पतति)

दुर्योधन : सम्भ्रम इति। आ ! मनुष्याणामस्त्येव सम्भ्रमः।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ।

हिन्दी अनुवाद

यह क्या, यह क्या मैं (महाराज दुर्योधन) नहीं बैठा हूँ। (इसलिए हम नहीं बैठते)। धन्य है आपकी मेरे प्रति सेवा–भावना। लो मैं यह बैठता हूँ। (बैठकर)

आर्य वैकर्ण और वर्षदेव ! बताओ – मेरी ग्यारह अक्षौहिणी सेना है। उसका सेनापति कौन बनने के योग्य है।

आप दोनों ने क्या कहा – कि इस विषय में पूज्य गान्धार (शकुनि) बतायेंगे। अच्छा, मामा जी, बताएं।

मामा जी ने क्या कहा – कि पूजनीय गंगापुत्र भीष्म के रहते हुए, दूसरा कौन सेनापति हो सकता है। मामा जी ने ठीक कहा है। अच्छा, अच्छा, पितामह भीष्म के रहते हुए, दूसरा कौन सेनापति हो सकता है। मामा जी ठीक कहा है। अच्छा, अच्छा, पितामह भीष्म ही सेनापति बनें। हम भी यही चाहते हैं।

तेज हवा से प्रताड़ित महासमुद्र की (भंयकर) आवाज़ के समान हमारी सेना के शब्दों, नगाड़ों की ध्वनियों और शंखों के शब्दों के शब्दों द्वारा भीष्म के सिर पर गिरने वाले अभिषेक के जलों के साथ शत्रु राजाओं के हृदय भी गिर जाएं। भाव यह है कि शत्रु पाण्डवों का मनोबल हमारी सैन्य शक्ति तथा भीष्म को सेनापति बने देखकर गिर जाए।

(प्रविश्य)

कांचुकीय : जयतु महाराजः ! एष खलु पाण्डवस्कन्धावाराद् दौत्येनागतः पुरुषोत्तमो नारायणः।

दुर्योधन : मा तावद् भो बादरायण ! किं, किं कंसभृत्यो दामोदरस्तव पुरुषोत्तमः। स गोपालकस्तव पुरुषोत्तमः। बाहद्रथापहृतविषयकीर्तिभोगस्तव पुरुषोत्तमः। अहो पार्थिवासन्नमाश्रितस्य भृत्यजनस्य समुदाचारः। सगर्वं खल्वस्य वचनम् आ ! अपध्वंस।

कांचकीय : प्रसीदतु महाराजः। सम्भ्रमेण समुदाचारो विस्मृतः। (पादयोः पतति)

दुर्योधन : सम्भ्रम इति। आ मनुष्याणामस्त्येव सम्भ्रमः। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ।

कांचुकीय : अनुगृहीतोऽस्मि।

दुर्योधन : इदानीं प्रसन्नोऽस्मि। क एष दूतः प्राप्तः ?

दुर्योधन : केशव इति। एवमेष्टव्यम्। अयमेव समुदाचारः। भो भो राजानः ! दौत्येनागतस्य के शवस्य किं युक्तम् ?

किमाहुर्भवन्त : अर्घ्यप्रदानेन पूजयितव्यः केशव इति। न मे रोचते। ग्रहणमस्यात्र हितं पश्यामि।

ग्रहणमुपगते तु वासुभद्रे
हृतनयना इव पाण्डवाः भवेयुः।
गतिमतिरहितेषु पाण्डवेषु
क्षितिरखिलापि भवेन्ममासपत्ना।।6।।

अपि च योऽत्र केशवस्य प्रत्युत्थास्यति, स मया द्वादशसुवर्णभारेण दण्ड्यः। तदप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः। (आत्मगतम्) को नु खलु ममाप्रत्युत्थानस्योपायः। हन्त दृष्ट उपायः। (प्रकाशम्) बादरयण ! आनीयतां स चित्रपटो ननु, यत्र द्रौपदीकेशाम्बरापकर्षणमा– लिखितम्। (अपवार्य) तस्मिन् दृष्टि–विन्यास कुर्वन् नोत्थास्यामि केशवस्य।

कांचुकीय : यदाज्ञापयति महाराजः (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः। अयं स चित्रपटः।

दुर्योधन : ममाग्रतः प्रसारय।

कांचुकीय : यदाज्ञापयति। महाराजः। (प्रसारयति)

दुर्योधन : अहो दर्शनीयोऽयं चित्रपटः। एष दुःशासनो द्रौपदीं केशहस्ते गृहीतवान्। एष खलु दौपदी।

हिन्दी अनुवाद

कंचुकी : आपकी बड़ी कृपा है।

दुर्योधन : अब मैं (तुमसे) प्रसन्न हूँ। यह कौन–सा दूत आया है ?

कंचुकी : कृष्ण (केशव) आया है।

दुर्योधन : कृष्ण, यही कहना अभीष्ट है। यही शिष्टाचार है। अरे राजाओं ! दूत के रूप में आए हुए कृष्ण का क्या करना उचित है ?

आप सबने क्या कहा – कि पूजा सामग्री से कृष्ण का सत्कार करो। मुझे यह पसन्द नहीं है। यहाँ तो मैं उसे बन्दी बनाना ही हितकारी समझता हूँ।

कृष्ण के बन्दी बना लिए जाने पर पाण्डव लोग अन्धे के समान गतिहीन हो जाएंगे। पाण्डवों के गतिहीन तथा बुद्धिरहित हो जाने से यह सम्पूर्ण पृथ्वी मेरे लिए शत्रु–रहित हो जाएगी।

और भी – जो यहाँ (मन्त्रशाला) में कृष्ण के लिए (सत्कार हेतु) खड़ा होगा। उसे मैं 12 स्वर्ण मुद्राओं का दण्ड दूँगा। अतः आप लोग सावधान रहें अर्थात् उठने की गलती न करें। (मन ही मन) मेरे खड़े न होने का क्या उपाय है। अच्छा, उपाय समझ में आ गया। (प्रकट रूप में) अरे बादराण (कंचुकी) ! वह चित्रपट लाओ, जिसमें द्रौपदी के बालों और वस्त्र (साड़ी) का खींचा जाना चित्रित है। (अलग होकर) उस चित्रपट में आँख गड़ाता हुआ कृष्ण के (अभिवाहन के) लिए खड़ा नहीं होऊंगा।

कंचुकी : जैसे आपकी आज्ञा (निकालकर, लौटकर)।

महाराजा की जय हो। यह है वह चित्रपट।

दुर्योधन : मेरे सामने फैलाओ।

कंचुकी : जैसी महाराज की आज्ञा। (फैला देता है।)

दुर्योधन : वाह, वाह ! यह चित्रपट तो देखने योग्य है। इस दुःशासन ने द्रौपदी के केशों को हाथ से पकड़ रखा है। यह द्रौपदी निश्चय ही दुःशासन द्वारा पकड़ी गई, भय से विस्फारित (फैलाए हुए) नेत्रों वाली यह द्रौपदी राहु के मुख में पड़ी चन्द्रकलां के समान दिखाई दे रही है।

दुःशासनपरामृष्टा सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना।

राहुवक्त्रान्तरगता चन्द्रलेखेव शोभते।।7।।

एष दुरात्मा भीमः सर्वराजसमक्षमवमानितां द्रौपदीं दृष्ट्वा प्रवृद्धामर्षः सभास्तम्भं तुलयति।

एष युधिष्ठिरः

सत्यधर्मघृणायुक्तो द्यूतविभ्रष्टचेतनः।
करोत्यपाङ्गविक्षेपैः शान्तामर्षं वृकोदरम्।।8।।
ए इदानीमर्जुनः –
रोषाकुलाक्षः स्फुरिताधरोष्ठ
स्तृणाय मत्वा रिपुमण्डलं तत्।
उत्सादयिष्यन्निव सर्वराज्ञः
शनैः समाकर्षति गाण्डिवज्याम्।।9।।

हिन्दी अनुवाद

दुःशासन से पकड़ी गई और घबराहट के कारण आँखों को फाड़े हुए, यह द्रौपदी ऐसे सुशोभित हो रही है जैसे राहु नक्षत्र के मुँह में फंसी हुई चन्द्रकला सुशोभित होती है।7।

यह दुष्ट भीम द्रौपदी को राजाओं के सामने अपमानित होता हुआ देखकर क्रोध में भर कर सभा भवन में खम्भे को उखाड़ रहा है। यह युधिष्ठिर –

सत्य, धर्म और दया से युक्त होकर, जुए के कारण चेतना हीन (विवेकहीन) होकर आँखों को हिलाकर (संकेत से) भीम को क्रोध से शान्त कर रहा है।8।

—सत्य, धर्म तथा दया से पूर्ण तथा जुआ खेलने से विवेक — रहित हुआ नेत्र के कोर (कोने) के संकेत से भीम के क्रोध को शान्त कर रहा है।

यह अब अर्जुन है —

जो अर्जुन क्रोध पूर्ण आँखों से होंठों को फड़फड़ाता हुआ उस सम्पूर्ण शत्रु—समूह को तिनके के समान तुच्छ समझकर सब राजाओं को नष्ट करने की इच्छा से मानो गाण्डीव धनुष की डोरी को धीरे से खींच रहा है।9।

एष युधिष्ठिरः कुमारावुपेत्य निवारयति—
निचोऽहमेव विपरीतमतिः कथं वा
रोषं परित्यजतमद्य नयानयज्ञौ।
द्यूताधिकारमवमानममृष्यमाणाः स्युः
सत्त्वाधिकेषु वचनीयपराक्रमाः स्युः।।11।।

हिन्दी अनुवाद

यह युधिष्ठिर दोनों राजकुमारों (नकुल तथा सहदेव) के पास जाकर उन्हें रोक रहा है। (तथा मानो उन्हें कह रहा हैं) —

मैं ही नीच हूँ, नहीं तो मेरी बुद्धि कैसे भ्रष्ट होती ? (और मैं जुआ खेलता, परन्तु अब जुए में हार जाने पर) नीति और अनीति को भली—भाँति जानने वाले आप दोनों क्रोध को छोड़ दो। जुए के कारण होने वाले अपमान को न सहने वाले व्यक्ति सत्त्वशाली वीर पुरुषों में निन्दनीय पराक्रम वाले होते हैं।

एष गान्धारगजः

अक्षान् क्षिपन् स कितवः प्रहसन् सगर्वं
संकोचयन्निव मुदं द्विषतां स्वकीर्त्या।
स्वैरासनो द्रुपदराजसुतां रुदन्तीं
काक्षेण पश्यति लिखत्यभिखं नयज्ञः।।12।।

एतावाचार्यपितामहौ तां दृष्ट्वा लज्जायमानौ पटान्तान्तर्हितमुखौ स्थितौ।

अहो अस्य वर्णाढ्यता। अहो भावोपपन्नता ! अहो युक्तलेखता !

सुव्यक्तमालिखितोऽयं चित्रपटः। प्रीतोऽस्मि। कोऽत्र ?

कांचुकीय : जयतु महाराजः।

दुर्योधन : बादरायण ! आनीयतां स विहग—वाहन—मात्र—विस्मितो दूतः।

कांचुकीय : यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रान्तः)

दुर्योधन : वयस्य कर्ण।

प्राप्तः किलाद्य वचनादिह पाण्डवानां
दौत्येन भृत्य दव कृष्णामतिः स कृष्णः।
श्रोतुं सखे ! त्वमपि सज्जय कर्ण ! कर्णौ
नारीमृदूनि वचनानि युधिष्ठिरस्य।।13।।

(ततः प्रविशति वासुदेवः कांचुकीयश्च)

वासुदेव : अद्य खलु धर्मराजवचनाद् धनंजयाकृत्रिममित्रतया चाहवदर्पमनुक्तग्राहिणं सुयोधनं प्रति मयाप्यनुचितदौत्यसमयोऽनुष्ठितः। अथ च,

हिन्दी अनुवाद

यह गान्धार नरेश (शकुनि) है –

जुए में निपुण वह शकुनि पासों को फैंकता हुआ गर्व के साथ हंस रहा है। अपनी कीर्ति से शत्रुओं की प्रसन्नता को कम करता हुआ और स्वतन्त्र होकर बैठता हुआ रोती हुई द्रौपदी को तिरछी नजर (बुरी नजर) से देख रहा है। नीतिकुशल वह आकाश की ओर देखता हुआ पृथ्वी पर कुछ लिख रहा है।12।

ये द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह। यह उस द्रौपदी को देखकर लज्जित होते हुए अपने वस्त्रों में मुँह छिपाये हुए बैठे हैं। ओह, इस चित्रपट के गाढ़े रंग कितने सुन्दर हैं। ओह, इनसे कितने सुन्दर भाव चित्रित हुए हैं। ओह, इसमें कितनी सुन्दर चित्रकारी है। मैं प्रसन्न हूँ। यहाँ कौन है ?

कुंचकी : महाराज की जय हो।

कुंचकी : जैसे आपकी आज्ञा। (चला जाता है)

दुर्योधन : मित्र कर्ण !

वह मलिन – बुद्धि कृष्ण पाण्डवों के कहने से दास के समान दूत बनकर आज आया है। हे मित्र ! तुम भी युधिष्ठिर के, स्त्रियों के समान कोमल (दुर्बल, कायरतापूर्ण) वचनों को सुनने के लिए अपने कानों को तैयार कर लो।

कृष्ण : आज मैंने धर्मराज युधिष्ठिर के कहने पर और अर्जुन से स्वाभाविक मित्रता होने के कारण, युद्ध के अभिमानी एवं कही गई बात को न मानने वाले सुयोधन (दुर्योधन) के प्रति अनुचित दूत के कार्य को स्वीकार कर लिया। और –

अथ च,

कृष्णापराभवभुवा रिपुवाहिनीभ –
कुम्भस्थलीदलनतीक्ष्णगदाधरस्य।
भीमस्य कोपशिखिना युधि पार्थपत्रि –
चण्डानिलैश्च कुरुवंशवनं विनष्टम्।।14।।

इदं सुयोधनशिविरम्। इह हिं,
आवासाः पार्थिवानां सुरपुरसदृशाः स्वच्छन्दविहिता
विस्तीर्णाः शस्त्रशाला बहुविधकरणैः शस्त्रैरुपचिताः।
हेषन्ते मन्दुरास्थास्तुरगवरघटा बृंहन्ति करिणः
ऐश्वर्य स्फीतिमेतत् स्वजनपरिभवादासन्नविलयम्।।15।।

भोः !

दुष्टवादी गुणद्वेषी शठः स्वजननिर्दयः।
सुयोधनो हि मां दृष्ट्वा नैव कार्यं करिष्यति।।16।।

भो बादरायण ! किं प्रवेष्टव्यम्।

स्वजन–निर्दयः सुयोधनः हि मां दृष्ट्वा कार्य नैव करिष्यति।

कांचुकीय : अथ किमथ किम्। प्रवेष्टुमर्हति पद्मनाभः।

वासुदेव : (प्रविश्य) कथं कथं मां दृष्ट्वा सम्भ्रान्ताः सर्वक्षत्रियाः।

अलमलं सम्भ्रमेण। स्वैरमासतां भवन्तः।

दुर्योधन : कथं कथं केशवं दृष्ट्वा सम्भ्रान्ताः सर्वक्षत्रियाः।

अलमलं सम्भ्रमेण। स्मरणीयः पूर्वमाश्रावितो दण्डः। नन्वहमाज्ञप्ताः।

वासुदेव : भोः सुयोधन ! किमास्ते ?

दुयोधन : (आसनात् पतित्वा, आत्मगतम्), सुव्यक्तं प्राप्त एव केशवः।

उत्साहेन मतिं कृत्वाप्यासीनोऽस्मि समाहितः।

केशवस्य प्रभावेण चलितोऽस्म्यासनादहम्।।17।।

अहो बहुमायोऽयं दूतः ! एतदासनमास्यताम् !।

हिन्दी अनुवाद

द्रौपदी के अपमान से उत्पन्न, शत्रु–सेना के हाथियों के गण्ड स्थलों को तोड़ने में तीव्र गदा–धारण करने वाले भीमसेन की क्रोध–अग्नि से तथा अर्जुन के बाणों की तीव्र हवाओं से कौरव वंश रूपी वन युद्ध में नष्ट हो जाएगा।

यह सुयोधन (दुर्योधन) का सैन्य शिविर है। यहाँ पर राजाओं के इन्द्र की नगरी (स्वर्ग) के समान स्वेच्छा से बने हुए सुन्दर आवास (महल) हैं। बड़े शस्त्रागार हैं, जो अनेक साधन सम्पन्न शस्त्रों से खचाखच भरे पड़े हैं। घुड़शाला में स्थिति श्रेष्ठ अश्व–समूह हिनहिना रहे हैं और हाथी चिंघाड़ रहे हैं। यह ऐश्वर्य सम्पन्न सैन्य शिविर अपने बन्धुओं (पाण्डवों) के तिरस्कार के कारण विनाश के कगार (निकट) पर है।

दुष्ट वचन बोलने वाला, गुणों से द्वेष करने वाला, दुष्ट, भाइयों के प्रति निर्दयी यह दुर्योधन मुझे देखकर (सन्धि रूप उचित) कार्य नहीं करेगा।

अरे, बादरायण ! क्या (हम सभाभवन में) प्रवेश कराए।

कंचुकी : क्यों नहीं, क्यों नहीं। आप कृष्ण महाराज प्रवेश के योग्य हैं।

श्रीकृष्ण : (प्रवेश करके) क्यों, क्यों मुझे देखकर ही सभी क्षत्रिय राजा घबरा गए हैं। घबराए नहीं। आप लोग अपनी इच्छानुसार बैठ जाइए।

दुर्योधन : क्या, कृष्ण को देखकर सभी क्षत्रिय घबरा गए ? घबराओं नहीं। मेरे द्वारा सुनाए गए पहले दण्ड को याद रखना। मैंने आपको आज्ञा दी हुई हैं।

श्रीकृष्ण : अरे सुयोधन (दुर्योधन) कैसे बैठे हो ?

दुर्योधन : (आसन से गिरकर, मन ही मन) निश्चय ही कृष्ण आ गया है।

मैं उत्साहपूर्वक न उठने का मन बना कर भी सावधान होकर आसन पर बैठा हूँ। (किंतु) कृष्ण के प्रभाव से मैं अपने आसन से गिर रहा हूँ।

वासुदेव : आचार्य ! आस्यताम् गांगेयप्रमुखा राजानः। स्वैरमासतां भवन्तः। वयमप्युपविशामः। (उपविश्य) अहो दार्शनीयोऽयं चित्रपटः। मा तावत् द्रौपदीकेशघर्षणमत्रा –लिखितम्।

आः ! अपनीयतामेष चित्रपटः।

दुर्योधन : बादरायण ! अपनीयतां किल चित्रपटः।

कांचुकीय : यदाज्ञापयति महाराजः। (अपनयति)

दुर्योधन : भो दूत।

धर्मात्मजो वायुसूतश्च भीमो भ्राताऽर्जुनो मे त्रिदशेन्द्रसूनूः।

यमौ च तावश्विसुतौ विनीतौ सर्वे सभृत्याःकुशलोपपन्नाः।।18।।

वासुदेव : सदृशमेतद् गान्धारीपुत्रस्य। अथ किमथ किम्। कुशलिनः सर्वे। भवतो राज्ये शरीरे च कुशलमनामयं च पृष्ट्वा विज्ञापयन्ति युधिष्ठिरदायः पाण्डवाः –

अनुभूतं महद् दुःखं सम्पूर्णःसमयः स च।

अस्माकमपि धर्म्यं यद् दायाद्यं तद् विभज्यताम्।।19।।

दुर्योधन : कथं कथं दायाद्यमिति।

**वने पितृव्यो मृगयाप्रसंगतः
कृतापराधो मुनिशापमाप्तवान्।
तदा प्रभृत्येव स दारनिस्पृहः
परात्मजनां पितृतां कथं व्रजेत्।।20।।**

अर्जुन : वने मृगया प्रसंगतः कृतापराधः (मे) पितृव्यः मुनिशापम् आप्तवान्। तदा प्रभृति एवं सः रात्मजानां पितृतां कथं व्रजेत्।

हिन्दी अनुवाद

श्रीकृष्ण : आचार्य जी, बैठिए। भीष्म इत्यादि राजाओं ! आप लोग स्वेच्छा से बैठ जाएं हम भी बैठते हैं। (बैठकर) ओह, यह चित्रपट तो बड़ा सुन्दर है। अरे नहीं, इसमें तो द्रौपदी के केशों का खींचना चित्रित है।

ओह, यह चित्र हटाओ।

दुर्योधन : बादरायण ! इस चित्रपट को हटा दो।

कंचुकी : जो महाराज की आज्ञा (चित्रपट हटा देता है)।

दुर्योधन : अरे दूत (कृष्ण)।

धर्मपुत्र युधिष्ठिर, वायु पत्र भीम, इन्द्र पुत्र मेरा भाई अर्जुन, दोनों जुड़े भाई सुनील अश्विनी पुत्र नकुल और सहदेव आदि सभी अपने सेवकों के साथ कुशलता से तो हैं ?

कृष्ण : इस प्रकार कुशल पूछना गान्धारी पुत्र के योग्य ही है। हाँ, तो वे सब सकुशल हैं। आप के राज्य के विषय में तथा शरीर के विषय में भीतर और बाहर की कुशलता तथा आरोग्य के बारे में पूछ कर युधिष्ठिर आदि पाण्डुपुत्र यह निवेदन कर रहे हैं।

(मन में) गान्धारी पुत्र दुर्योधन के लिए ऐसा (अशिष्ट) बोलना उचित ही है। (प्रकट रूप में) और क्या, सभी कुशल पूर्वक हैं। आपको राज्य और शरीर की बाहरी और आन्तरिक कुशलता और नीरोगता को पूछने के बाद युधिष्ठिर आदि पाण्डव आपको यह कहलवा रहे हैं –

हम युधिष्ठिर आदि पाण्डवों ने महान् दुःख झेला है और वनवास के समय को भी पूरा कर लिया है। अब धर्मयुक्त जो हमारा राज्य का हिस्सा है, उसे बाँट दो (हमें दे दो)।

दुर्योधन : अरे, कैसी पैतृक सम्पत्ति।

वन में शिकार के प्रसंग से अपराध करके मेरे चाचा पाण्डु को मुनि का शाप मिल गया था कि तुम अपनी पत्नी से समागम नहीं कर सकते। तब से वह पत्नी से विमुख रहने लगे थे। इसलिए दूसरों से उत्पन्न होने के कारण वह पाण्डु पराये पुत्रों के (तुम्हारे) पिता कैसे हो सकते हैं ? अर्थात् तुम पाण्डु की वास्तविक सन्तान नहीं फिर उसकी सम्पत्ति का हक कैसा ?

वासुदेव : पुराविदं भवन्तं पृच्छामि –
विचित्रवीर्यो विषयी विपत्तिम्
क्षयेण यातः पुनरम्बिकायाम्।
व्यासेन जातो धृतराष्ट्र एष,
लभेत राज्यं जनकः कथं ते।।21।।

मा मा भवान् –

एवं परस्परविरोधविवर्धनेन
शीघ्रं भवेत् कुरुकुलं नृप ! नामशेषम्।
तत् कर्तुमर्हति भवानपकृष्य रोषं
यत् त्वां युधिष्ठिरमुखाः प्रणयाद् ब्रुवन्ति।।22।।

दुर्योधन : **भो दूत ! न जानाति भवान् राज्यव्यवहारम्**
राज्यं नाम नृपात्मजैः सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते
तल्लोके न तु याच्यते न तु पुनर्दीनाय वा दीयते।
कांक्षा चेन्नृपतित्वमाप्तुमचिरात् कुर्वन्तु ते साहसं
स्वैरं वा प्रविशन्तु शान्तमतिभिर्जुष्टं शमायाश्रमम्।।23।।

वासुदेव : **भो सुयोधन ! अलं बन्धुजने पुरुषमभिधातुम।**
पुण्य संचयसमप्राप्तामधिगम्य नृपश्रियम्।
वंचयेद् यः सुहृद् बन्धून् स भवेद्विफलश्रमः।।24।।

श्रीकृष्ण : पुरानी बातों के ज्ञाता आपको मैं पूछता हूँ –

आपके पितामह विषयी विचित्रवीर्य क्षयरोग के कारण विपत्ति (मृत्यु) को प्रिय हो गया था। फिर यह तुम्हारा पिता धृतराष्ट्र अम्बिका में व्यास द्वारा उत्पन्न किया गया था। तो तुम्हारे पिता ने फिर कैसे राज्य प्राप्त किया।

हे राजन् ! इस तरह आपस में झगड़ा बढ़ने से कुरुवंश का शीघ्र विनाश हो जाएगा। इसलिए आप क्रोध को शान्त करें तथा वह करें तो युधिष्ठिर आदि प्रेमपूर्वक आपसे कह रहे हैं।

दुर्योधन : हे दूत, आप राज्य के व्यवहार को नहीं जानते हैं। क्योंकि –

सहृदय राजकुमारों द्वारा राज्य शत्रुओं को जीतकर भोगा जाता है। राज्य नाम की वस्तु संसार में मांगने से नहीं मिलती और न ही दीन लोगों को राज्य दिया जाता है। यदि पाण्डवों को राज्य पाने की इच्छा है तो वे लड़ाई का साहस करें अर्थात् लड़कर राज्य ले लें अथवा शान्ति प्राप्त करने के लिए इच्छा पूर्वक आकर वन में चले जाएँ, क्योंकि शान्तिप्रिय लोग आश्रम में ही रहते हैं।

श्रीकृष्ण : अरे सुयोधन (दुर्योधन बन्धुजनों के प्रति कठोर वचन कहना उचित नहीं।)

पुण्यों के संचय से प्राप्त राज्यलक्ष्मी को पाकर जो सुहृज्जन अपने बन्धुओं को ठगता है, वह निष्फल प्रयास वाला हो जाता है।

दुर्योधन : **स्यालं तव गुरोर्भूपं कंसं प्रति न ते दया।**
कथमस्माकमेवं स्यात् तेषु नित्यापकारिषु।।25।।

वासुदेव : **अलं तन्मद्दोषतो ज्ञातुम्।**
कृत्वा पुत्रवियोगार्तां बहुशो जननीं मम।
वृद्धं स्वपितरं बद्धवा हतोऽयं मृत्युना स्वयम्।।26।।

दुर्योधन : **सर्वथा वंचितस्त्वया 'कंसः अलमात्मस्तवेन। न शौर्यमेतत्। पश्य।**
जामातृनाशव्यसनाभितप्ते रोषाभिभूते मगधेश्वरेऽथ।
पलायमानस्य भयातुरस्य शौर्य तदेतत् क्व गतं तवासीत्।।27।।

वासुदेव : **भोः सुयोधन ! देशकालावस्थापेक्षि खलु शौर्य नयानु–गामिनाम्।**
इह तिष्ठतु तावदस्मद्गतः परिहासः स्वकार्यमनुष्ठीयताम्।
कर्तव्यो भ्रातृषु स्नेहो विस्मर्तव्या गुणेतराः
सम्बन्धो बन्धुभिः श्रेयान् लोकयोरुभयोरपि।।28।।

दुर्योधन : **देवात्मजैर्मनुष्याणां कथं वा बन्धुता भवेत्।**
पिष्टपेषणमेतावत् पर्याप्तं छिद्यतां कथा।।29।।

वासुदेव : (आत्मगतम्)

प्रसाद्यमानः साम्नाऽयं न स्वभावं विमुंचति।
हन्त ! संक्षोभयाम्येनं वचोभिः परुषाक्षरैः।।30।।
अन्वय–अयं साम्ना प्रसाद्यमानः स्वभावं न विमुंचति।
हन्त, परुषाक्षरैः वचोभिः एनम् संक्षोभयामि।

हिन्दी अनुवाद

दुर्योधन : (जब) अपने पिता के साले राजा कंस के प्रति तुझे दया नहीं आई तो (हमारा) सदा अपकार (विरोध) करने वाले उन (पाण्डवों) पर हमें कैसे दया आ सकती है।

कृष्ण : (मामा कंस के मारने में) मेरा दोष बिल्कुल मत समझिए। मेरी माता को बहुत बार पुत्र वियोग से पीड़ित करके और अपने बूढ़े पिता उग्रसेन को बन्दी बनाकर वह मृत्यु द्वारा स्वयं मारा गया।

दुर्योधन : तुमने कंस को खूब ठगा। अपनी प्रशंसा रहने दो। यह तुम्हारी वीरता नहीं है। देखो अपने दामाद कंस की मृत्यु के दुःख से व्याकुल, मगध अधिपति जरासन्ध के अत्यन्त क्रुद्ध हो जाने पर भय से घबराकर भागते हुए तुम्हारी वह वीरता उस समय कहाँ चली गई थी।

वासुदेव : हे सुयोधन (दुर्योधन) नीति का अनुसरण करने वालों के लिए शूरवीरता देश और काल के अनुसार होती है। अच्छा अब हमारे विषय में मजाक मत करो। अपना काम करो।

अपने भाइयों (पाण्डवों) पर तुम्हें स्नेह दिखाना चाहिए और उनके दोष अन्य सब बातें भुला देनी चाहिए। अपने बन्धुजनों के साथ दोनों लोकों में सम्बन्ध बनाए रखना ही कल्याणकारी होता है।

दुर्योधन : पाण्डव लोग देवताओं के पुत्र हैं और हम कौरव मनुष्यों के पुत्र हैं। भला देव –पुत्रों के साथ कैसे हो सकता है बार–बार मित्रता की बात करना तुम्हारे लिए व्यर्थ है। यह कथन पुनः पीसने के समान व्यर्थ है इस बात को छोड़ो। मतलब की बात करो।

कृष्ण : (मन में)

शान्ति से समझाए जाने पर दुर्योधन नहीं मानेगा अर्थात् अपने दुष्ट स्वभाव को नहीं छोड़ेगा। अच्छा तो इसे कठोर वचनों से डराता हूँ। (दुष्ट लोगों के लिए कठोर वचन कहना ही ठीक है)।

वासुदेव : भो !

(प्रकाशम्) भोः सुयोधन ! किं न जानीषेऽजुर्नस्य बलपराक्रमम् ?

दुर्योधन : न जाने ?

वासुदेव : भोः ! श्रूयतां

कैरातं वपुरास्थितः पशुपतिर्युद्धेन सन्तोषितो
वह्नेः खाण्डवमश्नतः सुमहती वृष्टिः शरैश्छादिता।
देवेन्द्रार्तिकरा निवातकवचा नीताः क्षयं लीलया
नन्वेकेन तदा विराटनगरे भीष्मादयो निर्जिताः।।31।।
अपि च, तवापि प्रत्यक्षमपरं कथयामि।
ननु त्वं चित्रसेनेन नीयमानो नभस्तलम्।
विक्रोशन् घोषयात्रायां फल्गुनेनैव मोक्षितः।।32।।

किं बहुना : और अधिक क्या कहें।

दातुमर्हसि मद्वाक्याद् राज्यार्धं धृतराष्ट्रज।

अन्यथा सागरान्तां गां हरिष्यन्ति हि पाण्डवाः।।33।।

दुर्योधन : कथं कथम् हरिष्यन्ति हि पण्डवाः।
प्रहरति यदि युद्धे मारुतो भीमकर्मा
प्रहरति यदि साक्षात् पार्थरूपेण शक्रः।
परुषवचनदक्ष ! त्वद्वचोभिर्न दास्ये
तृणमपि पितृभुक्ते वीर्यगुप्ते स्वराज्ये।।34।।

वासुदेव : भोः कुरुकुलकलंकभूत ! अयशोलुब्ध ! वयं किल तृणान्तराभिभाषकाः।

हिन्दी अनुवाद

कृष्ण : (प्रकट) हे सुयोधन क्या तुम अर्जुन के पराक्रम को नहीं जानते ?

दुर्योधन : नहीं।

कृष्ण : तो सुनो – उस अर्जुन ने किरात (भील) का वेश धारण करके पशुपति (शिव) को युद्ध में (अपने पराक्रम से) प्रसन्न कर दिया था। अग्नि के द्वारा खाण्डव वन को खाए जाने पर उसने बाणों से महान् वर्षा करके वन को ढक दिया था। इन्द्र को पीड़ित करने वाले निवात – कवच राक्षसों को बिना परिश्रम के ही नष्ट कर दिया था। निश्चय ही उस अकेले ने बृहन्नला बनकर विराटनगर में भीष्म आदि महान् योद्धाओं को हरा दिया था।

और भी – एक और तुम्हारे सामने की बात बतलाता हूँ। ग्वालों की यात्रा में चित्रसेन नामक गन्धर्व द्वारा पकड़कर आकाश में ले जाते हुए तुम रोते चिल्लाते हुए अर्जुन के द्वारा छुड़वाए गए थे।

अधिक क्या कहूँ –

हे धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन ! मेरे कहने से तुम राज्य का आधा हिस्सा (पाण्डवों को) दे दो। नहीं तो, निश्चय ही पाण्डव समुद्र तक फैली हुई, तुम्हारी पृथ्वी (राज्य) को हर लेंगे।

दुर्योधन : यह कैसे कहते हैं ! पाण्डव सारी पृथ्वी ले लेंगे ?

– हे कठोरभाषी ! यदि युद्ध में भीम के रूप में (स्वयं) वायु देवता भी (मेरे साथ) लड़े, यदि अर्जुन के रूप में (स्वयं) इन्द्र (आकर) लड़े, (तो भी) तुम्हारे कहने से (अपनी) शक्ति से रक्षित, पैतृक राज्य में से एक तिनका भी न दूँगा।

श्रीकृष्ण : हे कुरुवंश के कलंकभूत ! हे अपयश को चाहने वाले। निश्चय ही हम बीच में तृण रखकर तुम्हारे साथ बात करेंगे।

दुर्योधन : अरे ग्वाले ! तृण बीच में रखकर जिससे बोलना चाहिए, ऐसे तो तुम हो।

अवध्यां प्रमदां हत्वा हयं गोवृषमेव च।
मल्लानपि सुनिर्लज्जो वक्तुमिच्छसि साधुभिः।।35।।

वासुदेव : भोः सुयोधन। ननु क्षिपसि माम्।

दुर्योधन : ननु सत्यमेवैतत्।

वासुदेव : गच्छामि तावत्।

दुर्योधन : गच्छ गच्छ। पशुखुरोद्धूतरेणरूषितांगो व्रजमेव। विफलीकृतः कालः।

वासुदेव : एवमेवास्तु। न वयमनुक्तसन्देशा गन्तुमिच्छामः तदाकर्ण्यतां युधिष्ठिरस्य सन्देशः।

दुर्योधन : आः ! अभाष्यस्त्वम्।

अहमवधृतपाण्डरातपत्रो द्विजवरहस्तधृताम्बुसिक्तमूर्धा।

अवनतनृपमण्डलानुयात्रैः सह कथयामि भवद्विधैर्न भार्ष।।36।।

वासुदेव : न व्याहरति किल मां सुयोधनः। भोः

शठ ! बान्धवनिः स्नेह ! काक ! केकर ! पिंगल !

त्वदर्थात् कुरुवंशोऽयमचिरान्नाशमेष्यति।।37।।

भो भो राजानः। गच्छामस्तावत्।

दुर्योधन : कथ यास्यति किल केशवः। दुश्शसन ! दुर्मुर्षण ! दुर्बुद्धे ! दुष्टेश्वर ! दूतसमुदाचारमतिक्रान्तः केशवो बाध्यताम्। कथमशक्ताः। दुःशासन ! न समर्थः खल्वसि।

करितुरगनिहन्ता कंसहन्ता स कृष्णः
पशुपकुलनिवासादानुजीव्यानभिज्ञः।
हृतभुजबलवीर्यः पार्थिवानां समक्षं।
स्ववचनकृतदोषो बयतामेष शीघ्रम्।।38।।

वासुदेव : अरे सुयोधन ! (व्यर्थ बातें कहकर) मेरी निन्दा (करता) है। मैंने राक्षसों को मारा था, (स्त्री आदि को नहीं)।

दुर्योधन : हट ! तू बात करने के योग्य नहीं।

हिन्दी अनुवाद

वध के अयोग्य स्त्री (पूतना राक्षसी) को मारकर, घोड़े के रूप में केशी नामक राक्षस को मारकर, बैल के रूप में अरिष्ट नामक राक्षस को मार कर तथा मुष्टि आदि पहलवानों को मारकर बड़े निर्लज्ज होकर तुम साधुओं (सज्जनों) से बात करना चाहते हो।

श्रीकृष्ण : अरे सुयोधन (दुर्योधन) मेरी निन्दा कर रहे हो ?

दुर्योधन : यह तो सत्य ही है।

श्रीकृष्ण : तो मैं चलता हूँ।

दुर्योधन : जाओ, जाओ, पशुओं के खुरों से उड़ी हुई धूल से मलिन अंग वाले तुम वज्र में ही जाओ। (तुमने) समय नष्ट (बेकार) कर दिया।

श्रीकृष्ण : ऐसा ही होगा। किन्तु मैं सन्देश कहे बिना जाना नहीं चाहूंगा। तो युधिष्ठिर का सन्देश सुन लो।

– (सिर पर) श्वेत छत्र धारण किए तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा हाथ में पकड़े जल से अभिषिक्त सिर वाला (मैं बलपूर्वक) कहता हूँ कि तुम जैसे, अधीनस्थ राजाओं (कंस आदि) के अनुचरों (नन्द के भृत्य) के साथ (बिल्कुल) नहीं बोलूँगा।

श्रीकृष्ण : सुयोधन (दुर्योधन) मुझसे बात नहीं करता है। अरे।

हे धूर्त ! बन्धुओं से प्रेम न करने वाले अरे कौए, अरे तिरछी आँख वाले (केकर) अरे बन्दर, तुम्हारे कारण से यह कुरु वंश शीघ्र ही विनाश को प्राप्त हो जायेगा।

हे राजाओं। तो हम जाते हैं।

दुर्योधन : केशव कैसे जा सकता है। हे दुःशासन, अरे दुर्मर्षणा, अरे मुर्ख, हे दुर्बुद्धे, हे दुष्टेश्वर ! दूत को शिष्टाचार को तोड़ने वाले केशव को बाँध लो। क्या सब असमर्थ हैं। अरे दुःशासन ! क्या तुम भी समर्थ नहीं हो।

हाथी, घोड़े को मारने वाला, कंस को मारने वाला यह कृष्ण ग्वालों में रहने के कारण राज व्यवहार से अपरिचित है। भुजबल और शक्ति से रहित है। राजाओं के सामने अपने ही दुर्वचनों से इसने अपराध किया है, अतः इसे शीघ्र बन्दी बना लो।

अयमशक्त। मातुल ! बध्यतामयं केशवः।
कथं पराङ्मुखः पतति।
भवतु, अहमेव पाशैर्बध्नामि। (उपसर्पति)

दुर्योधनः : भो दूत।

सृजसि यदि समन्ताद् देवमायाः स्वमायाः
प्रहरसि यदि वा त्वं दुर्निवारैः सुरास्त्रैः।

हयगजवृषभाणां पातनाज्जातदर्पो
नरपतिगणमध्ये बध्यसे त्वं मयाद्य।।39।।

आः तिष्ठेदानीम्। कथं न दृष्टः केशवः। अयं केशवः। अहो ह्रस्वत्वं केशवस्य। आः तिष्ठेदानीम्। कथं न दृष्टः केशवः। अयं केशवः। अहो दीर्घत्वं केशवस्य। कथं न दृष्टः केशवः। अयं केशवः सर्वत्र मन्त्रशालायां केशवः भवन्ति। किमिदानीं करिष्ये। भवतु, दृष्टम्। भो भो राजानः। एकेनैकः केशवो बध्यताम्। कथं स्वयमेव पाशैर्बद्धाः पतन्ति राजानः। साधु भो जम्भक। साधु।

मत्कार्मुकोदरविनिः सृतबाणजालै –
र्विद्धंक्षरत्क्षतरजिंतसर्वगात्रम्।
पश्यन्तु पाण्डुतनयाः शिविरोपनीतं
त्वां वाष्परुद्धनयनाः परिनिःश्वसन्तः।।40।।

हिन्दी अनुवाद

यह (दुःशासन) भी इस दूत को बांधने में असमर्थ है। मामा जी (शकुनि) इस केशव को पकड़ लो। क्या उल्टे मुंह गिर पड़ा है। अच्छा मैं ही रस्सियों से बाँधता हूँ। पास जाता है।

भले ही तुम अपनी माया को, देवताओं की माया को उत्पन्न कर लो। अथवा तुम न रोके जा सकने वाले देवताओं के अस्त्रों से प्रहार कर लो। राक्षसों के रूप में घोड़े, हाथी और बैल को मारने से उत्पन्न गर्व वाले तुम आज राजाओं के मध्य ही मेरे द्वारा बाँधे जा रहे हो।

आह अभी ठहरो। केशव दिखाई क्यों नहीं दे रहा है। यह है केशव (कृष्ण) ओह कृष्ण कितना छोटा हो गया है। आह अभी रूक जा केशव क्यों नहीं दिखाई दे रहा है। यह केशव है। अरे, यह तो केशव बहुत बड़ा बन गया है। केशव कैसे दिखाई नहीं दे रहा है। यह केशव है। मन्त्रशाला में सब जगह केशव ही दिखाई दे रहे हैं। अब मैं क्या करूं। अच्छा, समझ में आ गया। अरे राजाओं एक–एक राजा एक–एक केशव को बाँध लो, क्या सभी स्वयं ही अपनी रस्सियों से बंधकर गिर पड़े हो। शाबाश अरे मायावी (छली शाबाश)।

मेरे धनुष के मध्य से निकले हुए बाणों से बिंधे हुए तथा बहते हुए खून से रंगे हुए सम्पूर्ण शरीर वाले तुम्हें अपने शिविर में ले जाते को पाण्डुपुत्र आँखों में आँसू भरकर और गहरी सांस लेकर देखें।

(निष्क्रांतः)

वासुदेव : भवतु, पाण्डवानां कार्यमहमेव साधयामि। भोः सुदर्शन इतस्तावत्।

(ततः प्रविशति सुदर्शनः)

वासुदेव : सुदर्शन ! अप्रतिहतपराक्रमो भव।
सुदर्शन : अनुगृहीतोऽस्मि।
वासुदेव : दिष्ट्या भवान् कर्मकाले प्राप्तः।
सुदर्शन : कथं कथं कर्मकाल इति। आज्ञापयुत भगवानाज्ञापयतु।

हिन्दी अनुवाद

(चला जाता है)

वासुदेव : अच्छा, लो पाण्डवों का कार्य (कौरव–वध) मैं ही कर दूँ। हे सुदर्शन (चक्र) ! इधर आओ।

(सुदर्शन का रंगमंच पर प्रवेश)

(प्रणाम करता है)

वासुदेव : सुदर्शन ! तेरा पराक्रम (कहीं) न रूके।

सुदर्शन : (आपके आर्शीवाद से) अनुगृहीत हुआ।

वासुदेव : प्रसन्नता का विषय है किं तुम कार्य के समय आ गए।

सुदर्शन : कैसे कार्य का अवसर है ? आज्ञा दीजिए, महाराज ! आज्ञा दीजिए।

सुदर्शन : एष भोः।

श्रुत्वा गिरं भगवतो, विपुलप्रसादा
न्निर्धावितोऽस्मि परिवारिततोयदौघः।
कस्मिन् खलु प्रकुपितः कमलायताक्षः
कस्याद्य मूर्धनि मया प्रविजृम्भितव्यम्।।41।।
क्व नु खलु भगवान् नारायणः !
अव्यक्तादिरचिन्त्यात्मा लोकसंरक्षणोद्यतः।
एकोऽनेकवपुः श्रीमान् द्विषद्बलनिषूदनः।।42।।

हिन्दी अनुवाद

सुदर्शन : यह मैं –

भगवान् (कृष्ण) की महान् कृपा से उनकी वाणी सुनकर मैं बादलों के समूह को हटाकर तेजी से दौड़ कर आया हूँ। कमल–नयन श्रीकृष्ण किसके प्रति क्रोधित हुए हैं। मैंने आज किसके सिर पर प्रकार करना है।

भगवान् श्रीकृष्ण कहाँ पर होंगे।

भगवान् श्रीकृष्ण अव्यक्त प्रकृति (मूल प्रकृति) के आदिकारण हैं। अचिन्तनीय आत्मा हैं। वे संसार की रक्षा के लिये उद्यत रहते हैं। एक होकर भी अनेक शरीर वाले हैं। शोभायुक्त हैं। शत्रुओं के बल को चूर–चूर कर देने वाले हैं।

(देखकर) अरे ये भगवान् हस्तिनापुर के द्वार पर दूत के रूप में उपस्थित हुए हैं। जल कहां होगा ? जल कहाँ मिल सकेगा। हे देवी आकाश गंगे ! पानी दो। अरे, पानी गिर रहा है। (आचमन करके और पास जाकर) भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण) की जय हो। (प्रणाम करता है)।

किं मेरुमन्दरकुलं परिवर्तयामि
संक्षोभयामि सकलं मकरालयं वा।
नक्षत्रवंशमखिलं भुवि पातयामि।
नाशक्यमस्ति मम देव ! तव प्रसादात्।।43।।

वासु देव : भोः सुदर्शन ! इतस्तावत् भोः सुयोधन !
यदि लवणजलं वा कन्दरं वा गिरीणां
ग्रहगणचरितं वा वायुमार्गं प्रयासि।
मम भुजबलयोगप्राप्तसंजातवेगं
भवतु चपल ! चक्रं कालचक्रं तवाद्य।।44।। (मालिनी छन्द)

सुदर्शन : **भोः सुयोधनहतक ! (अति पुनर्विचार्य) प्रसीदतु भगवान्नारायणः।**
महीभारापनयनं कर्तुं जातस्य भूतले।
अस्मिन्नेवं गते देव ! ननु स्याद्विफलः श्रमः।।45।।

सुदर्शन : यदाज्ञापयति भगवान् नारायणः। कथं कथं गोपालक इति।

हिन्दी अनुवाद

सुदर्शन : क्या मैं (सुदर्शनचक्र) मेरुपर्वत और मन्दर पर्वत को उल्ट कर रख दूं। अथवा सम्पूर्ण समुद्र को आलोडित (मथना) कर दूँ। अथवा सम्पूर्ण नक्षत्र समूह को पृथ्वी पर गिरा दूँ। हे देव ! आपकी कृपा से मेरे लिये कुछ भी असंभव नहीं है।

वासुदेव : हे सुदर्शन ! यहाँ आओ। अरे सुयोधन !

– (प्राण रक्षा के लिए) यदि तू समुद्र में (घुसना चाहता है तो भले ही घुस जा), पर्वतों की गुफाओं में (छिपना चाहता है तो छिप जा), नक्षत्रों के मार्ग पर (दूर जाना चाहता है तो जा), जो (अथवा) वायु के मार्ग (तक जाना चाहे तो वहाँ भी चला जा), अरे चपल ! मेरी भुजाओं के सम्पर्क से प्राप्त और संजात (भयंकर) वेग वाला (मेरा यह) चक्र आज (वहीं) तेरे लिए कालचक्र सिद्ध होगा। (तुझे समाप्त कर डालेगा।)

सुदर्शन : अरे दुष्ट सुयोधन (दुर्योधन) ! फिर विचार करके भगवान् नारायण। (श्रीकृष्ण) शान्त हों। हे भगवान् इस दुर्योधन से इस प्रकार आसानी से नष्ट हो जाने से पृथ्वी के भार को दूर करने के लिए पृथ्वी पर उत्पन्न हुए तुम्हारा परिश्रम बेकार जायेगा। अर्थात् इसे युद्ध में मारना ही उचित रहेगा।

श्रीकृष्ण : हे सुदर्शन ! क्रोधवश मैं शिष्टाचार भूल गया अब तुम अपने स्थान (अभीष्ट स्थल) पर चले जाओ। (अर्थात् वापिस लौट जाओ।)

सुदर्शन : जैसे भगवान् नारायण की इच्छा। क्या दुर्योधन आपको ग्वाला कहकर पुकार रहा है। आप तो तीन चरणों से तीनों लोकों को नापने वाले पूज्य भगवान् विष्णु हैं। हे राजाओं आप इन श्रीकृष्ण की शरण में चले जाओ। सो मैं भी चलता हूँ।

त्रिचरणातिक्रान्तत्रिलोको नारायणः खल्वत्रभवान्।
शरणं व्रजन्तु भवन्तः। यावद्गच्छामि।
अये ! एतद्भगवदायुधवरं शार्गं प्राप्तम्
तनुमृदुललितांगं स्त्रीस्वथावोपनन्नं
हरिकरधृतमध्यं शत्रुसंघैककालः
कनकखचितपृष्ठं भाति कृष्णस्य पार्श्वे,
नवसलिलदपार्श्वे चारुविद्युल्लतेव।।46।।

हे कौमोदकि ! प्रशान्तरोषो भगवान्नरायणः गम्यतां स्वनिलयमेव हन्त निवतृता। यावद् गचछामि।

अये ! अयं पांचजन्यः प्राप्तः।
पूर्णेन्दुकुन्दकुमुदोदरहारगौरो
नारायणाननसरोजकृतप्रसादः।
यस्य स्वनं प्रलयसागरघोषतुल्यं
गर्भाः निशम्य निपतन्त्यसुरांगनानाम्।।47।।

हे पांचजन्य ! प्रशान्तरोषो भगवान् ! गम्यताम् हन्त निवृत्तः अये नन्दकासिः प्राप्तः।

वनिताविग्रहो युद्धे महासुरभयंकरः।
प्रयाति गगने शीघ्रं महोल्केव विभात्ययम्।।48।।

हे नन्दक ! प्रशान्तरोषो भगवान् ! गम्यताम्। हन्त निवृत्तः यावद् गच्छामि ! एतानि भगवादायुधवराणि।

हिन्दी अनुवाद

ये तो (वामन रूप में) तीन चरणों से तीनों लोकों को अतिक्रान्त करने वाले साक्षात् नारायण हैं। आप इनकी शरण में जाएँ। मैं जाता हूँ।

– अरे ! यह भगवान् (विष्णु) का श्रेष्ठ शस्त्र शार्ंग (नामक धनुष) आ गया।

छोटा, कोमल तथा सुन्दर शरीर वाला, स्त्रियों जैसे (कोमल) स्वभाव वाला, भगवान् विष्णु द्वारा बीच में से पकड़ा जाने वाला, शत्रु समूह के लिए मृत्यु स्वरूप तथा ऊपर से स्वर्ण जटित (यह शार्ंग) कृष्ण (श्याम) के समीप, नूतन मेघ के समीप स्थित सुन्दर विद्युत्–लता (बिजली की रेखा) के सामने सुशोभित हो रहा है।

हे कौमोदकी (गदे) ! भगवान् श्रीकृष्ण का क्रोध शान्त हो गया है। अतः अपने घर लौट जाओ। अच्छा, लौट गई। तो मैं भी चलता हूँ।

अरे, पांचजन्य (शंख) आ गया।

यह पूर्ण चन्द्रमा, कुन्द (चमेली) के पुष्प और श्वेतकमल के मध्यभाग तथा मोतियों के हार के समान गौरवर्ण का तथा भगवान् नारायण के मुखकमल द्वारा कृपा प्राप्त, शंख है। जिसकी प्रलयकालीन समुद्र की ध्वनि के तुल्य ध्वनि को सुनकर असुर–स्त्रियों के गर्भ (भय के कारण) गिर जाते हैं।

हे पांचजन्य ! भगवान् का क्रोध शान्त हो गया है। लौट जाओ, अच्छा लौट गये हो। अरे यह नन्दक तलवार आ पहुँची। यह तलवार स्त्री के शरीर के समान (कोमल), युद्ध में बड़े–बड़े राक्षसों के लिये भयंकर है। यह आकाश में शीघ्र ही चल रही है और महान् उल्का (टूटता तारा) के समान सुशोभित हो रही है।

हे नन्दक ! भगवान् का क्रोध शान्त हो गया है। आप लौट जाओ। अच्छा लौट गई। तो मैं भी चलता हूँ। ये भगवान् के उत्तम हथियार (शस्त्र) आ गये हैं।

सोऽयं खंगः खरांशोरपहसिततनुः स्वैः करैर्नन्दकाख्यः
सेयं कौमोदकी या सुररिपुकठिनोरःस्थलक्षोददक्षा।
सैषा शार्ंगभिधाना प्रलयघनरवज्यारवा चापरेखा
सोऽयं गम्भीरघोषः शशिकरविशदः शंखराट् पांचजन्य।।46।।
हे शार्ंग ! कौमोद्कि ! पांचजन्य !
दैत्यान्तकृन्नन्दक ! शत्रुवह्ने !
प्रशान्तरोषो भगवान् मुरारिः
स्वस्थानमेवात्र हि गच्छ तावत्।।50।।

हन्त निवृत्ताः यावद् गच्छामि। अये ! अत्युद्धतो वायुः। अतितपत्यादितः। चलिताः पर्वताः। क्षुब्धा सागराः। पतिताः वृक्षाः। भ्रान्ताः मेघाः। प्रलीना वासुकिप्रभृतयो भुजंगेश्वराः। किन्नु खल्विदम्। अये ! अयं भगवतो वरवाहनो गरुड़ः प्राप्तः।

हिन्दी अनुवाद

हे शार्ंग धनुष, हे कौमोदकी गदा। हे पांचजन्य ! हे राक्षसों का अन्त करने वाली और शत्रुओं के लिए अग्नि स्वरूप नन्दक खंग ! भगवान् श्रीकृष्ण का क्रोध शान्त हो गया है। अतः आप सब अपने अपने स्थान पर लौट जायें।

अच्छा, लौट गये। तो मैं भी चलता हूँ। अरे वायु बड़ी तेजी से बह रही है। सूर्य बहुत तप रहा है। पहाड़ हिल रहे हैं। समुद्र में हलचल है। वृक्ष गिर रहे हैं। बादल उमड़ रहे हैं। वासुकि आदि सर्पराज छिप गये हैं। यह क्या है ? अरे, यह भगवान् श्रीकृष्ण का श्रेष्ठवाहन गरुड़ पहुँच गया है।

हे कश्यप के प्रिय पुत्र गरुड़ ! देवों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण का क्रोध शान्त हो गया है। (अतः) अपने घर लौट जाओ। अच्छा, लौट गया, तो मैं भी जाता हूँ।

वासुदेव : यावदहमपि पाण्डवशिविरमेव यास्यामि।
न खलु न खलु गन्तव्यम्। (नेपथ्ये)
वासुदेव : अये वृद्धरास्वर इव। भो राजन् ! एष स्थितोऽस्मि।

(ततः प्रविशति धृतराष्ट्रः)

धृतराष्ट्र : क्व न खलु भगवान्नारायणः। क्व नु खलु भगवान् नारायणः। क्व नु खलु भगवान् पाण्डव श्रेयस्करः। क्व नु खलु भगवान् विप्रप्रियः। क्व नु खलु भगवान् देवकीनन्दनः।

मम पुत्रापराधात्तु शार्ंगपाणे ! तवाधुना।
एतन्मे त्रिदशाध्यक्ष ! पादयोः पतितं शिरः।।51।।

वासुदेव : हा धिक् ! पतितो अत्र भवान् ! उत्तिष्ठोत्तिष्ठ।

धृतराष्ट्र : अनुगृहीतोऽस्मि भगवान् ! इदमर्ध्य पाद्यं च प्रतिगृह्यताम्।

वासुदेव : सर्व गृह्णामि। किं ते भूयः प्रियमुपहरामि ?

धृतराष्ट्र : यदि मे भगवान् प्रसन्नः, किमतः परमिच्छामि।

वासुदेव : गच्छतु भगवान् पुनर्दर्शनाय।

धृतराष्ट्र : यदाज्ञापयति भगवान् नारायणः। (निष्क्रान्तः)

(भरतवाक्यम्)

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।

महीमेकातपत्रांका राजसिंहः प्रशास्तु नः।।52।।

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

।।दूतवाक्यं समाप्तम्।।

हिन्दी अनुवाद

श्रीकृष्ण : अब मैं पाण्डवों की छावनी (शिविर) की ओर चलूं।

आप मत जाइये, मत जाइये। (नेपथ्य में)

श्रीकृष्ण : अरे, वृद्ध राजा (धृतराष्ट्र) का सा स्वर है। हे राजन्। ये खड़ा हूँ।

(तब धृतराष्ट्र का प्रवेश)

धृतराष्ट्र : भगवान् नारायण श्रीकृष्ण कहां है। पाण्डवों का कल्याण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण कहां हैं। ब्राह्मणों के प्यारे भगवान् कहां हैं। देवकी के पुत्र भगवान् कहां हैं ?

हे शार्ंग धनुष के हाथ में धारण करने वाले भगवान् ! हे देवों के अध्यक्ष ! इस समय मेरे समय मेरे पुत्र दुर्योधन के अपराध के कारण आपके चरणों में मेरा यह सिर पड़ा है अर्थात् पुत्र–अपराध के लिये मुझे क्षमा करें।

(पैरों पर गिरता है)

श्रीकृष्ण : हाय, कष्ट है, पूज्य धृतराष्ट्र मेरे (पैरों पर) गिर गये हैं। उठिये, उठिये।

धृतराष्ट्र : आपकी मुझ पर कृपा है। हे भगवान् ! यह पूजा सामग्री तथा पाँव धोने का जल ग्रहण कीजिए।

श्रीकृष्ण : सब कुछ लेता हूँ। तुम्हारा और क्या प्रिय कार्य करूं।

धृतराष्ट्र : यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो इससे अधिक मुझे और क्या प्रिय वस्तु चाहिए।

श्रीकृष्ण : भगवान् आप फिर से दर्शन देने के लिए जाये।

धृतराष्ट्र : जैसे आप भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा (निकल जाता है)।

(भरत वाक्य)

सागर पर्यन्त विस्तृत, हिमालय और विन्ध्यपर्वत के कर्णाभूषण (किनारों) वाली इस एकच्छत्र पृथ्वी का हमारे महाराज राजसिंह शासन करें।

(सब निकल जाते हैं।)

दूतवाक्य नाटक समाप्त।

2.3.3 शुकनासोपदेशः (कादम्बरीतः)

एवं समतिक्रामत्सु केषुचित् दिवसेषु राजा चन्द्रापीडस्य यौवराज्याभिषेकं चिकीर्षुः प्रतीहारानुपकरणसम्भारसंग्रहार्थमादिदेश। समुपस्थितयौवराज्याभिषेकंच तं कदाचिद्दर्शनार्थमागतमारूढ़–विनयमपि विनीततरं कर्त्तुमिच्छन् शुकनासः सविस्तरमुवाच।

"तात ! चन्द्रापीड ! विदितवेदितव्यस्य अधीतसर्वशास्त्रस्य ते नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति। केवलंच निसर्गत एव अभानुभेद्यमरत्नालोकच्छेद्यमदीप प्रभापनेयमतिगहनं तमो योवनप्रभवम्। अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः। कष्टमनंचनवर्तिसाध्यमपरम ऐश्वर्य्यतिमिरान्धत्वम्। अशिशिरोपचारहार्येऽतितीव्रः दर्पदाहज्वरोष्मा। मततममूलमन्त्रशम्यः विषमो विषय–विषास्वादमोहः। नित्यमस्नानशोचमबध्यः बलवान् रागमलावलेपः। अज स्त्रमक्षपावसानप्रबोधा घोरा च राज्यसुखसन्निपातनिद्रा भवति इत्यतः विस्तरेणाभिधीयसे।"

हिन्दी अनुवाद

इस प्रकार कुछ दिन बीत जाने पर राजा तारापीड ने, राजकुमार को युवराज पद पर बैठाने की इच्छा से, उस राज्याभिषेक की सामग्री (सामग्री) एकत्रित करने के लिए सेवकों (द्वारपालों) को आदेश दिया। जब युवराज के पद पर बैठने का समय उपस्थित हुआ, तब एक दिन राजकुमार चन्द्रापीड दर्शन करने के लिए शुकनास (मन्त्री) के पास उपस्थित हुआ, उस समय विनम्र होने पर भी उस चन्द्रापीड को और अधिक विनम्र करने की इच्छा से शुकनास ने विस्तारपूर्वक कहा –

बेटा ! चन्द्रापीड ! जो कुछ विषय जानना चाहिए, वह सब तुम जानते हो। तुम वेदादि सब शास्त्रों को पढ़े हुए हो, इसलिए तुम्हें थोड़ी भी आवश्यकता उपदेश देने की नहीं है। केवल यही कहना है कि, जवानी में स्वभाव से ही जो अन्धकार पैदा होता है, वह सूर्य द्वारा भी दूर नहीं किया जा सकता, किसी रत्न (मणि) के प्रकाश से भी उसे नष्ट

नहीं किया जा सकता तथा दीपक के आलोक से भी वह हटाया नहीं जा सकता, इसलिए वह अन्धकार अत्यन्त घना (घोर) होकर रहता है। धन–सम्पत्ति का मद ऐसा भयानक होता है कि वह बुढ़ापे में भी शान्त नहीं होता। धन–सम्पत्ति रूप अन्धकार से जो अन्धापन पैदा होता है, वह अन्धापन वास्तविक अन्धेपन से बिल्कुल भिन्न होता है, वह सुरमे (काजल) की सलाई से भी नहीं मिटता, इसलिए वह अन्धता अत्यन्त कष्टदायक होती है। धन का अभिमान–रूप जो तीव्र–ज्वर की गर्मी उत्पन्न होती है, वह चन्दनादि के शीतल उपायों से भी दूर नहीं हो सकती। अतएव वह गर्मी अत्यन्त तीक्ष्ण (तीव्र) होती है। विषय (स्त्री आदि) रूपी विष के उपभोग (स्वाद) से उत्पन्न हुआ मोह मूर्च्छा (अज्ञान) ऐसा कठिन होता है कि वह जड़ी–बूटी और तन्त्र–मन्त्रों से भी नहीं उतरता। अतएव वह मोह सदा ही कठोर होता है। विषयासक्ति रूप मल (कीचड़) का लेप ऐसा प्रबल होता है, कि वह नित्य स्नान की शुद्धता से भी नहीं धुल पाता। एवं राज्य–सुख रूपी निमोनिया बुखार (सन्निपात) की नींद ऐसी भयंकर होती है कि वह हमेशा रात्रि बीत जाने पर भी नहीं जगा पाती। इन सब कारणों से तुम्हें विस्तारपूर्वक कह रहा हूँ।

गर्भेश्वत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वंचेति महतीयं खल्वनर्थ–परम्परा। एकैकमपिसर्वाविनयानामेषामायतनम् किमुत समवायः। यौवनास्म्भे च प्रायःशास्त्रजल– प्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः। अनुज्झितधवलतापि सरागैव भवति यूनां दृष्टिः। अपहरति च वात्येव शुष्कपत्रं समुद्भूतरजोभ्रान्तिरतिदूरम्आत्मेच्छया यौवनसमये पुरुषं प्रकृतिः। इन्द्रियहरिणहारिणी च सततमतिदुरन्तेयम् उपभोगमृगतृष्णिका नवयौवनकषायिता –यात्मनः सलिलानीव तान्येव विषयस्वरूपाण्यास्वाद्यमानानि मधुररतराण्यापतन्ति मनसः।

हिन्दी अनुवाद

जन्म से ही ऐश्वर्यशाली होना, नई जवानी, अद्वितीय सौन्दर्य तथा अलौकिक (अत्यधिक) शक्ति से बातें निश्चय ही बड़े अनर्थ (विपत्ति) के कारण–समूह हैं। इन सब चीजों में से एक–एक अलग–अलग भी सभी प्रकार के दुर्व्यवहारों (अभिमानों) का स्थान होता है और यदि ये सब एक जगह एकत्रित हो जाएं, तो कहना ही क्या अर्थात् चारों चीजें मिलकर तो मनुष्य को और अधिक विपत्ति में डाल देती हैं। यौवन के प्रारम्भ में मनुष्य की बुद्धि वेद–शास्त्र रूपी जल से धुलने के कारण पवित्र होते हुए भी अक्सर मैली हो जाती है। युवकों की दृष्टि पुतलियों में सफेदीपन को धारण करती हुई लाल रंग की हो जाती है अर्थात् युवकों की दृष्टि प्रेम करने वाली हो जाती है। रजोगुण के कारण उत्पन्न भ्रम के कारण मनुष्य का स्वभाव उसे बहुत दूर (कर्त्तव्य से दूर) उसी प्रकार ले जाता है, जिस प्रकार धूल उड़ाने वाली आंधी सूखे पत्ते को उड़ा कर बहुत दूर ले जाती है और सर्वदा अत्यन्त दुःख देने वाली संभोग रूपी मृग तृष्णा (झूठी आशा) मनुष्य के इन्द्रिय रूपी हरिणों को हर लेती है अर्थात् जैसे मृग तृष्णा हरिण को पानी की आशा में भटकाती रहती है, ऐसे ही सम्भोग की अभिलाषा इन्द्रियों को भटकाती रहती है। नई जवानी से राग–द्वेष युक्त मनुष्य को उपभोग किए गए पदार्थ मन में उसी प्रकार और अधिक मधुर लगने लगते हैं, जिस प्रकार कसैले स्वाद वाले व्यक्ति को जल पिये जाने पर और अधिक मीठे लगते हैं।

गुरुवचनममलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य। इतरस्य तु करिण। इव शंखाभरणमाननश्योभासमुदयमतिधकतरमुपजनयति। हरित च सकलं अतिमलिनमप्यन्धकारमिव दोषजातं प्रदोषसमयनिशाकर इव। गुरूपदेशः प्रशमहेतुर्वयः परिणाम इव पलितरूपेण शिरसिजजालममलीकुर्वन् शेण तदेव परिणमयति। अयमेव चानास्वादितविषयरसस्य ते काल उपदेशस्य। कुसुमशर–शर प्रहारजर्जरिते हि हृदये जलमिव गलत्युपदिष्टम्। अकारणंच भवति दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुतं वा विनयस्य। चन्दनप्रभवो न दहति अनलः किंवा प्रशमहेतुनानि न प्रचण्डतरी भवति वडवानलो वारिणा।

हिन्दी अनुवाद

गुरु का वाक्य कल्याणकारी होने पर भी अयोग्य व्यक्ति के कान में जल के उपस्थित होने पर महान् कष्ट ही देता है। जैसे निर्मल जल कान में जाने पर (प्रवेश) कष्टकारक होता है। परन्तु वही दूसरे (सज्जन व्यक्ति) के कान में

पहुंचने पर, उसके मुख की शोभा को अत्यधिक बढ़ा देता है। जैसे – शंखों का बना आभूषण हाथी के मुख की शोभा को अलंकृत कर देता है। सायंकाल का चन्द्रमा जिस प्रकार अत्यन्त गाढ़े अन्धेरे को भी नष्ट कर देता है। शान्तिदायक बुढ़ापा जैसे काले बालों को निर्मल करता हुआ उन्हें सफेद बना देता है, वैसे ही शान्तिपूर्ण गुरु का उपदेश भी उन दोषों को निर्मलता के गुणों में बदल देता है। अभी तुमने किसी भोग्य पदार्थो के रस का स्वाद नहीं चखा है, इसलिए तुम्हें उपदेश देने का यही उचित समय है। क्योंकि कामदेव के बाणों के प्रहार से जर्जरित (छिद्रयुक्त) हृदय से उपदेश का वाक्य जल के समान बाहर निकल जाता है। दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्य का वंश और उसका शास्त्र ज्ञान, उसके विनम्र होने का कारण नहीं होता, अर्थात् दुश्चरित्र को वंश और शास्त्र विनीत नहीं बन सकते। देखो, जैसे चन्दन के वृक्ष से उत्पन्न आग क्या जलाएगी नहीं अर्थात् जलाएगी ही (भले ही उसका उत्पादन तत्त्व चन्दन शीतल है) इसी प्रकार शान्ति करने वाले समुद्र जल से क्या समुद्र की आग और अधिक तेज नहीं हो जाती अर्थात् पानी आग को बुझाता है किन्तु समुद्र का पानी समुद्र की आग को बुझाने की अपेक्षा उसे और अधिक भड़का देता है। भाव यह कि चन्दन एवं जल शीतलता का कारण नहीं है अथवा शास्त्र ज्ञान विनय का हेतु नहीं होता।

गुरुकरणम् असुवर्णविरचनमग्राम्यं कर्णाभरणम् ! अतीतज्योतिरालोकः, नोद्वेगकरः, प्रजाकरः विशेषेण राज्ञाम्, विरला हि तेषामुपदेष्टारः। प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जना भयात्। उद्दाम–दर्प–श्वयथु–स्थगित–श्रवणाविवराश्चोपदिश्यमानपमपि ते न श्रृण्वन्ति। श्रृण्वन्तोऽपि च गजनिमीलितेनावधीरयन्तः खेदयन्ति हितोपदेशदायिनो गुरून्। अहंकार– दाहज्वर–मूर्च्छान्धकारिता विह्वला हि राजप्रकृतिः, अलीकाभिमानोन्मादकारीणि धनानि, राज्यविषविकार–तन्द्राप्रदा राजलक्ष्मीः।

हिन्दी अनुवाद

गुरु का आदेश, मनुष्यों के वार्धक्य के समान है, इस वार्धक्य (बुढ़ापे) में बालों का सफेद होना आदि विकार भी पैदा नहीं होता है तथा शरीर भी जीर्ण–शीर्ण नहीं होता है अर्थात् बाल सफेद हुए बिना–वृद्धावस्था आए बिना ही वृद्धों में गिनती होने लगती है और गुरु का उपदेश मनुष्य को गौरव प्रदान करने वाला है। वह चर्बी का दोष उत्पन्न नहीं करता है अर्थात् चर्बी बढ़ जाने से मनुष्य मोटा हो जाता है, किन्तु गुरु के उपदेश से बिना किसी चर्बी दोष के मनुष्य स्थूलता (गौरव) को प्राप्त कर लेता है। गुरु का उपदेश कान का सुन्दर आभूषण है किन्तु वह सुवर्ण निर्मित नहीं है। गुरु का उपदेश ऐसा प्रकाश है जो तेज रहित (अतीत ज्योति) है अर्थात् जिस का तेज दिखाई नहीं देता किन्तु उससे मनुष्यों की आँखें खुल जाती हैं। यह उपदेश ऐसा जागरण है जो कष्टदायक नहीं है अर्थात् प्रातःकाल का जागरण मनुष्य को कष्ट देता है किन्तु गुरु का उपदेश किसी भी प्रकार का कष्ट उत्पन्न नहीं करता है। ये उपदेश की बातें राजाओं के लिए विशेष लाभकारी हैं, क्योंकि उनको उपदेश देने वाले विरले ही हैं। भय के कारण लोग राजाओं के वचनों का केवल प्रतिध्वनि के समान अनुकरण करते हैं अर्थात् उनकी हां में हां मिलाते हें। उन्हें अपनी कोई राय नहीं देते और यदि भय का परित्याग करके उन्हें उपदेश देने का साहस करते हैं, तो अत्यधिक घमण्ड रूप सूजन (श्वयथु) से राजाओं के कान के छेद बन्द हो जाते हैं। इसलिए किसी के उपदेश दिये जाने पर भी, वे सुन नहीं पाते है और कदाचित् सुन भी लें, तो भी हाथी के समान आँखें बन्द करके उस उपदेश की अवहेलना (लापरवाही) करते हुए, उन हितकारी उपदेष्टा गुरुओं को कष्ट देते रहते हैं। क्योंकि – राजाओं का स्वभाव के तीव्र बुखार से उत्पन्न बेहोशी से विवेकहीन होकर दूसरों को तंग करने वाला होता है। विशेष रूप से धन–दौलत मिथ्या अभिमान से उन्हें उन्मत्त कर देती है और राज्यलक्ष्मी रूप विष के विकार उनमें तन्द्रा (सुस्ती) उत्पन्न कर देती है। (उपर्युक्त कारणों से ही राजाओं का उक्त स्वरूप होता है।)

आलोकयतु तावत् कल्याणाभिनिवेशी लक्ष्मीमेव प्रथम। इयं हि सुभटखेड्गमण्डलोत्पल– वन–विभ्रम लक्ष्मीः क्षीरसागरात् पारिजातपल्लवेभ्यो रागम् इन्दुशकलादेकान्तवक्रताम् उच्चैःश्रवसश्चंलताम्, कालकूटान्मोहनशक्तितम् मदिराया मदम् कोस्तुभमणेरतिनैष्ठुर्य्यम् इत्येतानि सहवास–परिचयवशाद्विरहविनोद चिन्हानि गृहीत्वैवोद्गता। न ह्येवंविधमपरम्

अपरिचितमिह जगति किंचयस्ति, यथेयमनार्या। लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते, दृढ़गुणपाश–सन्दान निष्पन्दीतापि नश्यति, उद्दाम–दर्प भटसहस्त्रोललासिततासिलता– पंचर–विधृताप्यपक्रामति, मदजलदुर्निनाधकारगज–जन–घटा–परिपालिपाति प्रपलायते, न परिचयं रक्षति, नाभिजनमीक्षते, न रूपमालोकयते, न कुलक्रममनुवर्त्तते, न शीलं पश्यति, न वैदग्ध्यं गणयति, न श्रुतमाकर्णयति, न धर्मनुरुध्यते, न त्यागमाद्रियते, न विशेषज्ञतां विचारयति, नाचारं पालयति, न सत्यमवबुध्यते, न लक्षणं प्रमाणीकरोति। गन्धर्वनगरलेखेव पयत एव नश्यति।

हिन्दी अनुवाद

हे चन्द्रापीड ! तुम मंगल के लिए प्रयत्नशील हो, इसलिए पहले लक्ष्मी हो ही विचार कर देखो। यह लक्ष्मी, महान् योद्धाओं के खंगसमूह स्वरूप कमल–वन में विचरण करने वाली भ्रमरी के समान है एवं यह क्षीर सागर में से निकालने के समय में पारिजात (मन्दार) वृक्षों के लाल पत्तों से राग (लाली, प्रेम) लेकर निकली, चन्द्रखण्ड से अत्यन्त वक्रता (कुटिलता) लेकर, उच्चैःश्रवा (इन्द्र के घोड़े) से चंचलता (अस्थिरता) लेकर, कालकूट विष के समीप से मोहनी शक्ति (मूर्छित, वशीकरण करने की शक्ति) लेकर, मद्य के समीप से मादकता (उन्मादकपन, उष्णता) लेकर एवं कौस्तुभमणि (भगवान् विष्णु के कंठ रन्त) के समीप से अत्यन्त कठोरता लेकर ही मानो बाहर आई है। ये सभी चीजें लक्ष्मी अपने परिचितों से इसलिए लेकर आई है ताकि उनके विरह में उनकी निशानियों से अपना मनोरंजन (दिल बहला सके) कर सके।

इस संसार में इस लक्ष्मी के सिवा अन्य कोई अपरिचित नहीं है, जैसी यह नीच प्रकृति वाली (दुष्ट) लक्ष्मी है। इस लक्ष्मी को प्राप्त कर लेने पर भी इसका महाकष्ट से सपालन (रक्षण) करना पड़ता है। यह मजबूत गुणों की रस्सी से बाँध कर निश्चल कर रख लेने पर भी चली जाती है। अत्यन्त उपर्युक्त हजारों योद्धाओं से घुमाई गई खंग समूह रूप पिंजरे में फंसा कर रखी जाने पर भी दूसरी ओर चली जाती है। मद जल रूप वृष्टिरूप अन्धकार वाली हाथी रूपी बादलों से घेर कर रखी जाने पर भी भाग जाती है और यह लक्ष्मी न परिचय की परवाह करती है न कुलीन की परवाह करती है न कुलीन की ओर देखती है, न सौन्दर्य को देखती है, न त्याग (दान) को आदर देती है, न विशेष–ज्ञान का विचार करती है, न सदाचार का पालन करती है, न सत्य को मानती है और न ही धन सूचक ध्वज–वज्र आदि निह्नों को प्रामाणिक मानती है। आकाश में गन्धर्व नगर की रेखा के समान देखते ही देखते नष्ट हो जाती है।

अद्याप्यारुढ़–मन्दर परिवर्तावर्त–भ्रान्ति–जनित संस्कारेव परिभ्रमति। कमलिनीसंचरण व्यतिकर–लग्न–नलिन–नाल–कण्टक–क्षतेव नक्वचिदपि निर्भरमाबध्नाति पदम्। अतिप्रयत्नविधृतापि परमेश्वरगृहेषु विविध–गन्ध–गज–गण्ड–मधुपानमत्तेव परिस्खलति। पारुष्यमिवोपशिक्षितुमसिधारासु निवसति।

हिन्दी अनुवाद

यह लक्ष्मी आज भी समुद्र मन्थन के समय मन्दर पर्वत को घुमाने से उसमें जो भंवर उत्पन्न हुई थी, लक्ष्मी उसमें घूम कर संस्कारवश ही मानों अब भी घूमा करती है। कमलिनी में विचरण करने के समय में कमल दण्ड के कांटे चुभ जाने से क्षत–विक्षत पैर के कारण ही मानो लक्ष्मी, किसी स्थान पर भी पैर जमा कर नहीं रखती है। (ऐसी प्रसिद्धि है कि लक्ष्मी कमल वन में रहती है) महाराजाओं के भवनों में अति प्रयत्न से रखी जाने पर भी यह लक्ष्मी, अनेक मदजल की गन्ध वाले हाथियों के गण्डस्तन के मधुपान से मत होकर ही मानो लड़खड़ा जाती है अर्थात् दूसरे राजाओं के पास चली जाती है। कठोरता सीखने के लिए यह तलवार की धाराओं में निवास करती है।

दुष्टपिशाचीव दर्शितानेकपूरुषोच्छ्राया स्वलपसत्त्वमुन्मत्तीकरोति, सरस्वतीपरिगृहीतमीर्ष्ययेव नालिग्ङति जनम् गुणवन्तमपवित्रमिव न स्पृशति, उदारसत्वममग्ङलमिव न बहु मन्यते, सुजनमनिमित्तमिव न पश्यति, अभिजपतमहिमिव लघ्ङयति, शूरं कण्टकमिव परिहरितख दातारं दुःस्वप्नमिवन स्मरति, विनीतं पातकि नमिव नोपसर्पति,

मनस्विनमुन्मत्तमिवोप– हसति। परस्परविरुद्धंचेन्द्रजालमिव दर्शयन्ती प्रकटयति जगति निजं चरितम्। तथा हि सततम् उष्माणमारोपयत्यपि जाड्यमुपजनयति। उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावतामा– विष्करोति, तोयराशिसम्भवा तृष्णां संवर्धयति।

हिन्दी अनुवाद

यह लक्ष्मी अनेक पुरुषों की उन्नति दिखाकर अल्पज्ञ मनुष्यों (दुर्बल) को भी उन्नति की (आशा में) उन्मत्त कर देती है, जैसे दुष्ट राक्षसी अनेक पुरुषों जितनी लम्बाई को दिखाकर दुर्बल व्यक्तियों को भय से उन्मत्त करती है। सरस्वती से युक्त (विद्यमान् विद्वान्) मनुष्य को यह ईर्ष्यावश ही मानों आलिंगन (स्वीकार) नहीं करती है। शौर्य आदि गुणों वाले व्यक्ति को अपवित्र (चाण्डाल) समझ कर स्पर्श नहीं करती है। विशाल हृदय (उदार) व्यक्ति को अमंगल के समान बहुत आदर नहीं करती है। सज्जन को अपशकुन समझ कर नहीं देखती है। कुलीन मनुष्य को सर्प समझकर लांघ कर चली जाती है। शूर–वीर को कांटे के समान छोड़ देती है। दानी का दुःस्वप्न के समान स्मरण भी नहीं करती है। विनम्र व्यक्ति के पास में पापी समझ कर फटकती भी नहीं है। मनस्वी (प्रसन्नचित्त) व्यक्ति को उन्मत्त (पागल) के समान उपहास करती है। यह लक्ष्मी जादू–सा दिखाती हुई मानो इस संसार में परस्पर–विरुद्ध अपना चरित्र प्रकट करती है। जैसे कि – सदा उष्णता गर्मी को धारण करती हुई भी जाड़े को उत्पन्न करती है अर्थात् जड़ता (मूर्खता) को उत्पन्न करती है। उच्च स्थान को उत्पन्न करती है। उच्च स्थान को प्राप्त हुई भी निम्न स्थिति को प्रकटित करती है अर्थात् नीच स्वभाव को प्रकट करती है। समुद्र से उत्पन्न होने पर भी प्यास को बढ़ाती है अर्थात् धन की अभिलाषा को बढ़ाती है। शिव होकर भी अशिव स्वभाव को प्रकट करती है अर्थात् ऐश्वर्य प्रदान करने पर भी दूसरों को पीड़ा देने के कारण अमंगल स्वभाव को प्रकट करती। शारीरिक बल में वृद्धि करती हुई भी लघुता (भारहीनता) को उत्पन्न करती है, अर्थात् सेना की वृद्धि करती है और नीच स्वभाव को प्राप्त कराती है। अमृत के साथ पैदा होने पर भी कड़वे रस वाली है अर्थात् परिणाम में दुःखदायिनी है। शरीर धारिणी होकर भी प्रत्यक्ष देखने में नहीं आती अर्थात् लड़ाई कराने वाली होकर दृष्टिगोचर भी नहीं होती।

यथा यथा चेयं चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म्म केवलमुद्वमति। तथाहि, इयं संवर्द्धनववरिधारा तृष्णाविषवल्लीनाम् व्याधगीतिरिन्द्रिय– मृगाणाम्, परामर्शधूमलेखा सच्चरितत्राणाम्, विभ्रमशय्या मोहदीर्घनिद्राणाम। निवासजीर्ण –वलभी धनमदपिशाचिकानाम, तिमिरोद्‌गतिः शास्त्रदृष्टीनाम्, पूरःपताका सर्वाविनयानाम्, उत्पत्तिनिम्नगा क्रोधावेगग्रहाणाम्, आपानभूमिः विषयमधूनाम, संगीतशाला भ्रूविकारनाट्या –नाम् आवासदरी दोषाशीविषाणाम् उत्सारणवेत्रलता सत्पुरुषवरुवहाराणाम्, अकालप्रावट् गुणकलहंसकानाम् पर्णभूमिर्लो–कापवादविस्फोटकानाम् प्रस्तावना कपटनाटकस्य, कदलिका कामकरिणः, वध्यशाला साधुभावस्य, राहुजिह्वा धर्मेन्दुमण्डलस्य।

हिन्दी अनुवाद

जैसे–जैसे यह चंचल लक्ष्मी प्रकट होती है, वैसे–वैसे ही दीप की लौ के समान काजल के समान मलिन पाप कर्म को प्रकट करती रहती है। जैसे कि – यह लक्ष्मी तृष्णा रूपी विष–लताओं को बढ़ाने वाली जलधारा है अर्थात् जैसे जल की धारा विषलताओं को बढ़ाती है वैसे ही यह लालसाओं को बढ़ाती है। इन्द्रिय रूपी हरिणों के लिये वह बहेलिये का गीत है अर्थात् जैसे बहेलिये (शिकारी) का गीत हरिणों को आकर्षित करता है वैसे ही यह लक्ष्मी इन्द्रियों को आकर्षित करती है। सच्चरित्र रूप चित्रों का आवरण करने वाली (ढक देने वाली) धुएं की पंक्ति है अर्थात् जैसे धुएं से चित्र मिट जाते हैं, वैसे यह लक्ष्मी सच्चरित्र को बिगाड़ देती है। मोह रूप दीर्घ निद्रा के लिये विलास–शय्या है, अर्थात् जैसे कोमल शय्या पर खूब नींद आती है वैसे ही यह लक्ष्मी विलास की भूमि है। धनाभिमान रूप पिशाचिनियों के रहने के लिए टूटी–फूटी अटारी है। शास्त्र–रूप आंखों के लिये यह मोतियाबिन्द रोग है, अर्थात् जैसे मोतियाबिन्द रोग से दृष्टि बन्द हो जाती है, ऐसे ही लक्ष्मी द्वारा शास्त्र का देखना बन्द हो जाता है। सब प्रकार के अविनयों (दुर्गुणों) के आगे चलने वाली पताका (झण्डा) है, अर्थात् जैसे पताका से उसके

पीछे आने वाले अनुयायियों का पता चलता है, वैसे ही लक्ष्मी को देखकर दुश्चरित का अनुमान लग जाता है। क्रोध – आवेग (अत्यधिक क्रोध) रूपी सभी मगरमच्छों को उत्पन्न करने वाली नदी है। सम्भोग आदि विषय रूपी शराब की मधुशाला (दुकान) है। भौंके विकार रूपी अभिनय की रंगशाला है। दोष रूपी सर्पों के रहने की गुफा है। सज्जनों के सद्व्यवहारों को दूर भगाने वाली बेंत की छड़ी है।

गुण रूप हंसों के लिये यह लक्ष्मी असमय में प्राप्त वर्षा ऋतु है अर्थात् जैसे वर्षा के समय में हंस लुप्त हो जाते हैं, वैसे ही लक्ष्मी के आने पर गुण लुप्त हो जाते हैं। यह लोकनिन्दा रूपी फोड़े के लिये फैलने का स्थान है। कपट पूर्ण आचरण रूपी नाटक की यह प्रस्तावना (भूमिका) है। कामदेव रूपी हाथी का केले का वन है, अर्थात् जैसे हाथी का प्रिय भोज्य वस्तु कदली (केला) है, वैसे ही लक्ष्मी की प्रिय वस्तु काम (स्वच्छन्द व्यवहार) है। यह साधुभाव (सौजन्य) के लिए हत्या गृह (वध्यशाला) है और धर्माचरण रूपी चन्द्रमण्डल के लिये राहु की जीभ है।

एवंविधयापि चानया दुराजारया कथमपि दैववशेन परिगृहीताः विक्लवा भवन्ति राजानः, सर्वाविनयाधिष्ठानतांच गच्छन्ति। तथाहि, अभिषेकसमय एव चैषां। मण्डलकलशजलैरेव प्रक्षाल्यते दाक्षिण्यमअग्निकार्य्यधूमेनैव मलिनीक्रियते हृदयम् पुरोहितकुशाग्र–सम्मार्जनीभि –विपनीयते क्षान्तिः उष्णीपट्टबन्धेनेवाच्छाद्यते जरामगनस्मरणम्, आतपत्रमण्डलेनेवाप– यार्य्यते परलोकदर्शनम्, नामरपवनैरिवापहयते सत्यवादिता, वेत्रदण्डैरिवोत्सार्य्यन्ते गुणाः, जयशब्दकलकलैरिव तिरस्क्रियन्ते साधुवादाः, ध्वजपटपल्लवैरिव परामृश्यते यशः।

हिन्दी अनुवाद

ऐसी दुराचारिणी इस लक्ष्मी द्वारा जैसे–तैसे भाग्य के कारण ग्रहण किये गये राजा लोग अत्यन्त व्याकुल बने रहते हैं और सब प्रकार के दुराचारों को प्राप्त कर लेते हैं। क्योंकि राज्य अभिषेक के समय ही इन राजाओं की उदारता मानों मांगलिक घड़ों से धुल जाती हैं, अभिषेक–यज्ञ के धुएं से ही मानों हृदय मैला हो जाता है। पुरोहितों की कुश की झाडुओं से ही मानों उनका क्षमा–गुण दूर कर दिया जाता है। रेशमी पगड़ी के बांधने से ही मानो उनका बुढ़ापा आने का स्मरण ढक दिया जाता है अर्थात् उन्हें अपने बूढ़े होने की स्मृति भी भूल जाती है, तभी बूढ़ों का उपहास करते हैं। सिर पर छत्र के फैल जाते ही उन्हें परलोक दिखाना बन्द हो जाता है। चंवर की वायु से ही मानों सत्यवादिता हर ली जाती हैं बेंत की छड़ियों से ही क्षमा–दयादि गुण बाहर कर दिये जाते हैं। 'राजा की जय हो' शब्द से ही मानो सज्जनों के वचन (आशीर्वचन) तिरस्कृत कर दिये जाते हैं। ध्वजा पर संलग्न विस्तृत पताका से ही मानों राजाओं का यश पोंछ दिया जाता है।

केचित् श्रम–वश–शिथिल–शकुनि–गल–पुट–चपलाभिः–मुहूर्त्तमनोहराभिर्मनस्विजन– गर्हिताभिः सम्पद्भिः प्रलोभ्यमानाः, धन–लवलाभावलेपविस्मृतमजन्मानोऽनेकदोषोपचितेन दुष्टासृजेव रागावेशेन बाध्यमानाः, विविधविषय–ग्रास–लालसैः पंचभिरप्यनेक–सहस्त्रासंख्यै –रिवेन्द्रियैरायास्यामानाः, प्रकृतिचंचलतया लब्धप्रसरेण एकेनापि शतहिस्त्रतामिवोपगतेन मनसा आकुलीक्रियमाणा विहणलतामुपयान्ति। ग्रहैरिव गृह्यन्ते, भूतैरिवाभिभूयन्ते, मन्त्रैरिवावेश्यन्ते, सत्वैरिवावष्टभ्यन्ते वायुनेव विडम्ब्यन्ते, पिशाचैरिव ग्रस्यन्ते। कुसुमरजो– विकारैरासन्नवर्त्तिनां शिरः शूलमुत्पादयन्ति, आसन्नमृत्यव इव बन्धुजनम् अपि नाभिजा– नन्ति, उत्कुपित–लोचना इव तेजस्विनो नेक्षन्ते, कालदष्टाव महामन्त्रैरपि न प्रतिबुध्यन्ते, जातुषाभरणानीव सोष्माण। न सहन्ते, दुष्टवारणा इव महामानस्तम्भनिश्चलकृताः न गृहणन्त्युपदेशम् तृष्णाविषमूर्छिताः कनकमयमिव सर्व पश्यन्ति, इषवः इव पानवर्द्धित– तैक्षणयाः परप्रेरिता विनाशयन्ति, दूरस्थितान्यपि फलानीव दण्डविक्षपैर्महाकुलानि शातय– रिूरून्त, अकालकुसुमप्रसवा इव मनोहराकृतयोऽपि लोकविनाशहेतवः, श्मशनाग्नय इवातिरौद्रभतयः, तैमिरिका इवादूरदर्शिनः, उपसृष्टा इव क्षुद्राधिष्ठितभवनाः।

हिन्दी अनुवाद

कुछ राजा लोग ऐसे हैं, जो दूर उड़ने के परिश्रम से शिथिल हुई पक्षी की गर्दन (कण्ठ–देश) के समान चंचल, एवं जुगनु के प्रकाश के समान क्षण भर देखने में सुन्दर, अतएव ज्ञानियों (मनस्वी लोगों) द्वारा निन्दा की गई सम्पत्तियों (धनादि समृद्धियों) से लुभाये जाते हुए, व्याकुलता को प्राप्त हो जाते हैं। वे थोड़े–से धन के लाभ के गर्व

से अपने जन्म के समय के वृतान्त को (अर्थात् अपनी जन्म काल की निम्न अवस्था को) भूल जाते हैं। वात–पित्त कफ आदि विकारों (दोषों) से बढ़े हुए दूषित रक्त के समान विषयासक्ति से सताये जाते हैं। रूप–रस आदि अनेक विषयों के ग्रहण करने की अभिलाषी एवं पांच होती हुई भी (विषयों की आंकिता से) मानों हजारों संख्या को प्राप्त हुई इन्द्रियों से दुःख भोगते रहते हैं। वायु भी मानो उनकी हंसी उड़ाती है। राक्षस मानो उन्हें ग्रस लेते हैं। कामदेव के बाणों से मर्मस्थल पर ताड़ित होते हुए वे मानों तरह– तरह के मुंह बनाते रहते हैं। धन की गर्मी से पकाये जाते हुए अनेक प्रकार की चेष्टाएं करते रहते हैं। तीव्र प्रहार से ताड़ित होकर मानों अपने अंगों को धारण नहीं कर पाते हैं। कर्कट (केंकड़ों) के समान टेढ़ी चाल चलते हैं। अधर्म के कारण चलने में असमर्थ होने के कारण यही मानो वे लंगड़ों के समान दूसरे से चलाये जाते हैं। झूठ बोलने के विष से उत्पन्न हुए मुख में रोग हो जाने के कारण ही मानो वे अत्यन्त कष्ट से बोलते हैं। सप्तपर्णी वृक्ष जिस प्रकार अपने फूलों के परीग से समीपवर्ती लोगों के सिर में पीड़ा देते रहते हैं, उसी प्रकार वे राजा लोग भी रजोगुण से उत्पन्न अपमान सूचक नेत्र रोग से (आंख के इशारे से) समीपवर्ती लोगों को दुःख देते रहते हैं। मृत्यु को प्राप्त होने वाले लोगों के समान वे लोग बन्धुजनों को भी नहीं पहचानते हैं। दुःखनी आई (रुग्ण) आंखों वाले व्यक्ति के समान वे भी तेजस्वी को सहन नहीं कर पाते, अर्थात् जैसे रुग्ण आंखों वाला चमकीले पदार्थ को देखने में असमर्थ होता है, वैसे ही वे लोग भी ईर्ष्यावश तेजस्वी लोगों से आंख नहीं मिला पाते। महा विषैले सर्प (काल) द्वारा डस लिये जाने पर लोग जिस प्रकार विष–वैद्य के मन्त्रों से भी नहीं जाग पाते हैं, उसी प्रकार राजा लोग उत्कृष्ट मन्त्रणाओं (सलाहों) से अभी अपने कर्तव्य को नहीं समझ पाते हैं। लाख (लाक्षा) के बने हुए आभूषण जैसे अग्नि की गर्मी को सहन करने में समर्थ नहीं होते हैं, वैसे ही वे राजा लोग दूसरे के तेज को (प्रतापी व्यक्ति) को सहन नहीं कर पाते हैं। जैसे दुष्ट हाथी बड़े परिमाण के खम्बे से बांधे जाने पर भी महावत के वाक्य (शिक्षा) को नहीं मानते हैं, वैसे ही वे लोग भी अत्यन्त अहंकार से स्वब्धतावश ढीठ (निष्पद) बन कर किसी का भी उपदेश ग्रहण नहीं करते हैं, धन लालसा के विष से मूर्च्छित होकर ही मान वे सब पदार्थों को धन–रूप में ही देखते हैं। शाण पर घिसने से तीखे बने बाण जिस प्रकार धनुष द्वारा छोड़े जाने पर विनाश करने वाले होते हैं, उसी प्रकार वे लोग भी मद्य–पान से उग्र–स्वभाव बढ़ जाने के कारण दूसरों से (सलाहकारों से) प्रेरित होकर प्रजा को नष्ट करते रहते हैं। मनुष्य जिस प्रकार डण्डों को फेंककर दूर लगे हुए आम आदि बड़े–बड़े फलों को तोड़ डालते हैं, उसी प्रकार वे लोग भी साम–दाम आदि दण्ड प्रयोग से बड़े–बड़े वंशों को विनष्ट कर डालते हैं। जैसे मौसमी उत्पन्न फूल सुन्दर होने पर भी लोक विनाश के सूचक होते हैं, वैसे ही राजा लोग सुन्दर होते हुए भी प्रजा के विनाश के कारण (सूचक) होते हैं, श्मशान की अग्नि की राख (भस्म) जिस प्रकार अत्यन्त भयंकर होती है, उसी प्रकार उन लोगों की सम्पत्तियां अत्यन्त भय पैदा करने वाली होती हैं। मोतियाबिन्द रोगी व्यक्ति के समान वे दूर की चीज को देख नहीं पाते हैं। वेश्याओं के घर जैसे दुष्टों (कामी व्यक्तियों) से युक्त होते हैं, वैसे ही उन राजाओं के घर भी नीच लोगों से युक्त होते हैं। वे राजा प्रतिदिन पाप से भरे जाने के कारण ही मानो मोटे (फूले हुए) शरीर वाले हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में वे सैंकड़ों विपत्तियों (दोषों) के आश्रय (लक्ष्य) के प्राप्त करके, बांबी के ऊपर के तिनके पर पड़ी हुई जल की बूंदों के समान स्वयं को पतित हुए भी समझ नहीं पाते हैं।

अपरेतुस्वार्थनिष्पादन–परैर्धनपिशिप–ग्रास–गृधैरास्थननलिनीबकैः द्यूतं विनोद इति, परदा –राभिगमनं वैदग्ध्यमिति, मृगयां श्रम इति, पानं विलास इति, प्रसत्ततां शौर्य्यमिति, स्वदार –परियागः अव्यसनितेति, गुरुवचनावधीरणमपरप्रणेयत्वमिति, अजितभृत्यतां सुखोपसेव्यत्व– मिति, नृत्य–गीत–वाद्यवेश्याभिसक्तिं रसिकतेते, महापराधानाकर्णनं महानुभावतेति, परिभवसहत्वं क्षमेति, स्वच्छन्ता प्रभुत्वकमति, देवावमाननं महासत्त्वतेति, वन्दिजनख्यातिः यश इति, तरलता उत्साह इति, अविशेषज्ञता अपक्षपातित्वमिति, दोषानपि गुणपक्षमध्या– रोपयद्भिरन्तः स्वयमपि विहसद्भिः प्रतारणकुशलैर्धूतेरमाषोचिताभिः।

हिन्दी अनुवाद

दूसरे ऐसे अनेक राजा लोग हैं, जिनकी सभा में स्वार्थ पूरा करने में संलग्न, धन रूपी मांस को खने में गृध्र स्वरूप एवं सभा–मण्डप रूप कमलिनी में छिपे बगुले पक्षी के समान तथा ठगने में कुशल कितने ही धूर्त लोग रहते

हैं, जो राजाओं को इस प्रकार समझाया करते हैं कि – जुआ खेलना मनोविनोद है, पर स्त्री–गमन चतुराई है। शिकार करना परिश्रम (व्यायाम) है, शराब पीना भोग–विलास है, सावधान न होना शूर– वीरता है, अपनी स्त्री को छोड़ देना अनासक्ति है, गुरु के उपदेश को न मानना दूसरे के अधीन न होना, सेवकों को न जीतना (उन्हें खुली छूट देना) सुख पूर्वक सेवा करना है, नाचना, गाना, बजाना और वेश्या में रुचि रसिकता का गुण हैं, बड़े–बड़े अपराधों को न सुनना बड़प्पन है, अपमान का सहना क्षमा है, स्वेच्छाचारिता ही स्वामित्व (स्वतंत्रता) है, देवताओं का अपमान करना महान् शक्तिशाली होने का परिचायक है, स्तुति पाठकों द्वारा की गई प्रशंसा ही यश है, मन की चंचलता उत्साह है, सूक्ष्मदर्शिता का न होना (अच्छे–बुरे को न समझना) पक्षपात से रहित होना है। इस प्रकार ठगने में निपुण धूर्त लोग दोषों को भी गुण के रूप में बदल देते हैं, किंतु अन्दर ही अन्दर मन में हंसते रहते हैं और देवताओं के योग्य स्तुतियों से राजाओं को ठगते रहते हैं। धन के अभिमान से उन्मत्त होकर राजा लोग उन धूर्तों की इस प्रकार की स्तुति से जड़ (अज्ञानी) बन जाते हैं।

आत्मविडम्बनांचानुजीवितनेन क्रियमाणामभिनन्दन्ति। मनसा देवताध्या–रोपणप्रतारणा सम्भूत सम्भावनोपहताश्चान्तः प्रविष्टापरभुजइयमिवात्मबाहुयुगलं सम्भावयन्ति। त्ववगन्तरि –ततृतीयलोचनं स्वललाटमाशाङकन्ते। दर्शनप्रदानमपि अनुग्रहं गणयन्ति, दृष्टिपातमप्यु –पकारपक्षे स्थापयन्ति, सम्भाषणमपि संविभागमध्ये कुर्वन्ति, आज्ञामपि वरप्रदानं मन्यन्ते, स्पर्शमपि पावनमाकलयन्ति। मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, न पूजयन्ति द्विजातीन्, न मानयन्ति मान्यान्, नार्चयन्त्यर्चनीयान्, नाभिवादयन्त्यभिवादार्हान्, नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून् अनर्थकायासान्तरितविषयोपभोग–सुखमित्युपहसन्ति विद्वज्जनम्, जरावैक्लव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धजनोपदेशम् आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय, कुप्यन्ति हितवादिने। सर्वथा तमभिनन्दन्ति, तं पार्श्वे कुर्वन्ति, तं संवर्द्धयन्ति, तेन सह सुखमवतिष्ठते, तस्मै ददति, तं मित्रतामुपनयन्ति तस्य वचनं श्रृण्वन्ति, तत्र वर्षन्ति, तं बहु मन्यन्ते, तमाप्ततामापादयन्ति, योऽहर्निशमनवरतमु– परचितांचलिरधिदैवतमिव विगतान्य– कर्तव्यः स्तौति, यो वा माहात्म्यमुद्भावयति। उपदेष्टारः, नरपतिसहस्त्रभुक्तोज्झितायां लक्ष्म्यामासक्तः मारणात्मकेषु शास्त्रेषु अभियोगः, सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्त, भ्रातर उच्छेद्याः।

हिन्दी अनुवाद

वे राजा लोग नौकरों द्वारा की गई अपनी झूठी प्रशंसा का भी स्वागत करते हैं। अपने में देवता के आरोप की मिथ्या विचार से ठगे जाने के कारण, जो धारणा उत्पन्न होती है, उससे ही उनकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। अतएव मेरी दो भुजाओं के अन्दर दो भुजाएं और छिपी हुई हैं, ऐसा समझ कर वे मानों अपने को विष्णु भगवान् के समान मानते रहते हैं। अपने माथे में एक तीसरा नेत्र त्वचा के अन्दर छिपा हुआ है, ऐसा समझ कर वे अपने को शिव के समान समझते रहते हैं। वे अपना दर्शन देना भी कृपा समझते हैं।

आज्ञा को वर देना मानते हैं। स्पर्श को भी पवित्रता करना समझते हैं। झूठी महिमा के अहंकार से भरे हुए वे देवताओं को प्रणाम नहीं करते हैं, ब्राह्मणों का पूजन नहीं करते, माननीय लोगों का सम्मान नहीं करते, पूजनीय लोगों की पूजा नहीं करते, नमस्कार के योग्य व्यक्तियों को नमस्कार नहीं करते एवं गुरुओं के आने पर खड़े नहीं होते हैं। विद्वानों की यह समझ कर हंसी उड़ाते हैं कि इन्होंने तो विद्योपार्जनादि निरर्थक परिश्रम द्वारा विषय–संभोग से उत्पन्न सुख को तिलांजलि दे दी है। वृद्धों के उपदेश को यह मान कर देखते हैं कि यह तो उनका बुढ़ापे में बड़बड़ाना है। मन्त्री के उपदेश को यह मान कर देखते हैं कि यह तो हमारी बुद्धि का अपमान है। हित बोलने वाले पर क्रोध करते हैं। सभी प्रकार से उसका वे अभिनन्दन करते हैं, उसके साथ ही बातचीत करते हैं, उसको ही अपने पास रखते हैं, उसे ही सहायता करके बढ़ाते हैं, उसके साथ ही सुख से रहते हैं, उसे ही दान देते हैं, उनसे ही मित्रता करते हैं, उनका ही वचन मानते हैं, उसी पर धन की वर्षा करते हैं, उसी का बहुत आदर करते हैं, और उसे ही अपना विश्वास पात्र बनाते हैं, जो दिन–रात निरंतर अन्य सब काम छोड़ कर, हाथ जोड़ कर उपास्य देवता के समान उनकी प्रशंसा करता है अथवा जो व्यक्ति उनकी महिमा को प्रकट करता है। जो राजा अत्यन्त क्रूर उपदेश

से परिपूर्ण कौटिल्य के अर्थशास्त्र को प्रमाण मानते हैं, वध करने वाली क्रिया से अत्यन्त क्रूर स्वभाव वाले पुरोहित लोग जिनके गुरु हैं, दूसरे को ठगने में तत्पर मन्त्रिगण जिनके उपदेशक (सलाहकार) हैं, हज़ारों राजाओं ने जिसे भोग कर छोड़ दिया है।

तदेवं प्रायातिकुटिल–कष्ट–चेष्टा–सहस्त्रदारुणे राज्यतन्त्रे, अस्मिन् महामोहान्धकारिणि च यौवने, कुमार ! तथा प्रयतेथाः यथा नोपहस्यसे जनैः न निन्द्यसे साधुभिः, न धिक्क्रियसे गुरुभिः, नोपालभ्यसे सहृद्भिः न शोच्यसे विद्वद्भिः। यथा च न प्रकाश्यसे विटैः, न प्रहस्यसेऽकुशलैः, नास्वाद्यसे भुजंगैः, नावलुप्यसे सेवकवृकैः, न वंच्यसे धूर्तैः, न प्रलोभ्यसे वनिताभिः, न विडम्ब्यसे लक्ष्म्या, न नर्त्यसे मदेन, नोन्मत्तीक्रियसे मदनेन, नाक्षिप्यसे विषयैः, नावकृष्यसे रागेण, नापह्रियसे सुखेन। कामं भवान् प्रकृत्यैव धीरः, पित्रा च महता प्रयत्नेन समारोपितसंस्कारः, तरलहृदयमप्रतिबुद्धंच मदयन्ति धनानि, तथापि भवद्गुण– सन्तोषो मामेवं मुखरीकृतवान्। इदमेव च पुनः पुनरभिधीयसे–विद्वांसमपि सचेतनमपि महासत्त्वमप्यभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमियं दुर्विनीता खलीकरोति लक्ष्मीरिति। सर्वथा कल्याणैः पित्रा क्रियमाणमनुभवतु भवान् नवयौव–राज्याभिषेकमंगलम्, कुलक्रमागतामुद्वह पूर्वपुरुषैरूढ़ां धुरम्, अवनमय द्विषतां शिरांसि, उन्नमय स्वबन्धुवर्गम्।

हिन्दी अनुवाद

इसलिए हे राजकुमार ! इस प्रकार पूर्वोक्त उत्पन्न दुर्बोध और कष्टदायक, हजारों कार्यों से (कार्य–अधिकता से) भयंकर राज्य–शासन में तथा उत्पन्न मोह के कारण अन्धकारपूर्ण (विवेक शून्य) यौवन में तुम ऐसा प्रयत्न करो कि जिससे मनुष्य तुम्हारी हंसी न उड़ायें, साधु लोग निन्दा न करें, गुरु–जन धिक्कार न करें, मित्रगण उलाहना न दें, एवं विद्वज्जन शोक न करें। कामी (बदमाश) लोग तुम्हारी बुराइयों को प्रकट न करें, कार्य–कुशल लोग तुम्हारा उपहास न करें, धूर्त तुम्हारी सम्पत्ति का भोग न करें, सेवक रूपी भेड़िये तुम्हें लूट न सकें, अथवा तुम्हें फाड़ न सकें, धूर्त लोग न ठग सकें, स्त्रियों से लुभाया न जा सके, लक्ष्मी तुम्हें धोखा न दे सके, कामदेव तुम्हें पालक न बनाए, विषय तुम्हें आकर्षित न करें, उत्कट प्रेम (भोगेच्छा) आकृष्ट न करे, सुख तुम्हें अपने अधीन न कर लें। यद्यपि तुम स्वभाव से ही धैर्यवान् हो और पिता ने बड़े प्रयत्न से सभी उपनयन आदि संस्कार तुम्हारे किए हैं। इसके अतिरिक्त धन– सम्पत्ति भी चंचल मन वाले और अज्ञानी को ही पागल बनाती हैं अर्थात् आप धैर्यवान् आत्मसंयमी तथा ज्ञानी हो। अतः पथभ्रष्ट नहीं हो सकते, फिर भी आपके विद्या–विनय आदि गुणों से सन्तुष्ट होकर ही मैं (शुकनास) तुम्हें इस रूप में कहने के लिए विवश हो रहा हूं और वह मैं फिर तुम्हें बार–बार कर रहा हूं कि – मनुष्य चाहे जैसा विद्वान् हो, जागरूक (चेतन) हो, अत्यन्त शक्तिशाली हो, धैर्यवान् एवं उद्योगी हो, उसे भी यह दुश्चारिणी लक्ष्मी दुर्जन बना देती है। पिता से किए गए मांगलिक नव–यौवराज्याभिषेक का तुम सब कल्याणों के साथ अनुभव करो, तुम्हारे पूर्वजों ने जो भार वहन किया है तुम भी कुल–क्रमागत राज्य शासन के भार को उठाओ। शत्रुओं के सिर को झुका दो एवं बन्धु–जनों को उन्नत करो। अभिषेक हो जाने के बाद दिग्विजय प्रारम्भ करके घूमकर पिता के द्वारा जीती हुई भी सप्तद्वीप रूप भूषण वाली पृथ्वी को फिर से जीतो। यही तुम्हारे प्रताप को फैलाने का समय है। क्योंकि शत्रुओं पर सिक्का जमाने वाला राजा महायोगी के समान सफल आदेश वाला होता है। इतना कह कर शुकनास चुप हो गया।

2.4 अपनी प्रगति जांचिए

1 हितोपदेश के रचयिता कौन है ?
2 दूतवाक्यम् किसकी रचना है ?
3 शुकनासोपदेश किस ग्रन्थ से उद्धृत किया गया है ?
4 कादम्बरी के रचनाकार कौन है ?
5 भास ने कितने नाटकों की रचना की ?

2.5 सारांश

2.5.1 हितोपदेशः (मित्रलाभः)

(1) कबूतरों के राजा चित्रग्रीव तथा चूहों के राजा हिरण्यक की कथा

गोदावरी नदी के किनारे एक काफी बड़ा सेमल का पेड़ था। पेड़ पर बहुत से पक्षी अनेक दिशाओं से आकर रात को ठहरते थे। एक दिन लघुपतनक नामक कौए ने देखा कि यमराज की तरह भयानक एक शिकारी आ रहा है। उसे देखकर किसी भयंकर अनिष्ट की आशंका में वह कौआ उस शिकारी का पीछा करते हुए उड़ने लगा। आगे जाकर देखा कि शिकारी ने जंगल में चावल के कुछ दाने बिखेर दिए और उस पर अपना जाल फैला दिया। कौआ छिपकर आगे की घटना पर नजर रखने लगा। उसने देखा कि चित्रग्रीव नामक कबूतरों का राजा अपने दल के पक्षियों के साथ उड़ता हुआ उधर से गुजरा उसने अपने अनुभव से जान लिया कि जरूर इसमें कुछ कुचक्र रचा गया होगा क्योंकि जंगल में चावलों के दाने कोई यों ही तो नहीं बिखेरता। उसने अपने साथी कबूतरों से कहा कि निर्जन वन में ये चावल कहाँ से आए ? जरूर कुछ गड़बड़ है। कहीं इन चावलों के दानों के प्रलोभन में हमारा वैसा ही विनाश ही न हो जाए जैसे एक बूढ़े बाघ द्वारा लोभी राहगीर की दुर्दशा हुई थी।

कबूतरों द्वारा जिज्ञासा प्रकट किए जाने पर चित्रग्रीव ने बूढ़े बाघ और लोभी पथिक की कथा सुनाई।

परन्तु उनमें से चावल के दानों का लोभी एक कबूतर बोला कि बूढ़ों की बात केवल आपातकाल में ही माननी चाहिए, हमेशा उनकी बातें मानते रहने से तो खाना पीना दूभर हो जाएगा। उसकी बातों पर विश्वास कर चावल के लोभी सभी कबूतर उन दानों को चुगने गए और अन्ततः शिकारी के जाल में फँस गए। तब उन्हें समझ में आया कि चित्रग्रीव की बात न मानने का यह नतीजा है और वे बूढ़ों की बात न मानने की प्रेरणा देने वाले कबूतर की निन्दा करने लगे।

चित्रग्रीव के समझाने पर सभी कबूतर जाल लेकर समूह में उड़ने लगे शिकारी कुछ दूर तक उन्हें इस आशा में देखता रहा कि ये थककर गिर पड़ेंगे पर वे दूर तक जाकर ओझल हो गए। तो वह जंगल को लौट गया।

चित्रग्रीव ने बताया कि गण्ड की नदी के किनारे उसका मित्र हिरण्यक नामक चूहा रहता है वहाँ उड़कर चलो वह इस जाल को काटकर तुम्हें मुक्त कर देगा।

इतने सारे कबूतरों को देखकर हिरण्यक चूहा अपने बिल में जा घुसा पर अपने मित्र चित्रग्रीव की आवाज पहचानकर वह बाहर आया और उन कबूतरों का जाल काटकर उन्हें मुक्त किया और उनका सत्कार किया।

लघुपतनक कौआ हिरण्यक चूहे की इस मित्रतापूर्ण करतूत से बहुत प्रसन्न हुआ उसने हिरण्यक से दोस्ती करने का प्रस्ताव रखा पर उसने कहा कि भक्ष्य और भक्षक के बीच दोस्ती कैसी ? अपनी बात को समझाने के लिए उसने 'वृद्ध व्याघ्र तथा लोभी– पथिक' की कहानी सुनाई। इसी को आगे समझाते हुए उसने अवान्तर कथा कौए, कछुए, मृग और चूहे की सुनाई। सच्चे हृदय से लघुपतनक के बहुत आग्रह करने पर हिरण्यक ने उससे दोस्ती कर ली। दोनों प्रेम से रहने लगे।

कुछ दिनों बाद लघुपतनक ने चूहे से कहा कि अब यहाँ भोजन मिलना कष्टकर लग रहा है अतः मैं अपने मित्र मन्थर नामक कछुआ के पास जाना चाहता हूँ जो दण्डकारण्य में कर्पूर गौर नामक तालाब में रहता है। हिरण्यक चूहा भी उसके साथ हो लिया दोनों उसका साथ पाकर प्रेम से रहने लगे।

एक दिन की बात है कि चित्रांग नामक एक मृग किसी शिकारी द्वारा पीछा किए जाने पर डरकर भागते भागते वहाँ आ पहुँचा उसे देखकर पहले वे तीनों डरे फिर आश्वस्त होकर हरिण के साथ मित्र बनकर रहने लगे। हरिण से शिकारी की बात सुनकर वह मन्थर नामक कछुआ डर गया, वह कहीं दूर तालाब छोड़कर जाने लगा। हिरण्यक आदि भी विपत्ति की भावी आशंका में उसके पीछे चलने लगे। इस दौरान जंगल में जाते हुए कछुए को एक शिकारी ने पकड़ लिया उसे धनुष के साथ बाँधकर घर ले जाने लगा। तीनों मित्र उसे छुड़ाने के उपायों पर

विचार करने लगे। मन्त्रणा के बाद शिकारी को धोखा देने के लिए तीनों में से हरिण एक जलाशय के पास जाकर मृतवत् लेट गया उसे मुर्दा समझकर शिकारी ने वह धनुष जमीन पर रख दिया जिसमें कछुआ बँधा था और हरिण के पास जाकर उसे देखने लगा। हिरण्यक चूहे ने इस दौरान कछुआ का बन्धन काट दिया जिससे कछुआ मुक्त होकर जलाशय में जाकर छिप गया। शिकारी को पास आता देखकर हरिण उठ कर भाग खड़ा हुआ शिकारी जब धनुष के पास आया तो देखा कि कछुआ भी उसके जाल से मुक्त होकर भाग गया।

इसी कथानक को आधार बनाकर आगे की 7 कथाएँ गढ़ी गई हैं।
इसी क्रम में—हरिण, कौए और एक धूर्त सियार की कथा,
जारद्गव (बूढ़े अन्धे) गीध, चिड़िए और बिलाव की कथा,
सन्यासी और धनी चूहे की कथा
बूढ़े वणिक तथा उसकी अनाचारी पत्नी की कथा
शिकारी, हरिण, सुअर और गीदड़ की कथा
राजकुमार, सुन्दर युवती और उसके पति की कथा
धूर्त सियार, कर्पूर—तिलक हाथी की कथा
इन सभी कथाओं के अन्त शिक्षाप्रद पद्य सोदाहरण दिए गए हैं।

2.5.2 दूतव्याक्यम्

दुर्योधन की मन्त्रशाला में सभी राजा विचार—विमर्श के लिये उपस्थित होते हैं। भावी युद्ध के लिये मन्त्रणा करनी है। द्रोण, शकुनि, कर्ण आदि सभी मन्त्रशाला में आ गये हैं। दुर्योधन सबको उनके पद के अनुसार आसन देकर आदरपूर्वक बिठाता है। युद्ध के लिये सेनापति किसे बनाया जाए। इसका निर्णय शकुनि की सलाह पर भीष्म के पक्ष में जाता है। इसी समय कृष्ण के आने का समाचार कंचुकी आकार देती है कि पुरुषोत्तम नारायण पाण्डवों के शिविर से दूत बनकर आये हैं। कृष्ण के लिए कंचुकी से सम्मानजनक शब्दों को सुनकर दुर्योधन कंचुकी से सम्मानजनक शब्दों को सुनकर दुर्योधन कंचुकी को फटकारता है, कि उस गवाले को तुम पुरुषोत्तम कह रहे हो। कंचुकी भयभीत होकर कहता है कि मैं घबराहट के कारण राज—व्यवहार भूल गया था। दुर्योधन के फिर से पूछने पर वह कहता है कि दूत बनकर केशव आया है। फिर लोगों ने कहा कि कृष्ण के लिए अर्घ्य लाया जाए। दुर्योधन ने कहा — उसे बन्दी बनाया जाए। इसके बन्दी बनाये जाने से पाण्डव अन्धे हो जायेंगे और मेरे विरोधी नहीं रहेंगे। दुर्योधन सबको चेतावनी देता है कि कृष्ण के प्रति आदर दिखाने के लिए कोई अपने आसन से खड़ा नहीं होगा। अन्यथा उसे 12 स्वर्णमुद्राएँ दण्ड रूप में देनी पड़ेंगी।

दुर्योधन अपने आसन से खड़ा न होने का उपाय सोचने लगा। इसका उपाय उसे चित्रपट सूझा, जिसमें द्रौपदी का केशाकर्षण चित्रित था। उसने सोचा कि इस चित्रपट को देखते हुए मैं कृष्ण के लिए खड़ा नहीं रहूँगा।

चित्रपट देखते हुए दुर्योधन उसके चित्रकार की प्रशंसा कर रहा है। फिर उसमें पाण्डवों के क्रोध की चर्चा करता है। युधिष्ठिर सब पाण्डवों को चित्र में युद्ध के लिए रोकते हैं। शकुनि प्रसन्न है। द्रोण और भीष्म लज्जित हैं। चित्रपट में वर्णों का रंगबिरंगा पन तथा भावों का सुन्दर विन्यास दुर्योधन को प्रसन्न करता है। वह कहता है 'सुव्यक्तमालिखितोऽयं चित्रपटः।' दुर्योधन को तिरस्कार करते हुए कहता है कि पक्षी की सवारी करने वाले उस दूत को बुलाओ। कृष्ण के प्रवेश करने पर समस्त राज समूह घबराकर खड़ा हो जाता है। फिर कृष्ण ने सबको बिठाया और चित्रपट की ओर देखा। उन्होंने कंचुकी को आदेश दिया कि इस चित्रपट को दूर हटाओ। दुर्योधन ने कृष्ण से पूछा कि धर्मपुत्र, वायुपुत्र और अश्वि पुत्र सभी पाण्डव सकुशल तो हैं। कृष्ण ने कहा सब कुशलपूर्वक हैं और अपना आधा राज्य चाहते हैं दुर्योधन ने कहा कैसा राज्य ? हमारे चाचा तो मुनि के शाप से पत्नी समागम कर नहीं सकते थे। फिर वे दूसरों से पैदा कराये हुए (जारज) पुत्रों के पिता कैसे माने जा सकते हैं। कृष्ण ने उत्तर में कहा कि

तुम्हारे पिता की उत्पत्ति भी तो ऐसी ही है, क्योंकि विचित्रवीर्य क्षयरोग से मर गये थे और उनकी पत्नी से महर्षि व्यास ने धृतराष्ट्र को नियोग द्वारा पैदा किया था।

दुर्योधन ने उत्तर दिया – राज्य भिक्षा में नहीं मिलता है। पाण्डव राज्य चाहते हैं तो लड़कर ले लें। कृष्ण ने समझाया कि अपने बन्धु–बान्धवों के प्रति दया दिखाओ। दुर्योधन ने कहा – तुमने भी तो अपने मामा कंस को मारा था। कृष्ण ने इस सब बातों का युक्तिपूर्वक उत्तर देते हुए कहा कि अब रहने दो, बहुत परिह्वास हो गया।

दुर्योधन फिर कठोर वचन बोलता रहा। कृष्ण ने कहा – तुम अर्जुन के पराक्रम को नहीं जानते हो ? जिसने शिव से युद्ध करके उसे प्रसन्न कर दिया था। भीष्मादि को विराट् नगर में पराजित किया और स्वयं तुमको चित्रसेन से बचाया था।

दुर्योधन ने कहा – कि मैं अपनी पैतृक सम्पत्ति में से कुछ पाण्डवों को नहीं देता। फिर तो अपशब्दों से वातावरण खराब हो गया। अन्त में दुर्योधन कृष्ण से बात करना बन्द कर देता है। यह देखकर कृष्ण ने कहा कि कुरुवंश तुम्हारे कारण विनाश के कगार पर आ गया है। इसके पश्चात् कृष्ण वापिस जाने लगे। इस पर दुर्योधन ने आदेश दिया कि इसे बांध लो। किन्तु कोई भी उसे बाँधने का साहस नहीं कर सका। अन्त में दुर्योधन स्वयं कृष्ण को बाँधने उठता है। कृष्ण अपना विश्वरूप धारण कर लेते हैं और कभी अदृश्य हो जाते हैं और कभी प्रकट हो जाते हैं। कृष्ण की दिव्यशक्ति से सभी राजा बन्धन में पड़ जाते हैं। अन्त में कृष्ण ने अपने शस्त्र–अस्त्रों को बुलाया। उन्होंने सुदर्शन चक्र से कहा कि इसे मार डालो। सुदर्शन ने सम्मति यह दी कि तुम्हें अभी इसे नहीं मारना चाहिए। तुम तो पृथ्वी के भार को दूर करने के लिए पैदा हुए हो। कृष्ण ने कहा कि मैं क्रोध के वशीभूत होकर शिष्टाचार भूल गया था। कृष्ण फिर सुदर्शन चक्र को वापिस लौटने के लिए कहते हैं। सुदर्शन चक्र के जाते समय कृष्ण का शार्गधनुष, कौमुदिकी गदा, पांचजन्य शंख, नन्दक तलवार और गरुड़ वाहन उपस्थित हो जाते हैं। सबको सुदर्शन चक्र यह कहकर लौटा देता है कि अब भगवान् कृष्ण का क्रोध शान्त हो गया है। अभी कृष्ण पाण्डवों के शिविर में लौट आते हैं।

2.5.3 शुकनासोपदेशः

शुकनासोपदेश कादम्बरी का ही एक अंश है। इसमें तारापीड के पुत्र राजकुमार चन्द्रापीड को मंत्री शुकनास के द्वारा राज्याभिषेक होने के पूर्व उपदेश दिया गया है। राजकुमार चन्द्रापीड विधिवत् विद्याध्ययन कर राजभवन को वापस लौट आते हैं तथा राज्याभिषेक की तैयारी में वह एक दिन महामंत्री शुकनास के दर्शन के लिए उनके घर पहुँच जाते हैं। महामंत्री शुकनास युवराज चन्द्रापीड के जीवन में स्वाभाविक रूप से आने वाले दोषों तथा उत्तरदायित्वों को समझाने का उपयुक्त अवसर जान कर इस प्रकार राजकुमार को उपदेश देते हैं –

हे राजकुमार ! आप का कल्याण हो। आप सर्वप्रथम लक्ष्मी को ही देख लें। समुद्र मंथन से जब यह उत्पन्न हुई तो क्षीर सागर के पारिजात पल्लवों से राग, चन्द्रमा से वक्रता, उच्चैःश्रवा से संचलता कालकूट से मोहनशक्ति, मदिरा से मादकता, कौस्तुभ मणि से कठोरता ग्रहण कर उन–उन वस्तुओं के विरह में अपने मनोरंजन के लिए उनके चिह्नों के साथ बाहर निकली। जन्मकाल में मथनी रूपी मन्दराचल के घूमने से क्षीर सागर में जो भंवर पड़ गयी उसका भ्रामकता लक्ष्मी में आज भी विद्यमान है। यह निःस्पृह तथा बड़ी चंचल है। दृढ़ता से बांधकर रखने पर भी चली जाती है। यह किसी से जान पहचान नहीं रखती है तथा कुल–शीलादि का भी विचार नहीं करती है। अपने विविध मायावी रूपों को दिखाने के लिए ही लक्ष्मी ने विराट् पुरुष विष्णु भगवान का आश्रय लिया है। यह मूर्खों के पास निवास करती है तथा सरस्वती के उपासकों से सदा दूर रहती है। इसने अपने विरोधी चरित्र का संसार में एक जाल–सा बिछा रखा है। देखिये न, जल से उत्पन्न होने पर भी लक्ष्मी तृष्णा को बढ़ाती है। उन्नत होकर भी स्वभाव में नीचता लाती है। अमृत की सहोदरा होकर भी कडुका फल देती है। यह चंचला लक्ष्मी जैसे–जैसे चमकती है, वैसे–वैसे दीपशिखा की भाँति मलिन काजल रूपी कर्म उत्पन्न करती है। यह शास्त्ररूपी नेत्रों के लिए अज्ञानरूपी रतौंधी है, शिष्टाचार को हटाने के लिए बेंत की छड़ी है, धर्मरूपी चन्द्रमा को ग्रसन करने के लिए राहु की जीभ है। इस प्रकार यह दुष्टा लक्ष्मी राजाओं द्वारा ग्रहण किये जाने पर भी उन्हें छोड़ देते है। लक्ष्मी

के कुप्रभाव से राजा लोग अनेक प्रकार के अविनयों के घर बन जाते हैं। राज्याभिषेक के मंगल कलशों के जल के अभिषेक से राजाओं की चतुरता धुल जाती है। रेशमी पगड़ी बाँधते ही आने वाले बुढ़ापे को वे भूल जाते हैं। श्वेतछत्र धारण करते ही उन्हें परलोक दिखाई नहीं पड़ता है। लक्ष्मी के प्रलोभन में पड़ राजा लोग ऐसा ज्ञात होता है जैसे किसी दुष्ट ग्रह ने उन्हें पकड़ लिया हो। कामगणों से आहत वे विविध भाव–भंगिमाएँ करते हैं। सप्तपूर्ण के वृक्ष की भाँति रजोविकारों से वे निकटवर्ती लोगों में शिरदर्द उत्पन्न कर देते हैं। मरणासन्न व्यक्ति के समान वे सगे संबंधियों तक को नहीं पहचानते हैं। अहंकार रूपी खम्भे से बँधे दुष्ट हाथी के समान उपदेश वचनों की वे उपेक्षा करते हैं। तृष्णा रूपी विषवेला से लिपटे रहने के कारण वे संसार को कनकमय ही देखते हैं। असमय में खिले हुए फूलों के समान वे संसार का नाश करने को उतारू हो जाते हैं। श्मशान–वह्नि की भाँति उनकी सम्पत्ति भी भयानक होती है। सैंकड़ों दुर्व्यसनों में कसे हुए वे बांवी के ऊपर जमी घास से टपके हुए जल बिन्दुओं के समान अपने पतन को भी नहीं जान पाते हैं। हे राजकुमार ! मैं भलीभाँति जानता हूँ कि आप स्वभाव से धीर तथा शास्त्रीय संस्कारों से युक्त है। राजमद की गन्ध आपको छू तक नहीं गयी है, पर आपकी गुण ग्राहता से सन्तुष्ट होकर ही मैं इस प्रकार कह रहा हूँ। आप राज्याभिषेक के बाद अपने पिताजी के द्वारा जीती गयी सप्तदीपों वाली पृथ्वी को पुनः विजित करें, क्योंकि जो राजा आरम्भ में अपना प्रभाव जमा लेता है उसकी आज्ञाएँ सिद्ध पुरुषों के वचनों के समान अमोघ होती है। इतना सुनकर शुकनास शान्त हो गये। चन्द्रापीड उनके वचनों से प्रबुद्ध एवं पवित्र होकर प्रसन्नचित्त अपने राजभवन को लौट आये।

2.6 मुख्य शब्दावली

- **हितोपदेशः** – वह ग्रन्थ जिसमें हितकारक उपदेश है।
- **नीतिविद्याम्** – नीतिशास्त्र के ज्ञान को
- **मन्त्रयित्वा** – विचार कर
- **पुराविदम्** – प्राचीन बातों के जानने वाले को
- **रजनीकर** – चन्द्रमा

2.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1 नारायण पण्डित
2 भास की
3 कादम्बरी से
4 बाणभट्ट
5 13

2.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

- हितोपदेश के मित्र लाभ की प्रमुख कथाओं का विवेचन कीजिए।
- भास रचित दूतवाक्यम् का सार लिखिए।
- वर्तमान समय के अनुसार शुकनासोपदेश की प्रासंगिकता की समीक्षा कीजिए।
- शुकनासोपदेश का सार लिखिए।
- दूतवाक्यम् का काव्यगतवैशिष्ट्य स्पष्ट कीजिए।

2.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1 हितोपदेश, सम्पादक – नारायण राम, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
2 हितोपदेश – मित्रलाभः, व्याख्याकार – श्रीशेषराज, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
3 भास के नाटक, चन्द्रशेखर उपाध्याय, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली
4 कादम्बरी, व्याख्याकार – शेषराज शर्मा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
5 कादम्बरी–शुकनासोपदेशः, व्याख्याकार – रामपालशास्त्री, चौखम्बा ओरियन्टालिया, दिल्ली

इकाई – 3

अनुवाद

इकाई की रूपरेखा

3.1 परिचय

3.2 इकाई के उद्देश्य

3.3 अनुवाद प्रकरणम्

3.4 अपनी प्रगति जांचिए

3.5 सारांश

3.6 मुख्य शब्दावली

3.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

3.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

3.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

3.1 परिचय

प्रस्तुत इकाई में 'हिन्दी से संस्कृत में सरल अनुवाद कैसे करें ?' इस विषय का विवेचन किया जाएगा। इस इकाई में वाक्य रचना के साधारण नियमों का विवेचन होगा तथा विभिन्न लकार तथा विभिन्न विभक्तियों का प्रयोग किस काल अथवा किस अर्थ में किया जाता है। इसका भी विश्लेषण होगा। प्रमुख प्रत्ययों का भी विवेचन होगा तथा वाच्य परिवर्तन कैसे किया जाता है इसका भी वर्णन होगा। इन सभी का अभ्यास करके विद्यार्थी सरल वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करने में समर्थ होगा।

3.2 इकाई के उद्देश्य

- हिन्दी से संस्कृत में सरल अनुवाद करने में समर्थ होंगे;
- दैनन्दिक जीवन में काम आने वाले वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कर सकेंगे;
- आपस में संस्कृत सम्भाषण कर पाएंगे;
- वाक्य–रचना के साधारण नियमों से अवगत हो सकेंगे;
- वाच्य–परिवर्तन का विवेचन कर पाएंगे।

3.3 अनुवाद प्रकरणम्

वाक्य–रचना के साधारण नियम

1 क्रिया का प्रयोग कर्तृवाच्य में कर्त्ता के अनुसार करना चाहिए।

2 वाक्य में प्रयुक्त किसी पद का (अव्यय के अतिरिक्त) विभक्ति लगाये बिना प्रयोग न करें।

3 विभक्तियों के चिन्ह को स्मरण रखें जो कि निम्नलिखित हैं – जैसे

प्रथमा – ने या जहां कोई भी विभक्ति न लगा सके।

द्वितीया – को

तृतीया – द्वारा, से

चतुर्थी – के लिए

पंचमी – से (अलग होने के अर्थ में)

षष्ठी – का, के, की

सप्तमी – में, पर

4 शब्द क्रम–संस्कृत में वाक्य रचना करते समय कर्ता–कर्म–क्रिया आदि के अपनी इच्छानुसार प्रयोग किया जा सकता है। इसमें शब्दों का क्रम नियत नहीं होता है। किन्तु कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका प्रयोग वाक्य के प्रारम्भ में ही करना होता है। जैसे – सम्बोधन शब्द, प्रश्नावली शब्द, कुछ अव्यय शब्द–हा, बत, अहो आदि।

5 च और वा प्रयोग सम्बद्ध शब्द के बाद में ही करें पहले नहीं।

6 शब्दों की समानता – क्रिया की कर्त्ता या कर्म से समानता, विशेषण और विशेष्य की समानता, सर्वनाम की सम्बद्ध शब्द से समानता तथा उपमान की उपमेय से समानता होना आवश्यक है।

7 एक वचनान्त वर्तमान काल की क्रिया के आगे 'स्म' जोड़ देने से भूतकालवाची क्रिया बन जाती है। जैसे – गच्छति स्म (राम जाता था।)

8 पुरुष और वचन का उचित प्रयोग सब से मुख्य है। संस्कृत में तीन पुरुष हैं। उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष, प्रथम (अन्य) पुरुष।

(क) अस्मद् शब्द का उत्तम पुरुष के साथ प्रयोग होता।

(ख) युष्मद् शब्द का मध्यम पुरुष के साथ प्रयोग होगा।

(ग) शेष शब्दों का अन्य पुरुष के साथ प्रयोग होगा।

9 वाक्य में दो या दो से अधिक कर्त्ता 'च' से मिले हुए हों तो क्रिया उत्तम पुरुष के अनुसार होगा। उत्तम पुरुष के अभाव में मध्यम पुरुष की क्रिया होगी। दोनों के अभाव में अन्य पुरुष की क्रिया होगी।

10 यदि अनेक कर्ता वा से मिले हों तो क्रिया वाक्य के अन्तिम कर्ता के अनुसार होगी। जैसे – वा यूयं वा पुस्तकं पठत।

11 जहां वत् लगता है, वहां विभक्ति नहीं लगती। जैसे – मनुष्यवत् (मनुष्य की तरह)।

अभ्यास 1

उत्तम पुरुष

(वर्तमान काल उत्तम पुरुष की क्रिया का प्रयोग)

अहं पश्यामि।	मैं देखता हूं।
आवां नमावः।	हम दोनों झुकते हैं

वयम् लिखावः।	हम दोनों लिखते हैं।
अहं धावामि।	मैं दौड़ता हूं।
आवाम् पठावः।	हम दोनों पढ़ते हैं।
अहं कथयामि।	मैं कहता हूं।
वयं वदामः।	हम दोनों खेलते हैं।
आवाम् क्रीडावः।	हम दोनों खेलते हैं।

अभ्यास 2

मध्यम पुरुष

(वर्तमान काल मध्य पुरुष की क्रिया का प्रयोग)

त्वं पुस्तकं पठसि।	तू पुस्तक पढ़ता है।
युवां पत्रं लिखथः।	तुम दोनों पत्र लिखते हो।
यूयं पाठं पठथ।	तुम सब पाठ पढ़ते हो।
त्वं कुत्र गच्छसि।	तू कहां जाता है ?
त्वं कन्दुकेन क्रीडसि।	तू गेंद से खेलता है।
यूयं दुग्धं पिबथ।	तुम सब दूध पीते हो।
त्वं किं पश्यसि ?	तू क्या देखता है ?
युवां भोजनं कुरुथ।	तुम सब भोजन करते हो।
युवां कुत्र गच्छथः ?	तुम दोनों कहां जाते हो ?
त्वं कम् पश्यसि ?	तू क्या देखता है।

अभ्यास 3

अन्य (प्रथम) पुरुष

(वर्तमान काल अन्य पुरुष की क्रिया का प्रयोग)

ते कुत्र गच्छन्ति ?	वे सब कहां जाते हैं ?
मोहनः पुस्तकं पठति।	मोहन पुस्तक पढ़ता है।
तौ सत्यं न वदतः।	वे दोनों सत्य नहीं बोलते हैं।
बालिका गुरुम् नमति।	बालिका गुरु का प्रणाम करती है।
छात्राः क्रीडा क्षेत्रे क्रीडन्ति।	छात्र खेल के मैदान में खेलते हैं।
सेवकाः स्वामिनं सेवन्ते।	सेवक स्वामी की सेवा करते हैं।
उद्याने मयूरः नृत्यति।	बाग में मोर नाचता है।
स पादाभ्यां चलति।	वह पैरों से चलता है।
चौरः धनं चोरयति।	चोर धन चुराता है।

ते किं कुर्वन्ति ?	वे सब क्या करते हैं ?

अभ्यास 4

लट् वर्तमान काल

अहं गच्छामि।	मैं जाता हूं।
युवाम् गच्छथः	तुम दोनों जाते हो।
सः पठति।	पह पढ़ता है।
तौ पठतः।	वे दोनों पढ़ते हैं।
ते पठन्ति।	वे सब पढ़ते हैं।

आदर्श अभ्यास 1

लट् लकार उत्तम पुरुष

मैं पुस्तक पढ़ता हूँ।	**अहं पुस्तकं पठामि।**
मैं यहां बैठा हूं।	**अहम् अत्र उपविशामि।**
मैं अपने घर जाता हूं।	**अहं निजगृहं गच्छामि।**
मैं पाठ याद करता हूं।	**अहं पाठं स्मरामि।**
हम दोनों कभीं भी नहीं जाते हैं।	**आवां कुत्रापि न गच्छावः।**
हम प्रतिदिन आपस में खेलते हैं।	**वयं प्रतिदिनं परस्परं क्रीडामः।**
हम रह रोज़ सन्ध्यावन्दन करते हैं।	**वयं प्रतिदिनं संध्यावन्दनं कुर्मः।**
हम दोनों फूलों को सूंघते हैं।	**आवां पुष्पाणि जिघ्रावः।**
मैं गुरु को प्रणाम करता हूं।	**अहं गुरुं नमामि।**
हम सब यज्ञशाला में यज्ञ करते हैं।	**वयं यज्ञशालायां यजामः।**

आदर्श अभ्यास 2

लट् लकार मध्यम पुरुष

आदर्श वाक्य

तू अब कहां जा रहा है ?	**त्वं अधुना कुत्र गच्छसि ?**
तुम प्रतिदिन कहां रहते हो ?	**यूयं प्रतिदिनं कुत्र वसथ ?**
तुम दोनों यहां क्या कर रहे हो ?	**युवाम् अत्र किं कुरुथः ?**
क्या तू हर रोज़ व्यायाम करता है ?	**किं त्वं प्रतिदिनं व्यायामं करोषि ?**
तू प्रातः कहां रहता है ?	**त्वं प्रातः कुत्र वससि ?**
तुम सब धीरे–धीरे दौड़ रहे हो ?	**यूयं मन्दं–मन्दं धावथ ?**
क्या तुम दोनों भोजन खा रहे हो ?	**किं युवां भोजनं भक्षयथः ?**
तुम सब फूलों को देख रहे हो ?	**यूयं पुष्पाणि पश्यथ ?**

आदर्श अभ्यास 3

लट् लकार प्रथम (अन्य) पुरुष

अब सब सो रहे हैं।	**आधुना सर्वे स्वपन्ति।**
छात्र महाविद्यालय कब आते हैं ?	**छात्राः महाविद्यालये कदा आगच्छन्ति ?**
यहां कौन रहता है ?	**अत्र कः वसति ?**
पक्षी प्रातः चहचहाते हैं।	**खगाः प्रातः कूजन्ति।**
यह पुस्तकें चुराता है।	**अयं पुस्तकानि चोरयति।**
राम चुपचाप बैठा है।	**रामः तूष्णीम् उपविशति।**
लव–कुश भाई हैं।	**लव–कुशौ भ्रातरौ स्तः।**
जो सत्य बोलता है वह सज्जन होता है।	**यः सत्यं वदति स सज्जनं भवति।**
वहां कौन पढ़ रहा है।	**तत्र कः पठति।**
स्वामी दयानन्द महापुरुष हैं।	**स्वामी दयानन्दः महापुरुषः अस्ति।**

आदर्श अभ्यास 4

तीनों पुरुषों (अनेक कर्ता) के होने पर क्रिया का निर्धारण

जब वाक्य में अस्मद्–युष्मद् तथा अन्य सर्वनाम संज्ञा आदि शब्द एक साथ कर्ता के रूप में आ जाते हैं, तब क्रिया में वचन आदि तो कर्ताओं की संख्या के अनुसार होते हैं और पुरुष का प्रयोग अस्मद् के अनुसार। अस्मद् के न होने पर युष्मद् के अनुसार और शेष अवस्था में अन्य पुरुष के अनुसार क्रिया का प्रयोग होता है या (अथवा) होने पर बाद वाले पुरुष (कर्ता) के अनुसार क्रिया होती है।

आदर्श वाक्य

वाक्य पुरुष (अनेक विधकर्ता)

मैं और तू यहां आनंद से रहते हैं।	**अहं त्वं च अत्र आनन्देन वसावः।**
क्या वह और राम आज रोगी है।	**किं सः रामश्च अद्य रुग्णौ स्तः ?**
हम और तुम पाठ पढ़ रहे हैं।	**वं यूयं च पाठं पठथः।**

आदर्श अभ्यास 5

च और वा के प्रयोग

आदर्श वाक्य

राम और श्याम जा रहे हैं	**रामः श्यामश्च गच्छः।**
राम, श्याम और कृष्ण मित्र हैं।	**रामः श्यामः कृष्णश्च मित्राणि सन्ति।**
मैं यहां बन्दर और मृग को देख रहां हूं।	**अहं अत्र वानरं मृगं च पश्यामि।**
यह फल खट्ठा है या मीठा ?	**इदं फलं अम्लं अस्ति मधुरं वा ?**

यहां हरि रहता है या मोहन ?	**अत्र हरिः वसति मोहनः वा ?**
राम तीन हैं राम, बलराम और परशुराम।	**रामाः त्रयः सन्ति रामः, बलरामः, परशुरामश्च**
वे या तुम सब जाते है ?	**ते यूयं वा गच्छथः ?**
मैं या तुम जाते हो ?	**अहं त्वं वा गच्छति ?**
तुम या हम जाते हैं ?	**त्वं वयं वा गच्छामः।**
यह क्या है वृक्ष या ठूंठ ?	**अयं किम् वृक्षः स्थाणुः वा ?**

आदर्श अभ्यास 6

लट् लकार (वर्तमान काल)

आदर्श वाक्य

कुछ लड़के बाग में जाते हैं।	**केचित् बालकाः उद्याने गच्छन्ति।**
क्या आकाश में बादल हैं ?	**किम् आकाशे मेघाः सन्ति ?**
तुम इधर–उधर क्यों घूम रहे हो ?	**यूयं इतस्ततः किमर्थ भ्रमथ।**
मैं प्रतिदिन नियम से व्यायाम करता हूं।	**अहं प्रतिदिनं नियमेन व्यायामं करोमि।**
हम पावों से चलते हैं। मुंह से बोलते हैं।	**वयं पादाभ्याम् चलामःमुखेन च वदामः।**
ये लड़कियां विद्यालय से आ रही हैं।	**इमाः कन्याः विद्यालयात् आगच्छन्ति।**
हम सब हरिद्वार जा रहे हैं।	**वयं हरिद्वारं गच्छमः।**
क्या आप फूलों को देख रहे हैं।	**किं भवान् पुष्पाणि पश्यति।**
पक्षी प्रातः चह चहा रहे हैं।	**खगाः प्रातः कूजन्ति।**

आदर्श अभ्यास 7

लङ्लकार (भूतकाल)

आदर्श वाक्य

तुम सब काशी क्यों गये थे ?	**यूयं सर्वे काशीनगरं किमर्थम् अगच्छत ?**
स्वामी दयानन्द एक महापुरुष थे।	**स्वामी दयानन्दः एकः महापुरुषः आसीत्**
मेरा भाई कल दिल्ली गया है।	**मम भ्राता ह्यः दिल्लीनगरं अगच्छत्।**
यह लड़का वहां कृषि विद्यालय में पढ़ता था।	**अयं बालकः तत्र कृषिविद्यालये अपठत्**
कल उन्होंने चल–चित्र देखा था।	**ह्वाः ते चलचित्रम् अपश्यन्।**
तुम पहले कहां रहते थे ?	**त्वं पूर्व कुत्र अवसः।**
हमारा देश पहले पराधीन था।	**अस्माकं देशः पुरा पराधीनः आसीत्।**
हमने आज दूध नहीं पिया।	**वयम् अद्यम दुग्धं न अपिबाम।**

उसका सारा धन नष्ट हो गया।	**तस्य सर्व धनं अनश्यत्।**
हम यहां भी गये, तुम्हारी कीर्ति सुनी।	**वयं यत्रापि अगच्छाम तव कीर्तिम् अशृण्म।**

आदर्श अभ्यास 8

लृट् (भविष्यत्काल)

आदर्श वाक्य

आज रंगशाला में लव–कुश गाना गाएंगे।	**अद्य रंग–शलायां लवकुशौ गीतं गास्यतः।**
सज्जन परलोक में निचत ही सुख पाएंगे।	**सज्जनाः परलोके नूनं सुखं प्राप्स्यन्ति।**
हम दोनों वहां–अनेक प्रकार के फूल सूंघेंगें।	**आवां तत्र नानाविधानि पुष्पाणि घ्रास्यावः।**
राजा दुष्टों को कल दण्ड देगा।	**नृपः दुष्टान् श्वः दण्डयिष्यति।**
क्या तुम आज या कल कहीं जाओगे ?	**किं त्वं अद्य श्वः वा कुत्रचित् गमिष्यसि ?**
आज सायं मैदान में हाकी का मैच होगा।	**अद्य सायं क्रीडाक्षेत्रे हाकीक्रीडासाम्मुख्यं भविष्यति।**
यदि राजा प्रजा की पालना करेगा तो यश पाएगा।	**यदि नृपः प्रजाः पालयिष्यति तदा यशः प्राप्स्यति।**
हम कल बनारस चले जाएंगे।	**वयं श्वः वाराणसीनगरं गमिष्यामः।**
तुम और हम लस्सी पीएंगी।	**यूयं वयं च तक्रं पास्यामः।**
चोर अवश्य सम्पत्ति चुराएगा।	**चौरः नूनं सम्पत्तिं चोरयिष्यति।**

आदर्श अभ्यास 9

लोट् लकार (आज्ञार्थक, निमन्त्रण आदि)

आदर्श वाक्य

बचपन में विद्या और जवानी में धन कमाओ।	**शैशवे विद्यां यौवने च धनं अर्जय।**
सदा सच बोलो, झूठ नहीं।	**सर्वदा सत्यं वद असत्यं न।**
मैं चाहता हूँ राम रावण को जीते।	**अहं इच्छामि रामः रावणं जयतु।**
तुम्हारा सब मार्ग कल्याणकारी होए।	**तव सर्वेपि मार्गः शिवः भवतु।**
अपना पाठ नित्य याद करो।	**स्वपाठं नित्यं स्मरत।**
उस बेचारे रोगी कुत्ते को न मारो।	**तं वराकं रुग्णं कुक्करं न मारयत।**
तुम दोनों अपनी पुस्तक पढ़ो।	**युवां स्वपुस्तकं पठतम्।**
हम सब सन्मार्ग पर चलें।	**वयं सन्मार्गम् अनुसराम।**

शराब पीना बिल्कुल छोड़ दो।	**मद्यपानं सर्वथा त्यजत्।**
किसी की निन्दा न करो।	**कमपि न निन्दत।**

आदर्श अभ्यास 10

कर्ताकारक और कर्मकारक (प्रथम और द्वितीया विभक्ति)

आदर्श वाक्य

राजा विक्रमादित्य राजसिंहासन पर बैठे हैं।	**नृपः विक्रमादित्यः राजसिंहासनम् अधितिष्ठति।**
बालक मां की गोद में सो रहा है।	**बालकः मातुः क्रोडम् अधिशेते।**
धर्म के बिना समाज में शान्ति नहीं।	**धर्मं विना समाजे शान्तिः नास्ति।**
मुनि के चारों ओर भक्त लोग बैठे हैं।	**मुनिं परितः भक्ताः उपविशन्ति।**
गांव के दोनों ओर नदी का पानी बह रहा है।	**ग्रामं उभयतः नद्याः जलं वहति।**
वन की ओर मत जाओ।	**वनं प्रति न गच्छत।**
धिक्कार है उस कृतघ्न को, जिसने उस साधु को मार दिया।	**धिक् तं कृतघ्नं यः तं साधुं अमारयत्।**
पांच दिन लगातार वर्षा होती रही।	**पंच दिनानि यावत् वृष्टिः अभवत्।**
परिश्रम के बिना जीवन में सफलता कहां।	**परिश्रमं विना जीवने सफलता कुतः ?**
जो प्रभु को पूजते हैं वे सुख पाते हैं।	**ये प्रभुं पूजयन्ति ते सुखं प्राप्नुवन्ति।**

आदर्श अभ्यास 11

करण कारक (तृतीया विभक्ति)

आदर्श वाक्य

क्या तुम हमारे साथ धर चलोगे ?	**किं त्वं अस्माभिः सह गृहं चलिष्यसि ?**
वह शक्ल से बदसूरत होता हुआ भी स्वभाव से मधुर है।	**स आकृत्या कुरूपः अपि स्वभावेन मुधरः अस्ति।**
मैंने सम्पूर्ण व्याकरण तीन वर्षों में पढ़ लिया।	**अहं सम्पूर्णं व्याकरणं त्रिभिः वर्षैः अपठम्।**
प्रातः उठ कर जल से मुंह धोओ।	**प्रातः उत्थाय जलेन मुखं प्रक्षालय।**
धर्म से रहित पुरुष पशुओं के समान है।	**धर्मेण हीनः पुरुषः पशुभिः समानः।**
जनक के समान इस महीतल पर कौन है ?	**जनकेन सदृशः अस्मिन् महीतले कः अस्ति ?**
विद्या के कारण ही मनुष्य सुखी होते हैं।	**विद्यया मनुष्याः सुखिनः भवन्ति।**
मैंने यह पुस्तक छः रुपए में खरीदी है।	**अहं अदं पुस्तकं षट् रुप्यकैः अक्रीणम्।**
तुम्हारे बिना मेरा जीवन दूभर है।	**त्वया विना मम जीवनं दुर्भरम् (कष्टकरम्) अस्ति।**
अब शोर बन्द करों।	**अधुना कोलाहलेन अलम्।**

आदर्श अभ्यास 12

सम्प्रदान कारक (चतुर्थी विभक्ति)

आदर्श वाक्य

मालिक अपने नौकर पर क्रुद्ध हो रहा है।	**स्वामी स्वसेवकाय क्रुध्यति।**
स्वार्थी लोग दूसरों के दोष निकालते हैं।	**स्वार्थिनः अन्येभ्यः असूयन्ति।**
गौ का दूध बच्चों के लिये हितकर है।	**गौः दुग्धं बालकेभ्यः हितकरं अस्ति।**
प्रजाओं का कल्याण हो।	**प्रजाभ्यः स्वस्ति।**
क्या तुम्हें ये फल पसन्द हैं ?	**किं तुभ्यं इमानि फलानि रोचन्ते ?**
तुम्हें लड्डु पसन्द हैं ?	**तुभ्यं मोदकानि रोचन्ते न वा ?**
औरतों को गहने की बहुत लालसा होती है।	**स्त्रियः आभूषणेभ्यः स्पृहयन्ति।**
जो श्रेष्ठ राजा से द्रोह करते हैं वे देशद्रोही हैं।	**ये श्रेष्ठेभ्यः नृपेभ्यः द्रुह्यन्ति ते देशद्रोहिणः सन्ति।**
मैं तुम्हें तीन फल दूंगा।	**अहं तुभ्यं त्रीणि फलानि दास्यामि।**
दुर्जन तो सबसे ईर्ष्या करते हैं।	**दुर्जनाः तु सर्वेभ्यः ईर्ष्यान्ति।**

आदर्श अभ्यास 13

अपादान कारक (पंचमी विभक्ति)

आदर्श वाक्य

वसन्त में पेड़ से पत्ते झड़ जाते हैं।	**वसन्ते वृक्षात् पत्राणि पतन्ति।**
आजकल के युवक धर्म में प्रमाद करते हैं।	**अद्यतनीयाः युवकाः धर्मात् प्रमाद्यन्ति।**
हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक भारत फैला हुआ है।	**हिमालयात् कन्याकुमारी–पर्यन्तं भारतं विस्तृतम् अस्ति।**
सिवाय हनुमान के कौन समुद्र पार कर सकता है ?	**हनुमतः ऋते कः समुद्रं तर्तुं शक्नोति ?**
क्षणभर के बाद उसने प्राण त्याग दिये।	**क्षणाद् ऊर्ध्वं स प्राणान् अत्यजत्।**
गंगा हिमालय से निकलती है।	**गंगा हिमालयात् प्रभवति।**
उसका यश दूध से भी अधिक शुभ्र है।	**तस्य यशः दुग्धात् अपि शुभ्रम् अस्ति।**
गौ को खेत से निकाल दो।	**गां क्षेत्रात् निवराय।**
गांव के बाहर एक सुन्दर उद्यान है।	**ग्रामात् बहिः एकं सुन्दरम् उद्यानम् अस्ति।**
राम श्याम से अधिक बुद्धिमान है।	**रामः श्यामात् बुद्धिमत्तरः अस्ति।**

आदर्श अभ्याास 14

सम्बन्ध कारक (षष्ठी विभक्ति)

आदर्श वाक्य

मेरे घर के उत्तर की ओर एक मन्दिर है।	**मम गृहस्य उत्तरे एकं मन्दिरम् अस्ति।**
परमात्मा जागत् का स्रष्टा है।	**परमात्मा जगतः स्रष्टा अस्ति।**
हिमालय सब पर्वतों से ऊंचा है।	**हिमालयः सर्वेषां सर्वतानां उच्चतमः**
गंगा नदी सब नदियों से लम्बी है।	**गंगा च सर्वासां नदीनां दीर्घतमा (द्राघिष्ठा) अस्ति।**
मुझे अब भी मां की याद आती है।	**अहं अद्यापि मातुः स्मरामि।**
दशरथ का पुत्र राम ह्रदय सम्राट् हैं।	**दशरथस्य पुत्रः रामः अस्माकं ह्रदयसम्राट् अस्ति।**
सीता राम की विवाहिता पत्नी थी।	**सीता रामस्य विवाहिता पत्नी आसीत्।**
तुम तो धन की खातिर यहां रह रहे हो।	**त्वं तु धनस्य हेतोः अत्र वससि।**
तेरा नाम क्या है ?	**तव किम् नाम अस्ति ?**
गंगा–युमना का पानी पवित्र होता है।	**गंगा–यमुनयोः जलं पवित्रम् भवति।**
भाइयों का कहना मानो।	**भ्रातृणां वचनं पालय।**

आदर्श अभ्यास 15

अधिकरण कारक (सप्तमी विभक्ति)

आदर्श वाक्य

तुम तो दिन में सोते हो और रात को जागते हो।	**त्वं तु दिवसे स्वपिषि रात्रौ च जागर्षि।**
कवियों में कालिदास सबसे श्रेष्ठ हैं।	**कविषु कालिदासः श्रेष्ठतमः अस्ति।**
गौओं में काली गाय बहुत दूध देने वाली होती है।	**गोषु कृष्णा बहुक्षीरा भवति।**
गुरु जी मुझ से स्नेह करते हैं।	**गुरुः मयि स्निह्यति।**
सूर्य के डूब जाने पर सब ग्वाले घर चले गए।	**सूर्ये अस्तंगते सर्वे गोपालाः गृहम् अगच्छन।**
मैं रात को तुम्हारे पास आऊंगा।	**अहं रात्रौ तव समीपे आगमिष्यामि।**
बालक का मन खेल में रमता है।	**बालकस्य मनः क्रीडायां रमते।**
मैं, पहले शिमला में रहता था अब हरिद्वार में रहता हूं।	**अहं पुरा शिमला–नगरे अवसम्, अधुना हरिद्वारे वसामि।**
तुम जुए में बहुत कुशल प्रतीत होते हो।	**त्वं अक्षेषु अति कुशलः प्रतीयसे।**
मैं अब काम में फंसा हुआ हूं।	**अहम् अधुना कार्ये व्यापृतः अस्मि।**

आदर्श अभ्यास 16

सम्बोधन का प्रयोग

आदर्श वाक्य

हे बालक ! तू पाठ याद कर।	**बालक ! त्वं पाठं स्मर।**
हे भगवान् ! भारत का भाग्योदय कब होगा ?	**हे भगवन् ! भारतस्य भाग्योदयं कदा भविष्यति।**
अरे लोगो ! भागो शेर आ रहा है।	**भो नराः ! धावत, सिंह, आगच्छति।**
अरे ! तुम सब बच्चे कहां गये थे ?	**रे ! यूयं शिशवः कुत्र अगच्छत ?**
हे पिता जी ! आप भोजन कीजिए।	**भो पितः ! भवान् भोजनं करोतु।**
हे गुरु जी ! मैं नमस्कार करता हूं।	**भो गुरो ! अहं नमामि।**
हे साधो ! उपदेश दीजियें	**भो साधो ! उपदेशं यच्छतु।**
हे भाइयों ! प्रेम से रहो।	**भो भ्रातरः ! स्नेहेन वसत।**
हे छात्रों ! मैदान में खेलो।	**भो छात्राः ! क्रीड़ाक्षेत्रे क्रीडत।**
हे मुनि ! फल खाइए।	**भो मुने ! फलानि भक्षयतु।**

आदर्श अभ्यास 17

(विशेष्य–विशेषण सम्बन्ध)

1. गुणवाची विशेषण

आदर्श वाक्य

उस स्त्री के लड़के झगड़ालू तथा लड़कियां स्वभाव की कोमल हैं।	**तस्याः नार्यः पुत्राः कलहप्रियाः कन्याश्च स्वभावेन कोमलाः सन्ति।**
गुणवान् मनुष्य को ही दान देना चाहिए।	**गुणवते मनुष्याय एव दानं ददातु (यच्छतु)।**
पढ़ी–लिखीं औरतों को समाज सेवा करनी चाहिए।	**शिक्षिताः नार्यः समाज–सेवां कुर्वन्तु।**
सुहावने दृश्य को देखकर मन शान्त हो गया।	**सुन्दरं दृश्यं दृष्ट्वा चित्तं शान्तम् अभवत्।**
रावी नदी का पानी बरसात में मैला हो जाता है।	**रावीनद्याः जलं वर्षाकाले मलिनं भवति।**
उजले कपड़े पहन कर बच्चे विद्यालय जा रहे हैं।	**उज्ज्वलानि वस्त्राणि परिधाय बालकाः विद्यालयं गच्छन्ति।**
धनवान् लोग गरीबों को धन देवें।	**धनवन्तः जनाः निर्धनेभ्यः धनं यच्छन्तु।**
बीमार बच्चों को गिनो।	**रुग्णान् शिशून् गणयन्तु।**
मन को हरने वाले फूलों को देखकर दुःखित मनुष्य का मन भी प्रसन्न हो जाता है।	**मनोहारीणि पुष्पाणि दृष्ट्वा दुःखितस्य मनुष्यस्य चित्तम् अपि प्रसीदति।**

आदर्श अभ्यास 18

विशेष विशेषण

2. विशेष–विशेषण

आदर्श वाक्य

किसी स्त्री को मत सताओ।	**कामपि स्त्रियं न पीडय।**
ये लड़के बड़े चतुर हैं।	**इमे बालकाः अति चतुराः सन्ति।**
जो बलवान् मनुष्य होते हैं वे देश की रक्षा करते हैं।	**ये बलवन्तः जनाः भवन्ति ते देशं रक्षन्ति।**
किसी नगर में एक ब्राह्मण रहता था।	**कस्मिंश्चित् नगरे एकः ब्राह्मणः अवसत्।**
किसी राजा का एक विशाल और सुन्दर भवन था।	**कस्यचित् नृपस्य एकं विशालं सुन्दरं च भवनम् आसीत्।**
उस भयंकर शेर से हम सब डर गये।	**तस्मात् भयंकरात् सिंहात् वयं अत्रस्याम।**
ये कान्यायें मीठे फल खा रही हैं।	**इमाः कन्याः मुधराणि फलानि भक्षयन्ति।**
किस राजा के पास तुम नौकरी करते हो ?	**कम् नृपं त्वं सेवसे ?**
तुमने किस तेज बाण से इस शेर को मारा ?	**त्वं केन तीक्ष्णेन बाणेन इमं सिंहम् अमारयः।**
उसमें तरह–तरह के सुन्दर वृक्ष हैं।	**तत्र नानाविधाः सुन्दराः वृक्षाः सन्ति।**

आदर्श अभ्यास 19

(विशेष्य विशेषण)

3. क्रियाबोधक विशेषण

आदर्श वाक्य

पानी में डूबती लड़की को बचाओ।	**जले निमज्जन्तीं कन्यां रक्ष।**
उदय होते हुए सूर्य को प्रणाम करो।	**उदयन्तं सूर्यं प्रणम।**
वन में जाते हुए चारों ने हमारा धन लूट लिया।	**वने गच्छन्तः चौराः अस्माकं धनं अहरन्।**
बहती हुई नदियों का पानी पीने योग्य होता है।	**वहन्तीतां नदीनां जलं पेयं भवति।**
अस्त होते हुए राजा को कोई नहीं पूछता।	**अस्तं गच्छन्तं नृपं कोपि न पृच्छति।**
खेत चरती हुई गाय को खेत से हटाओ।	**क्षेत्रं चरन्तीं गाम् क्षेत्रात् निवारय।**
गुरु की सेवा करने वाले शिष्यों की सब प्रशंसा करते हैं।	**गुरोः सेवमानानां शिष्याणां सर्वे प्रशंसां कुर्वन्ति।**
मार्ग में जाते हुए यात्रियों को ठण्डा पानी पिलाओ।	**मार्गे गच्छतः पान्थान् शीतलं जलं पायय।**
खाते हुए लोगों को देखो।	**भक्षयतः जनान् पश्य।**
खेलते हुए बालक मुझे अच्छे लगते हैं।	**क्रीडन्तधः बालकाः मह्यं रोचन्ते।**

आदर्श अभ्यास 20

(विशेष्य विशेषण)

4. संख्यावाची विशेषण

आदर्श वाक्य

दो लड़के आ रहे हैं।	**द्वौ बालकौ आगच्छतः।**
तीन लड़कियां जा रही हैं।	**तिस्रः कन्याः गच्छन्ति।**
इस कक्षा में कितने छात्र पढ़ते हैं ?	**अस्यां कक्षायां कति (कियन्तः) छात्राः पठन्ति ?**
12 कन्यायें और 13 लड़के मिलकर 25 हो जाते हैं।	**द्वादश कन्याः त्रयोदया बालकाश्च मिलित्वा पंचविंशाति भवन्ति।**
बाजार से 7 नींबू ले जाओ।	**विपणेः अरूट जम्बीरफलानि आनय।**
105 छात्र यहां व्यायाम कर रहे हैं।	**पंचाधिकशत छात्राः अत्र व्यायामं कुर्वन्ति।**
सुना है आज चौदहवीं तिथि हैं।	**श्रूयते अद्य चतुर्दशी तिथिः अस्ति।**
मैं अपनी श्रेणी में आठवां हूं।	**अहं स्व–श्रेण्यां अष्टमः अस्मि।**
यह 10वां पाठ है।	**अयं दशमः पाठः अस्ति।**
100 गौओं को यहां ले जाओ।	**शतं गाः अत्र आनय।**

आदर्श अभ्यास 21

कृदन्त शब्दों का प्रयोग

(भूतकालवाची क्त–क्तवतु प्रत्यय)

नियम : कर्तृवाच्य में क्तवतु और कर्मावच्य में सामान्यतः क्त का प्रयोग होता है।

आदर्श वाक्य

उसने सांप को मार दिया।	**सः सर्पं हतवान्।**
यह सुनकर लड़के वहां से भाग गये।	**इदं श्रुत्वा बालकाः तत्रतः अधावन्।**
वह अपना पुत्र ले आया।	**तेन स्वपुत्रः आनीतः।**
तुमने क्या कहा ?	**त्वया किम् कथितम्।**
लड़कियों ने मीठा दूध पीया।	**कन्याभिः मधुरं दुग्धं पीतम्।**
उसने सुना और हंस दिया।	**तेन श्रुतं हसितम् च।**
चोर ने मेरा धन चुरा लिया।	**चौरः मम धनं चोरितवान्।**
हमने सोमवार काम शुरू कर दिया।	**वयं सोमवासरे कार्यं प्रारब्धवन्तः।**
कन्या ने शीशे में अपना रूप देखा।	**कन्या दर्पणे स्वरूपं दृष्टवती।**
उसने ऊंचे स्वर में कहा।	**स उच्चस्वरेण उक्तवान्।**

आदर्श अभ्यास 22

(क) तव्य–अनीय प्रत्यय

तव्यत् प्रत्यय

आदर्श वाक्य

गौ हमारी माता है उसे मारना नहीं चाहिए।	**गौः अस्माकं जननी अस्ति न हन्तव्या।**
छोटे बच्चों को दूध ही पीना चाहिये।	**शिशुभिः दुग्धम् एव पातव्यम्।**
मांस कभी नहीं खाना, चाहिए।	**मांसः (पिशितम्) कदापि न भक्षयितव्यः।**
संकट में कभी चोरी न करें।	**संकटे कदापि चौर्यं न कर्त्तव्यम्।**
कल तुम्हें हरिद्वार जरूर जाना है।	**श्वः त्वया हरिद्वारं अवश्यं गन्तव्यम्।**
अच्छे कामों में कभी प्रमाद मत करो।	**सुकार्येषु कदापि न प्रमदितव्यम्।**
आज गांधी जयन्ती में सबको जाना होगा।	**अद्य गान्धी जयन्त्यां सर्वैः गन्तव्यम्।**
पिता को ईश्वर के समान मानना चाहिए।	**पिता ईश्वरवत् मन्तव्यः।**
तुम्हें प्रतिदिन पाठ याद करना चाहिए।	**युष्माभिः प्रतिदिनं पाठः स्मरणीयः।**
रोगी को कुपथ्य का सेवन कभी नहीं करना चाहिये।	**रुग्णेन कुपथ्यस्य सेवनं कदापि न कर्तव्यम्।**

आदर्श अभ्यास 23

(ख) अनीय प्रत्यय

आदर्श वाक्य

मनुष्य सदा सत्य कहे।	**मनुष्येण सर्वदा सत्यं कथनीयम्।**
दिन में सोना नहीं चाहिए।	**दिवसे न शयनीयम्।**
छात्र पाठ याद करें।	**छात्रैः पाठः स्मरणीयः।**
किसी के साथ झगड़ा मत करो।	**केनापि सह कलहः न करणीयः।**
गुरुजनों के उपदेश की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।	**गुरूजनानां उपदेशः न उपेक्षणीयः।**
हाथ–पांव धोने चाहिएं।	**हस्तौ पादौ च प्रक्षालनीयौ।**
तुम्हें कल लौट आना चाहिए।	**त्वया श्वः प्रत्यागमनीयम्।**
कभी शराब मत पियो।	**कदापि मद्यम् न पानीयम्।**
स्वाध्याय करना न भूलो।	**स्वाध्यायध न विस्मरणीयः।**
छात्रों को प्रेम से रहना चाहिए।	**छात्रैः स्नेहेन व्यवहरणीयम्।**

आदर्श अभ्यास 24

तुमुन् प्रत्याय

आदर्श वाक्य

वे सब खेलने के लिए मैदान में गए।	**ते सर्वे क्रीडितुम् क्रीड़ाक्षेत्रे अगच्छन्।**
सुख पाने के लिए कष्ट सहना चाहिए।	**सुंख प्राप्तुं कष्टम् सहस्व (सहनीयम्)।**
तुम पढ़ने के लिए हर रोज़ कहां जाते हो ?	**त्वं पठितुं प्रतिदिनं कुत्र गच्छसि ?**
मैं कष्ट सहने के लिए तैयार हूं।	**अहं कष्टं सोढुं तत्परः अस्मि।**
वह अब पानी पीना चाहता है।	**स अधुना जलं पातुम् इच्छाति ?**
क्या तुम मेरा यह काम कर सकते हो ?	**किं त्वं मम इदं पातुम् इच्छति ?**
गुरु की आज्ञा पा कर उसने पत्र पढ़ना शुरू किया।	**गुरोः आदेश लब्ध्वा सः पत्रं पठितुम् आरभत।**
यह सुन कर वह कहने लगा।	**इदं श्रुत्वा स कथयितुम् आरभत।**
क्या तुम गाना भी जानते हो ?	**किं त्वं गानम् अपि जानासि ?**
तुम्हारा दफ्तर जाने का कौन–सा समय है ?	**तव कार्यालये गन्तुं कः समयः अस्ति ?**

आदर्श अभ्यास 25

क्त्वा–ल्यप् प्रत्यय

आदर्श वाक्य

तुझे देख कर मन प्रसन्न होता है।	**त्वां दृष्ट्वा चित्तं प्रसीदति।**
वह घर जा कर सो गया।	**स गृहं गत्वा अस्वपत्।**
वहां जा कर अब क्या करोगे ?	**तत्र गत्वा अधुना किं करिष्यसि ?**
यह प्रश्न पूछ कर मेरे पास आ जाओ।	**इदं प्रश्नं पृष्ट्वा मम समीपे आगच्छ।**
विदेश जा कर वह प्रसन्न हो गया।	**विदेशं गत्वा स हर्षं गतः।**
गुरु के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो।	**गुरुम् उपगम्य ज्ञानं लभस्व।**
विचार करके काम करना चाहिए।	**विचार्य कार्यं कर्तव्यम्।**
तुम किसे देख कर हँस रहे हो ?	**त्वं कं विलोक्य हससि ?**

आदर्श अभ्यास 26

णिजन्त (प्रेरणार्थक) वाक्यों का प्रयोग

आदर्श वाक्य

शिक्षक छात्र को संस्कृत पढ़ाता है।	**शिक्षकः छात्रं संस्कृतं पाठयति।**
पण्डित राजा सेदान दिलाता है।	**पण्डितः नृपेण दानं दापयति।**
माता पुत्र से सांप मरवाती है।	**माता पुत्रेण सर्प घातयति।**

गुरु उसको पण्डित बनाते हैं।	**गुरुः तं पण्डितं भावयति।**
जनक न राम को धनुष पकड़ाया।	**जनकः रामं धनुः अग्राहयत्।**
कैकेयी ने राम को वन भिजवा दिया।	**कैकेयी रामं वनम् अगमयत्।**
राम ने रावण को नष्ट करा दिया।	**रामः रावणं अनाशयत्।**
सेवक भक्तों को राजा के दर्शन कराता है।	**सेवकः भक्तान् नृपस्य दर्शनं कारयति।**
सूमन्त्र राम को गंगा पार कराता है।	**सुमन्त्रः रामं गंगां उत्तारयति।**
हरि उसको गांव पहुंचाते हैं।	**हरिः तं ग्रामं प्रापयति।**

आदर्श अभ्यास 27

वाच्य–परिवर्तन

1. सर्कमक वाक्यों का वाच्य–परिवर्तन आदर्श वाक्य

छात्राः शब्दं कुर्वन्ति।	**छात्रैः शब्दः क्रियते।**
युयं किं कुरुथ।	**युष्माभिः किम् क्रियते।**
पण्डितं सर्वे पूजयन्ति।	**पण्डितः सर्वैः पूज्यते।**
अहं गीतं शृणोमि।	**मया गीतं श्रूयते।**
रामः गां दोग्धि।	**रामेण गौः दुह्यते।**
त्वं मां स्मरसि।	**त्वया अहं स्मर्ये।**
ईश्वरः सर्वान् पश्यति।	**ईश्वरेण सर्वे दृश्यन्ते।**
अहं मोदकं इच्छामि।	**मया मोदकं इष्यते।**
शिष्याः गुरुम् पृच्छन्ति।	**शिष्यैः गुरुः पृच्छ्यते।**
सिंहः मृगंः हन्ति।	**सिंहने मृगः हन्यते।**

आदर्श अभ्यास 28

वाच्यपरिवर्तन

2. अकर्मक वाक्यों का

आदर्श वाक्य

अहं भूमौ शये।	**मया भूमो शय्यते।**
ते लज्जन्ते।	**तैः लज्यते।**
सर्वे अत्र तिष्ठन्ति।	**सर्वैः अत्र स्थीयते।**
त्वं कुत्र परिभ्रमसि ?	**त्वया कुत्र परिभ्रम्यते।**
ते शय्यायाम् उपविशन्ति।	**तैः शय्यायां उपविश्यते ?**
त्वं कुख वससि ?	**त्वया कुत्र उष्यते ?**
कथाम् शृणु।	**कथा श्रूयताम्।**

चौराः धावन्ति।	**चौरैः धाव्यते।**
किं भवान् इदानीं पठति ?	**किं भवता इदानीं पठ्यते ?**
इति विलोक्य सर्व हसन्ति।	**इति विलोक्य सर्वैः हस्यते।**

आदर्श अभ्यास 29

वाच्य–परिवर्तन

3. कृदन्त वाक्यों का वाच्य–परिवर्तन

आदर्श वाक्य

स गीतं श्रुतवान्।	**तेन गीतं श्रुतम्।**
कन्या पुष्पं दृष्टवती।	**कन्यया पुष्पं दुष्टम्।**
त्वं मां कथितवान्।	**त्वया अहं कथितः।**
सा चित्रं गृहीतवती।	**तया चित्रं गृहीतम्।**
अहं पुस्तकानि पठितवान्।	**मया पुस्तकानि पठितानि।**
स एकां नारीं दृष्टवान्।	**मया पुस्तकानि पठितानि।**
यूयं कथां श्रुतवन्तः।	**युष्माभिः कथा श्रुता।**
वयं पुष्पाणि आनीतवन्तः।	**अस्माभिः पुष्पाणि आनीतानि।**
वानराः फलानि गृहीतवन्तः।	**वानरैः फलानि गृहीतानि।**
त्वं कदा गृहं गतः ?	**त्वया कदा गृहं गतम् ?**

आदर्श अभ्यास 30

4. तव्य अनीय का वाच्य–परिवर्तन

आदर्श वाक्य

त्वया असत्यं न वक्तव्यम्।	**त्वं असत्यं न वद।**
तेन जलं पातव्यम्।	**स जलं पिबतु।**
त्वया तत्र गन्तव्यम्।	**त्वं तत्र गच्छ।**
तेन एवं न आचरणीयम्।	**सः एवं न आचरतु।**
नृपेण प्रजाः रक्षणीयाः।	**नृपः प्रजाः रक्षतु।**
इदं पुस्तकं न पठनीयम्।	**इदं पुस्तकं न पठ।**
इमानि पुष्पाणि दर्शनीयानि	**इमानि पुष्पाणि पश्य।**
त्वया पत्रं लेखनीयम्।	**त्वं पत्रं लिख।**
गुरवः सदा पूजनीयाः।	**गुरून् सदा पूजय।**
सदा उद्यमिभिः भवितव्यम्।	**सदा उद्यमिनः भवन्तु।**

आदर्श अभ्यास 31

वाच्य–परिवर्तन

5. णिजन्त का वाच्य परिवर्तन

आदर्श वाक्य

गायकः संगीतं श्रावयति।	**गायकेन संगीतं श्राव्यते।**
स सेवकैः भोजनं पाचयति।	**तेन सेवकैः भोजनं पाच्यते।**
स मन्दिरे मूर्तिम् स्थापयति।	**तेन मन्दिरे मूर्तिः स्थाप्यते।**
ईश्वरः दुर्जनं नरंक पातयति।	**ईश्वरेण दुर्जनः नरकं पात्यते।**
स्वामी सेवकेन भारं वाहयति।	**स्वामिना सेवकेन भारः वाह्यते।**
सः दरिद्रान् भोजयति।	**तेन दरिद्राः भोज्यन्ते।**
नरः सर्वान् हासयति।	**नरेण सर्वे हास्यन्ते।**
गुरुः शिष्यं पाठयति।	**गुरुणा शिष्यः पाठ्यते।**
सज्जनः तृषितं जलं पाययति।	**सज्जंनेन तृषितः जलं पाय्यते।**
अहं कुम्भकारेण घटं कारयामि।	**मया कुम्भकारेण घटः कार्यते।**

आदर्श अभ्यास 32

अव्यय प्रयोग

आदर्श वाक्य

जहां मोहन का घर है वहां मेरा भी है।	**यत्र मोहनस्य गृहम् अस्ति तत्र मम अपि अस्ति।**
तू रात को कहां जाएगा ?	**त्वं नक्तं कुत्र गमिष्यसि ?**
यहीं मेरे ही पास क्यों नहीं ठहरता ?	**अत्र एव मम समीपं कथम् न तिष्ठसि ?**
जब सूर्योदय होता है तब अन्धेरा भाग जाता है।	**यदा सूर्योदयः भवति तदा अंधकारः नश्यति।**
अब हमारा देश निर्धन है।	**अधुना अस्माकं देशः निर्धनः अस्ति।**
यह काम मैं आज करूंगा।	**इदं कार्यं अहं अद्य करिष्यामि।**
यदि संत्संग करोगे तो सुख पाओगे।	**यदि सत्संगं करिष्यसि तर्हि सुखं प्राप्स्यसि।**
जैसा मन वैसा वचन।	**यथा चित्तं तथा वचनम्।**
राम सीता के आगे चलते थे।	**रामः सीतायाः अग्रे चलति स्म।**
सभी गुणी लोग नीचे की ओर चलते हैं।	**सर्वे गुणिनः अधः गच्छन्ति।**

अभ्यासार्थ–अनुवाद

आदर्श वाक्य

1. निम्नलिखित वाक्यों का हिन्दी में अनुवाद करें

1 त्वं अत्र क्रीड।

2 आलस्यं मा कुरु

3 मोदकं खाद।

4 दुर्बलं रक्ष।

5 कार्य कुरु।

6 प्रथमं व्यायामं कुरु।

7 उद्यानं गच्छ।

8 भोजनं आनय।

9 सः पुस्तकं पठति।

10 मयूरः तत्र किं करोति।

11 त्वं किं पश्यसि।

12 अहं गच्छामि।

13 रमेशः किं करोति।

14 अनन्तरं सः गृहं आगच्छति।

15 अहं तत्र प्रातः समये गच्छामि।

16 ततः किं करोषि ?

17 मन्दिरस्य पुरस्तात् विशालः एकः वटवृक्षः अस्ति

18 ते किं कुर्वन्ति ?

19 ते अपि देवं नमन्ति।

2. निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए –

1 तू स्वच्छ अक्षर लिख।

2 तू पत्र मत लिख।

3 मीठा दूध पी।

4 बाद में लड्डू खा।

5 व्यायाम और अभ्यास भी कर।

6 यहाँ गाड़ी मत ले आ।

7 इस समय वह जल पी रहा है।

8 मोर बगीचे में नाचता है।

9 मैं घोड़े को देखता हूँ।

10 वह वहाँ प्रतिदिन पढ़ता है।

11 मैं घूमने जाता हूँ।

12 तू कहाँ खेलता है।

3. निम्नलिखित श्लोकों का अर्थ हिन्दी में लिखें –

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रमुत्वमविवेकिता।

एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्।।1।।

प्रिय वाक्य–प्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।

तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता।।2।।

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।

अहं करोमीति वृथाभिमानः, स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः।।3।।

4. हिन्दी में अनुवाद कीजिए।

उद्यानस्यापरे विभागे अनेके पशवः सन्ति। सिंह–व्यार्घ–चित्रक–वृक–शृगाल– मल्ल–शूकर प्रभृतयः स्वे–स्वे पंजरे तिष्ठन्ति। हरिण–शश–वानराणां स्थानं पृथगस्ति।

5. संस्कृतभाषा में उत्तर लिखिए।

1 उद्याने के क्रीडन्ति

2 त्वं किं किं क्रेतुमिच्छसि ?

3 किं वयः तव पितृचरणानाम् ?

4 सेरभारा शर्करा कियाता मूल्येन विक्रीयते ?

5 कृषकः क्षेत्रं गत्वा किं करोति ?

6. संस्कृत के अर्थ हिन्दी में लिखिए।

1 चेतः शुद्धौ स्वस्थताधिगमः।

2 पलं छलानुबन्धि स्यात्।

3 अये कथमनभ्रा वृष्टि

4 अग्निर्हिमस्य मेषजम्

5 अर्थो हि लोकेषु बन्धुः।

7. उपसर्गों की संख्या लिखिए।

8. (अ) निम्नलिखित शब्दों का सन्धि–विच्छेद कीजिए।

खलूद्यानम्, इतस्ततः, उद्यानस्यापरे, लंकेश्वरस्य, न्यवेदयत्।

(ब) हरि (पु०) शब्द का सभी विभक्तियों रूप लिखिए।

(स) गम् (गच्छ) धातु के सभी आज्ञार्थक रूप लिखिए।

9. निम्नलिखित वाक्यों को संस्कृत में अनुवाद कीजिए।

1 वहाँ एक जंगल है।

2 वन का राजा शेर है।

3 शेर मांस खाता है।

4 फलों की दुकान कहाँ है।

5 आज मैं प्रसन्न हूँ।

6 भारत में अनेक नदियाँ है।

7 मैं धन चाहता हूँ।

10. निम्नलिखित वाक्यों का हिन्दी में अनुवाद करें।

1 अहं तत्र स्थातुं गच्छामि।

2 अश्वं अस्ति धावितुं सज्जः।

3 भोजनान्तो ताम्बूलं न भक्षयसि ?

4 मप माता भगिनी वा मां परिवेषयति।

5 सात्विकं खलु तव भोजनम् ?

3.4 अपनी प्रगति जांचिए

1 संस्कृत व्याकरण के अनुसार पुरुष के कितने भेद है ?

2 लट् लकार का प्रयोग किस काल के लिए होता है ?

3 भविष्यकाल के लिए संस्कृत में किस लकार का प्रयोग होता है ?

4 अपादान कारक में कौन–सी विभक्ति का प्रयोग होता है ?

5 क्रिया का वचन और पुरुष किसके अनुसार होता है ?

3.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई में 'हिन्दी से संस्कृत में सरल अनुवाद कैसे करें' इस विषय का विश्लेषण किया गया। इस इकाई में वाक्य रचना के साधारण नियम, विभिन्न लकार तथा विभक्तियों का प्रयोग, वाच्य परिवर्तन के नियम, उत्तम, मध्यम तथा प्रथम पुरुष के अनुसार वाक्य रचना, च और वा का प्रयोग, विशेष्य–विशेषण सम्बन्ध, अव्यय का प्रयोग तथा कृदन्त, तव्य–अनीय, तुमुन, कत्वा–ल्यप् आदि प्रमुख प्रत्ययों का प्रयोग; इन सभी विषयों का वर्णन किया गया है। इनका अभ्यास करके छात्र संस्कृत में अनुवाद करने में प्रवीण होंगे।

3.6 मुख्य शब्दावली

- **हाकीक्रिडासाम्मुख्यं** – हाकी का मैच
- **अद्यतनीयाः** – आजकल
- **अस्माकं** – हमारा
- **कार्यालये गन्तुं** – दफ्तर जाने का
- **न उपेक्षणीयः** – उपेक्षा नहीं करनी चाहिए

3.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1 तीन (प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष, उत्तम पुरुष)

2 वर्तमानकाल के लिए

3 लृट लकार

4 पंचमी विभक्ति

5 कर्ता के अनुसार

3.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1 'जहां मोहन का घर है वहां मेरा भी है।' इस वाक्य का संस्कृत में अनुवाद कीजिए।

2 वाच्य–परिवर्तन के प्रमुख नियमों का विवेचन कीजिए।

3 वाक्य रचना के साधारण नियमों का विश्लेषण कीजिए।

4 'जो बलवान् मनुष्य होते हैं वे देश की रक्षा करते हैं।' इस वाक्य का संस्कृत में अनुवाद कीजिए।

5 सभी लकारों का प्रयोग करते हुए संस्कृत में 20 वाक्यों की रचना कीजिए।

3.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1 रचनानुवादकौमुदी – डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

2 अनुवाद चन्द्रिका – चक्रधर नौटियाल 'हंस' मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

3 अभ्यासपुस्तकम् – विश्वास, संस्कृत भारती, बेंगलूरु।

4 रूपचन्द्रिका – डॉ० सुखराम, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

5 हिन्दी–संस्कृत–कोशः – डॉ० रामसरूप 'रसिकेश', चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।